श्री माणिक्यनन्दि विरचित

परीक्षा मुख

(संस्कृत, हिन्दी विवेचना, सरलप्रश्नोत्तरी)

अनुवादक

क्षु. 105 विवेकानंदसागरजी महाराज

सम्पादक

डॉ. सूरजमुखी जैन

सहसम्पादक

ब्र. संदीप जी 'सरल'

प्रकाशक

अनेकान्त ज्ञानमंदिर शोधसंस्थान

बीना, (सागर) म.प्र. 470113

☎:(07580) 222279

अनेकान्त ग्रन्थावली का नवम् पुष्प

ग्रन्थ : परीक्षामुख

प्रणेता . प पू आचार्य माणिक्यनंदि जी

आशीर्वाद परम पूज्य मुनिश्री प्रमाणसागर जी

अनुवादक क्षु १०५ विवेकानंदसागर जी

सम्पादक . डॉ. सूरजमुखी जैन, मुजफ्फरनगर

सहसम्पादक ब. संदीप जी 'सरल'

संस्करण प्रथम १००० प्रतियाँ

अर्थ सौजन्य

१ श्री श्रेयास कुमार जैन, 'शिक्षक' कुरवाई

२. श्री विनोद कुमार जैन, (M L A) कुरवाई

३ श्री मुकेश कुमार जी जैन, कठरया, कुरवाई

मूल्य -- स्वाध्याय

मुद्रक . सोलार आफसेट, जबलपुर फोन- ०७६१-२६५१९९५

प्रकाशक/प्राप्ति स्थान

अनेकान्त ज्ञानमंदिर शोधसंस्थान, बीना

प्रकाशकीय

प्रस्तुत कृति आद्यसूत्र न्यायग्रन्थ परीक्षामुखका प्रकाशन करते हुए गौरव एवं संतोष का अनुभव कर रहेत हैं। यह ग्रन्थ अनेकान्त ज्ञानमंदिर शोध संस्थान, बीना के अन्तर्गत अनेकान्त ग्रन्थावलीसे प्रकाशित होने वाला 9वाँ ग्रन्थ है। इसके पूर्व हम परम पूज्य गुरुवर श्री 108 सरलसागरजी महाराज द्वारा रचित 'पंचकल्याणक-गजरथ समीक्षा' समाधि समीक्षा, त्योहार समीक्षा, चातुर्मास समीक्षा, अनेकान्त भवन ग्रन्थावली भाग - 1,2,3 प्रमाण निर्णय, एवं प्रारम्भिक प्राकृत प्रवेशिका नामक ग्रन्थोंका प्रकाशन कर चुके हैं।

परीक्षामुख ग्रन्थ जैन न्यायके अभ्यासियोंके लिए अत्यन्त उपयोगी रचना है। इस लघुकृतिमें आचार्य माणिक्यनंदिजी ने जैन न्यायके समस्त विषयोंको गर्भित कर लिया है। परीक्षामुख सूत्रों एवं संस्कृतटीकाकी सरल व्याख्या एवं प्रत्येक सूत्रोंके साथ प्रश्नोत्तरी जोड़नेका कार्य सतत् अध्यवसायी श्रद्धेय क्षु. 105 विवेकानंदजी महाराज ने किया है, इससे यह कृति जन सामान्यके लिए उपयोगी बन गई है। इसका सम्पादन डॉ. सूरजमुखीजी मुजफ्फरनगर(उ.प्र.) ने किया है। कृतिके प्रकाशनार्थ अर्थ सौजन्यका दायित्व उठाया है कुरवाई के जिनवाणी उपासक बन्धु श्री श्रेयांस कुमार जैन, शिक्षक, श्री विनोद कुमार जैन (विधायक) एवं श्री मुकेश कुमार जैन, कठरया। इस सबके साथ परम पूज्य मुनि श्री 108 प्रमाणसागरजी ने भी अपना आशीर्वाद लिखकर इसके प्रकाशन को गौरवान्वित किया है। एतदर्थ मुनिश्रींके प्रति नमोस्तु करते हुए कृतज्ञ हैं।

परम पूज्य गुरुदेव श्री 108 सरलसागरजी महाराज एवं मुनि श्री 108 ब्रह्मानंदसागरजी महाराज की भावनानुसार कि ग्रन्थोंका क्रय-विक्रय नही होना चाहिए। ग्रन्थतो ज्ञानके साधन है इनका प्रचार-प्रसार होना चाहिए। अभी तक के प्रकाशनोंमें हम इसी नीतिका अनुसरण करते हुए आए है और आगे भी इसी प्रकार की भावनाओंका सम्मान करते हुए ग्रन्थों पर कीमत अंकित न करते हुए ग्रन्थोंका प्रचार-प्रसार करते रहेंगे।

यह ग्रन्थ प्रकाशनका पवित्र कार्य बिना दान-दातारोंके सहयोग से सम्भव न हो सकेगा। अत: इस क्षेत्रमें समाजका हर वर्ग अपनी उदारताका परिचय उसी प्रकार दिखाये जिस प्रकार कि पंच-कल्याणक, पूजन-विधान आदिके अवसर पर दिखाता है। धर्म प्रभावनाके नाम पर आगमग्रन्थों का प्रकाशन, पठन-पाठन आदिका कार्य बृहद्स्तर पर होना चाहिए।

संस्थानकी ओर से सर्वप्रथम श्रद्धेय क्षु. जी को सादर इच्छामि प्रस्तुत करता हूँ कि आपने प्रकाशन हेतु कृति हमारे लिए प्रदानकी। सम्पादिका डॉ. सूरजमुखीजी एवं अर्थ सौजन्यकर्ताओंके लिए भी हार्दिक धन्यवाद देता हूँ। अक्षर संयोजनमें अनेकान्त कम्प्यूटर, बीना एवं अन्य प्रत्यक्ष-परोक्ष सहयोगियोंके लिए धन्यवाद देते हुए पाठकोंसे भरपूर आशा एवं अपेक्षा रखता हूँ कि पूर्व प्रकाशनोंकी भाँति इस प्रकाशनको न सिर्फ सराहा जावेगा अपितु प्रकाशन सम्बन्धी त्रुटियोंसे भी अवगत करायेंगे ताकि अगले संस्करणमें उनको परिमार्जित किया जा सके।

इत्यलं

ब्र. संदीप 'सरल'
अनेकान्त ज्ञानमंदिर
शोधसंस्थान, बीना
दिनाँक-1 जनवरी 2003

आशीर्वाद

जैनदर्शनमें न्यायशास्त्रका अपना विशिष्ट स्थान है। प्रमाण, नय निक्षेप आदिकी विवेचना पूर्वक धर्म और दर्शनके गूढ़ प्रमेयोंका गूढ़तम विवेचन न्यायशास्त्रोंका प्रमुख प्रतिपाद्य है।

परीक्षामुख न्यायशास्त्रका एक महत्त्वपूर्णग्रन्थ है। प्रमेयरत्नमाला और प्रमेयकमलमार्तण्ड जैसे महाग्रन्थ इसीके सूत्रोंकी टीकाके रूपमें रचे गये है। सिद्धान्त ग्रन्थोंमें जो स्थान 'तत्त्वार्थसूत्र' का है। वही स्थान न्यायशास्त्रमें परीक्षामुखका है। इसके सीमित सूत्रोंमें ही न्याय शास्त्रके समस्त प्रमेयोंका परिचय प्राप्त हो जाता है। इस एक ग्रन्थके अध्ययन मात्रसे न्यायशास्त्रमें प्रवेश हो जाता है।

क्षु. विवेकानंदसागर जी दृढ़ अध्यवसायी, लगनशील स्वाध्यायी साधक है। वे निरन्तर ज्ञान-ध्यानमें लीन रहते हुए तत्त्व-जिज्ञासुओंको अध्यापन भी कराते रहते हैं। न्याय और व्याकरण जैसे गूढ़ विषयोंमें आपकी विशेषगति है। प्रस्तुत कृति क्षु.जी की अध्ययनशीलता का उत्कृष्ट निदर्शन है।

प्रस्तुत कृतिके माध्यमसे क्षु.जी ने परीक्षामुखके प्रत्येक सूत्रों को संस्कृत टीकाके अर्थके साथ अन्वय और प्रश्नोत्तरीके माध्यमसे बड़ी बोधगम्य शैलीमें एक-एक सूत्रके अर्थको खोल दिया है। इससे यह कृति न्यायशास्त्रके प्राथमिक अध्येताओंके लिए भी बड़ी सुगम बन पड़ी है। निश्चित ही इस कृतिके अध्ययन और अनुशीलनसे उपेक्षित होती जा रही न्याय शास्त्रके अध्ययनकी वृत्ति को प्रोत्साहन मिलेगा तथा न्यायशास्त्रके प्राथमिक अध्येताओंके लिए यह कृति एक मार्ग दर्शिका का कार्य करेगी।

क्षु. जी के इस श्रमसाध्य/उपयोगी प्रस्तुतिके लिए मेरी ओर से हार्दिक आशीर्वाद।

मुनि प्रमाणसागर

अपनी बात एवं आशीर्वाद

वीतराग, अर्हन्त, सर्वज्ञ प्रणीत जिनागम अनेकान्तमय है और स्याद्वाद शैलीमें निबद्ध है। जहाँ कहीं भी तत्त्वोंका विवेचन होता है उसका मुख्य आधार अनेकान्त स्याद्वादमय जिनागम ही होता है।

अनेकान्त और स्याद्वादको हम प्रमाण मात्रसे समझ सकते है जो प्रमाण है वह केवलज्ञानमय है प्रमाणही सम्यक्ज्ञान है शेष ज्ञान मिथ्या है। प्रमाणज्ञानके स्वरूप एवं भेदोंका वर्णन करने वाले शताधिक ग्रन्थ है पर वे सभी दुरुह एवं दुर्लभ है कई ग्रन्थ तो अप्राप्य है, जो प्राप्य हैं उन्हें समझना सभीके क्षयोपशमके वशमें नहीं है। परन्तु हम अल्पज्ञोंके सातिशय पुण्योदयसे परमपूज्य आचार्य माणिक्यनंदिजी ने अपनी प्रज्ञासे परीक्षामुख नामक ग्रन्थकी रचना करके मात्र 208 सूत्रोंमें गागर में सागर भर दिया है। सर्वप्रथम उन्हींको त्रियोगसे नमोस्तु करते है। इसके बाद इस सूत्रग्रन्थका अनुवाद प. मोहनलाल जी शास्त्री, जबलपुर, ने किया है। परन्तु सुव्यस्थित न होनेसे पढ़नेमें सरलता नहीं थी, फिर भी हम बहुत आभारी है जिन्होंने यह श्रमसाध्य कार्य किया।

मेरा जीवन वैराग्यपथ पर बढ़ा और पूज्य गुरुवर श्री 108 सरलसागर जी का चरण सान्निध्य मिला उन्हींके चरणोंमें रहकर न्याय-व्याकरणका अध्ययन किया। उन्हींकी आशीष छायामें मेरी बुद्धि कुछ समझने लायक बनी एतदर्थ उनके पावन चरण कमलोंमें शत्-शत् बार नमोस्तु। कर्मोदयवशात् पृथक् विहारका अवसर आया और चंचलमनको स्थिर करनेके लिए स्वाध्यायही अमोघ साधन था, उसी स्वाध्याय और पठन-पाठनकी रुचिके परिणाम स्वरूप परीक्षामुख ग्रन्थके अनुवादकी अन्तस् प्रेरणा मिली, और कलम चल पड़ी। क्षयोपशमज्ञानसे जो कुछ किया वह सब लगन और पुरुषार्थका ही फल है। प्रस्तुत अनुवादको सर्वप्रथम अभीक्ष्णज्ञानोपयोगी, आध्यात्मिक संत परम पूज्य मुनि श्री 108 प्रमाणसागरजी ने अवलोकन किया और मुझे आशीर्वाद और प्रेरणा दी कि इसे शीघ्र प्रकाशित होना चाहिए। पूज्य मुनिश्रीकी

प्रेरणाको मैं नहीं टाल

सका और सहजमें मन प्रकाशित कराने का बन गया। पूज्य मुनिश्री को मैं त्रियोगसे भक्तिपूर्वक नमोस्तु करता हूँ। मुजफ्फरनगरकी परम विदुषी डॉ. सूरजमुखीजी ने अत्यन्त सहज एवं सरलतासे सम्पादन कर प्रकाशन के योग्य बनाया उनका भी मैं बहुत आभारी हूँ ग्रन्थके प्रकाशनमें श्री ब्र. संदीप 'सरल' अनेकान्त ज्ञानमंदिर शोधसंस्थान, बीना ने आवश्यक परामर्श देकर मुझे कृतार्थ किया और अपनी संस्था से प्रकाशन के योग्य समझा। इस सारे कार्य को देखकर कुरवाई नगरके सुधी श्रावक श्री श्रेयांस कुमार जी जैन शिक्षक, श्री विनोद कुमार जैन (विधायक), एवं श्री मुकेश कुमार जी कठरया अपनी उदार भावनाओंको नहीं रोक सके और कृतिके प्रकाशनमें अर्थ सहयोग देकर जिनवाणीके प्रचार-प्रसारमें सहभागी बने। वीर प्रभुसे प्रार्थना है कि तीनों अर्थ सहयोगी अज्ञान नाश करते हुए ज्ञानी बनकर संसार सागरसे पार हों। कृतिके प्रकाशनमें सभी सहयोगियोंको हार्दिक शुभाशीष। ग्रन्थके अनुवाद करते समय त्रुटियाँ रह जाना सम्भव है। अतः त्रुटि हेतु क्षमा चाहता हूँ, सुधीजन त्रुटियोंसे मुझे अवश्य अवगत करावें ताकि आगे सुधार कर सकूँ। आशा है कि पाठकगण समादर करेंगे।

क्षु. विवेकानंदसागर

प्रस्तावना

जैन न्यायके संस्थापक, महान तार्किक, आचार्य समन्तभद्रस्वामी, जैन शासनकी कीर्तिध्वजाको शास्त्रार्थोंके माध्यमसे संरक्षित रखने वाले आचार्य भट्टाकलंकदेव, जैन न्यायके महान ग्रन्थों पर विस्तृत एवं विशद टीका ग्रन्थोंका स्रजन करने वाले आचार्य विद्यानंदि, आचार्य प्रभाचन्द्र आदि तार्किकोंने जैनन्यायके महान ग्रन्थोंका स्रजन कर माँ भारतीके भण्डारको समृद्ध किया है। इन महान आचार्योंने अपनी तीक्ष्ण प्रज्ञाछैनीसे पर पक्ष द्वारा प्रतिपादित अनेकान्त, स्याद्वाद, सिद्धान्तों पर किए गए कुठाराघातोंका निराकरण करते हुए जैन दर्शनमें मान्य वस्तुतत्त्वकी व्यवस्थाको गौरवशाली प्रतिष्ठा दिलाई है। पहले जैन न्यायग्रन्थोंकी परम्पराका युग था। जैनाचार्योंने अनेकानेक जैन न्याय ग्रन्थोंका मूल स्रजन किया। उत्तरवर्ती आचार्योंने इन ग्रन्थोंपर विशालकाय टीकात्मक ग्रन्थोंका स्रजन कर इस परम्पराको जीवित रखा है।

विशालकायात्मक न्यायग्रन्थोंका आलोकन करके **जैन न्यायका आद्य सूत्रग्रन्थ परीक्षामुख** आचार्य माणिक्यनंदीजी का अगाध वैदुष्य एवं सूक्ष्मप्रज्ञताका परिचायक है। जो अल्पमेधावीजन जैनन्यायके उन विशाल ग्रन्थोंमें प्रवेश नहीं कर सकते हैं, उनके लिए यह ग्रन्थ अत्यन्त उपयोगी है। यह लघुकाय ग्रन्थ होते हुए भी गागरमें सागरकी उक्तिको चरितार्थ करता है। जैनदर्शनमें जो गौरवपूर्ण स्थान तत्त्वार्थसूत्रको प्राप्त हुआ है वही स्थान जैनन्याय ग्रन्थोंमें परीक्षामुखको प्राप्त हुआ है। परीक्षामुख ग्रन्थके बिना जैनन्यायके अन्य ग्रन्थोंको पढ़ना सम्भव नहीं है।

ग्रन्थका परिमाण एवं प्रतिपाद्य विषय –

परीक्षामुखमें छह परिच्छेद हैं और 208 सूत्र हैं। परीक्षामुखका प्रतिपाद्य विषय प्रमाण एवं प्रमाणाभासका वर्णन करना है। प्रथम परिच्छेद में 13 सूत्र हैं। इस परिच्छेदमें प्रमाण सामान्यकी विवेचनाकी है। दूसरे परिच्छेदमें 12 सूत्रोंके माध्यमसे प्रत्यक्ष प्रमाणका वर्णन किया है। तीसरे परिच्छेदमें 97 सूत्र है। इस परिच्छेदमें परोक्षप्रमाणका वर्णन किया है। चतुर्थ परिच्छेदमें 9 सूत्रोंके माध्यमसे प्रमाणके विषयका वर्णन किया गया है।

पंचम परिच्छेदमें 3 सूत्रोंके द्वारा प्रमाणके फलका वर्णन करते हुए अंतिम षष्ठ परिच्छेदमें 74 सूत्रोंके द्वारा प्रमाणाभास, प्रत्यक्षाभास, परोक्षाभास, अनुमानाभास, संख्याभास, विषयाभास तथा फलाभास आदि का वर्णन किया गया है।

परीक्षामुख पर टीकाग्रन्थ :-

इस ग्रन्थ पर अनेक संस्कृत टीकाओंका स्रजन किया है। जिनका उल्लेख निम्न प्रकार है -

1. **प्रमेयकमलमार्तण्ड** - आचार्य प्रभाचन्द्र द्वारा रचित बृहत्काय व्याख्या। इस ग्रन्थका प्रकाशन हिन्दी टीकाके साथ 3 खण्डोंमें किया जा चुका है।

2. **प्रमेयरत्नमाला** - आचार्य लघुअनंतवीर्य द्वारा रचित मध्यमपरिमाणकी सरल एवं विशद व्याख्या है। इसका प्रकाशन भी हिन्दी टीकाके साथ अनेक स्थानोंसे हुआ है।

3. **प्रमेयरत्नालंकार** - तार्किक विद्वान् श्री चारुकीर्ति भट्टारक (अठारहवीं सदी) द्वारा रचित व्याख्या है। इस ग्रन्थका हिन्दी अनुवाद होना चाहिए। मूल टीका मैसूर विश्वविद्यालयसे बहुत पहले प्रकाशित हुई है।

4. **न्यायमणिदीपिका** - श्री अजितसेन विद्वान् द्वारा रचित व्याख्या। इसका सम्पादन-अनुवाद एवं प्रकाशन होना चाहिए।

5. **अर्थप्रकाशिका** - श्री विजयचन्द्रनामक विद्वान् द्वारा रचित व्याख्या, अद्यतन अप्रकाशित।

6. **प्रमेयकंठिका** - श्री शातिवर्णी द्वारा परीक्षामुखके प्रथम सूत्रपर लिखी व्याख्या।

उपरोक्त संस्कृत टीकाओंके अलावा श्री पं जयचन्द्र जी छाबडाकी भाषा वचनिकाभी अपना महत्त्वपूर्ण स्थान रखती है। परीक्षामुखके सूत्रोंको माध्यम बनाकर प्रमेयकमलमार्तण्ड ग्रन्थकी विषय वस्तुको भी सरल हिन्दी भाषामें प्रतिपादित किया है प्रो. उदयचन्द्र जैन सर्वदर्शनाचार्य, वाराणसीने। जो प्रमेयकमलमार्तण्ड परिशीलनके नामसे प्रकाशित हुआ है।

सूत्रकार आचार्यमाणिक्यनन्दि - आचार्य माणिक्यनन्दि नंदि परम्पराके प्रतिष्ठित आचार्य हुए है। आपके गुरुका नाम रामनन्दि था। आपका

समय डॉ. दरबारीलाल कोठिया न्यायाचार्यने 1028 ईस्वी सिद्ध किया है। आप जैन दर्शनके साथ इतर दर्शनोंके भी पारंगत तार्किक शिरोमणि थे। आप एक मात्र कृति परीक्षामुखकी रचना कर जैन न्याय जगत में अमर हो गये। उत्तरवर्ती अनेक आचार्योंने अत्यन्त श्रद्धाके साथ आपके लिए उच्च सम्बोधन देते हुए स्मरण किया है।

इस प्रकार परीक्षामुखग्रन्थ एवं ग्रन्थकार विषयक जानकारी प्राप्त करके पाठकगण ज्ञान रश्मियोंसे अपने तिमिरको हटाकर ज्ञानकोशको समृद्ध करेंगे।

न्याय ग्रन्थोंकी परम्पराको पुनर्जीवित किया जावे - आजके समयमें न्याय जैसे शुष्क, जटिल विषयको कोई पढना नहीं चाहता है। त्यागी वर्ग द्वारा भी इन ग्रन्थोंका स्वाध्याय नहीं किया जा रहा है और ये ग्रन्थ अल्मारियोंमें रखे हुए चूहों और दीमकोंके शिकार बनते जा रहे हैं। इस बातको कभी भूलना नहीं चाहिए कि न्याय ग्रन्थोंका अध्ययन किये बिना अध्यात्मिक ग्रन्थोंके रहस्योंको समझ नहीं सकते हैं। अत: अध्यात्मके रहस्यको समझने के लिए प्रमाण, नय स्वरूप न्याय ग्रन्थोंकी ओर हमें रुचि बनाना चाहिए। इसके लिए आवश्यक है कि परीक्षामुख, न्याय दीपिका जैसे लघु ग्रन्थोंके शिविर आयोजित किये जाना चाहिए।

प्रस्तुत प्रकाशन की उपयोगिता - परीक्षामुख सटीकका प्रकाशन पं. मोहनलालशास्त्री, जबलपुरके सम्पादकत्वमें पूर्वमें हुआ था। उक्त प्रकाशनमें सूत्रोंके साथ संस्कृत टीका भी दी हुई थी किन्तु उसमें उल्लेख नहीं किया गया है कि उसके टीकाकार कौन है? पुस्तक अनुपलब्ध थी। समयकी आवश्यकता थी कि इसका प्रकाशन होना चाहिए। अत: इस दिशामें ज्ञानाराधनामें सतत् अध्यवसायी श्रद्धेय क्षु. 105 विवेकानदजी ने कदम बढ़ाया और सूत्रोंका भाषार्थ, संस्कृतटीका का सरलार्थ एवं अंतमें सूत्र संबंधित प्रश्नोत्तरीसे इस कृतिको जनसामान्यके लिए पठनीय बना दिया है। आशा है पाठकगण इस कृतिसे भरपूर लाभान्वित होंगे।

ब्र. संदीप 'सरल'
अनेकान्त ज्ञानमंदिर शोधसंस्थान,
बीना (सागर) म.प्र.

सम्पादकीय

जैनन्यायशास्त्रके प्रकाण्ड विद्वान् आचार्य माणिक्यनन्दि का एकमात्र ग्रन्थ 'परीक्षामुख' ही मिलता है। परीक्षामुखग्रन्थ सूत्र शैलीमें लिखा गया है। यह जैन न्यायका प्रथम सूत्रग्रन्थ है। इसमें प्रमाण और प्रमाणाभासोंका विस्तृत विवेचन किया गया है। जिस प्रकार दर्पणमें हमें अपना प्रतिबिम्ब स्पष्ट दिखलाई पड़ता है, उसी प्रकार परीक्षामुख रूपी दर्पणमें प्रमाण और प्रमाणाभासोंका स्पष्ट ज्ञान होता है। इसग्रन्थमें प्रमाणके स्वरूप, संख्या तथा प्रमाणाभासकी परीक्षा की गयी है। प्रमाण और प्रमाणाभासको जानने की आवश्यकताका प्रतिपादन करते हुए ग्रन्थकार कहते हैं -

प्रमाणादर्थसंसिद्धिस्तदाभासद्विपर्ययः।
इति वक्ष्ये तयोर्लक्ष्म सिद्धमल्पं लघीयसः।।

प्रमाणके द्वारा सम्पूर्णज्ञेय पदार्थोंकी समीचीन परीक्षा की जाती है और प्रमाणाभाससे विपरीत निर्णय होता है। अतः न्यायशास्त्रमें अव्युत्पन्नजनोंको प्रमाण और प्रमाणाभासका ज्ञान करानेके लिए उनके स्वरूपका विवेचन किया जाता है। इस ग्रन्थमें 208 सूत्र और छह समुद्देश है।

प्रथम समुद्देशमें 13 सूत्रोंके द्वारा प्रमाणके स्वरूपका विस्तृत विवेचन किया गया है। आचार्यश्रीने 'स्वापूर्वार्थव्यवसायात्मक ज्ञानं प्रमाणम्' सूत्रके द्वारा प्रमाणका स्वरूप बताते हुए कहा है कि वह निश्चयात्मक ज्ञान जो स्वयंको भी जानता है और पहले किसी प्रमाणसे नहीं जाने हुए पदार्थोंको भी जानता है, प्रमाण है। अग्रिम सूत्रोंमें प्रत्येक विशेषणकी सार्थकता सिद्ध करते हुए नैयायिकोंके द्वारा मान्य सन्निकर्ष बौद्धोंके द्वारा मान्य निर्विकल्पक प्रत्यक्ष, ग्रहीतग्राही धारावाही ज्ञान तथा अस्वसंवेदी ज्ञानकी प्रमाणताका निराकरण करते हुए हितग्राही और अहितके परिहारमें समर्थ दीपकके समान स्वपरावभासी ज्ञानको ही प्रमाण सिद्ध किया है तथा प्रमाणकी प्रमाणताकी सिद्धि कथंचित् स्वतः और कथंचित् परतः बतायी है।

द्वितीय समुद्देशमें 12 सूत्र है। इस समुद्देशमें 'तद्द्वेधा' तथा 'प्रत्यक्षेतरभेदात्' सूत्रके द्वारा प्रमाणके प्रत्यक्ष और परोक्ष दो भेद बताकर चार्वाक, बौद्ध, सांख्य, नैयायिक, प्रभाकर तथा मीमांसकों द्वारा

मान्य एक, दो, तीन आदि प्रमाणोंकी संख्याका निराकरण किया है। 'विशदं प्रत्यक्षं' सूत्रके द्वारा विशद (निर्मल) ज्ञानको प्रत्यक्ष बताया है और प्रत्यक्षके मुख्य और सांव्यवहारिक दो भेद किये है। वीर्यान्तराय तथा ज्ञानावरण कर्मके क्षयोपशम तथा इन्द्रिय और मनकी सहायतासे होने वाले ज्ञानको सांव्यहारिक प्रत्यक्ष तथा ज्ञानावरणकर्मके क्षय एवं इन्द्रिय आलोक आदिकी अपेक्षा न रखनेवाले अतीन्द्रिय ज्ञानको मुख्य प्रत्यक्ष कहा है। इस समुद्देशमें अर्थ और आलोकको ज्ञानका कारण माननेमें दोष दिखानेके साथ-साथ ज्ञानके कारण को ज्ञानका विषय मानने पर व्यभिचारका प्रतिपादन किया गया है।

तृतीय परिच्छेद में 97 सूत्र है। इसमें अविशद ज्ञानको परोक्षका लक्षण बताकर परोक्ष प्रमाणके स्मृति, प्रत्यभिज्ञान, तर्क, अनुमान और आगम पाँच भेदोंका उदाहरण सहित प्रतिपादन किया गया है। अनुमानके दो अंगोंका विवेचन, उदारहण, उपनय, निगमन कथामें उदाहरणादि की स्वीकृति हेतु और अविनाभावका स्वरूप, साध्यका लक्षण साध्यके इष्ट, अबाधित और असिद्ध विशेषणोंकी सार्थकता, धर्मीका प्रतिपादन, धर्मीकी सिद्धिके प्रकार, पक्ष प्रयोगकी आवश्यकता, अनुमानके स्वार्थानुमान परार्थानुमान भेदोंका वर्णन, हेतुके उपलब्धि, अनुपलब्धि तथा उनके विरुद्धोपलब्धि अविरुद्धोपलब्धि, विरुद्धानुपलब्धि, अविरुद्धानुपलब्धि एवं अविरुद्धोपलब्धिके व्याप्य, कार्य, कारण, पूर्वचर, उत्तरचर, सहचर, विरुद्धोपलब्धिके भी विरुद्धव्याप्य, विरुद्धकार्य, विरुद्धकारण, विरुद्धपूर्वचर, विरुद्धउत्तरचर और विरुद्धसहचर, अविरुद्धानुपलब्धि के अविरुद्धस्वभावानुलब्धि, व्यापकनुपलब्धि, कार्यानुपलब्धि, कारणानुपलब्धि, पूर्वचरानुपलब्धि, उत्तरानुपलब्धि, सहचरानुपब्धि, विरुद्धानुपलब्धिके विरुद्ध कार्यानुपलब्धि विरुद्धकारणानुलब्धि और विरुद्धस्वभावानुपलब्धि आदि सभी भेद प्रभेदोंका विशद विवेचन किया गया है। बौद्धोंके प्रति कारण हेतुकी सिद्धि, आगमप्रमाणका लक्षण तथा शब्दमें वस्तु प्रतिपादनकी शक्तिका भी इस समुद्देशमें वर्णन मिलता है।

चतुर्थ समुद्देशमें 9सूत्र है। 'सामान्यविशेषात्मा तदर्थो विषय:' सूत्रके द्वारा सामान्य विशेष उभयरूप प्रमाणके विषयको सिद्ध कर सांख्योंके केवल विशेष तथा नैयायिक विशेषिकोंके स्वतन्त्ररूपसे सामान्यविशेषका निराकरण किया गया है। इस समुद्देशमें सामान्यके

तिर्यक् सामान्य तथा ऊर्ध्वता सामान्य एवं विशेषके पर्याय और व्यतिरेक भेदोंका भी उदाहरण सहित विवेचन किया गया है।

पंचम समुद्देशमें 3 सूत्र हैं। इसमें प्रमाणके फलका विवेचन किया गया है। अज्ञाननिवृत्तिको प्रमाणका साक्षात् फल तथा हान, उपादान और उपेक्षाको परम्परा फल बताकर उसे प्रमाणसे कथंचित् भिन्न और कथंचित् अभिन्न सिद्ध किया है।

षष्ठ समुद्देशमें 74 सूत्र हैं। इसमें प्रमाणाभासोंका विशद विवेचन हुआ है। इसमें स्वरूपाभास, प्रत्यक्षाभास परोक्षाभास, स्मरणाभास, प्रत्यभिज्ञानाभास, तर्काभास, अनुमानाभास, पक्षाभास, हेत्वाभास, हेत्वाभासके असिद्ध, विरुद्ध, अनैकान्तिक, अकिंचित्कर भेद उनके उदाहरण, दृष्टान्ताभास, दृष्टान्ताभासके भेद, बालप्रयोगाभास, आगमाभास, संख्याभास, विषयाभास, फलाभासको दिग्दर्शित करते हुए वादी-प्रतिवादीकी जय-पराजय व्यवस्थाका भी प्रतिपादन किया गया है।

इस ग्रन्थपर लघु अनंतवीर्य द्वारा प्रमेयरत्नमाला, प्रभाचन्द्राचार्य द्वारा प्रमेयकमलमार्तण्ड, भट्टारक चारुकीर्ति द्वारा प्रमेयरत्नालंकार शान्तिवर्णी द्वारा प्रमेयकण्ठिका आदि अनेक टीकाएं लिखी गयी हैं, जो सामान्य पाठकके लिये दुर्बोध हैं। पू. क्षु. 105विवेकानन्दसागर महाराज ने सम्पूर्ण ग्रन्थके प्रत्येक सूत्रके शब्दार्थ, संस्कृतार्थ तथा हिन्दी अर्थके साथ-साथ सूत्रगत प्रत्येक शब्दकी सार्थकता सिद्ध करते हुए विशिष्ट भावोंको सरल और सुबोध भाषामें प्रश्नोत्तर द्वारा भी पाठकको हृदयगम करानेका स्तुत्य प्रयास किया है। आप द्वारा अनुदित और व्याख्यायित प्रस्तुत कृति न्यायशास्त्रसे अनभिज्ञ सामान्य पाठकको न्यायका सामान्य ज्ञान करानेके लिए अंधकारमें पथभ्रष्ट मानवके लिए आलोक स्तम्भके समान सिद्ध होगी। समग्रत: कृति लेखकके गहनज्ञान अद्वितीय सूझ-बूझ और अथक श्रमकी परिचायिका है। यह श्रमसाध्य कृति शीघ्रही अनेकान्त ज्ञानमंदिर शोधसंस्थान, बीना(सागर)म.प्र. द्वारा प्रकाशित होकर न्यायशास्त्रके जिज्ञासुओंकी जटिल गुन्थियोंको सुलझानेमें सहायक होगी इस भावना के साथ -

डॉ. सूरजमुखी जैन

अलका 35, इमामबाड़ा

मुजफ्फरनगर (उ.प्र.)

विषयानुक्रमणिका

आचार्यप्रवर श्री माणिक्यनन्दिविरचित

परीक्षामुख सटीक

प्रथमः परिच्छेदः

ग्रन्थकार की प्रतिज्ञा और उद्देश्य

प्रमाणादर्थसंसिद्धि - स्तदाभासाद्विपर्ययः।
इति वक्ष्ये तयो-र्लक्ष्म, सिद्धमल्पं लघीयसः॥

अन्वय - अहं वक्ष्ये। किं तत्? लक्ष्म। किं विशिष्टं लक्ष्म? सिद्धम्। पुनरपिकथंभूतं? अल्पं। कान्? लघीयसः। कयोस्तल्लक्ष्म? तयोः प्रमाण तदाभासयोः। कुतः? यतः अर्थस्य संसिद्धि भवति। कस्मात्? प्रमाणात्। विपर्ययः भवति। कस्मात्? तदाभासात् इति शब्दः हेत्वर्थे इति हेतोः।

श्लोकार्थ - **प्रमाणात्** = प्रमाण से (सम्यग्ज्ञान), **अर्थ** = पदार्थ की (प्रयोजन),**संसिद्धिः** = सम्यक्सिद्धि, **तदाभासात्** = उस प्रमाणाभास से, **विपर्ययः** = विपरीत (सम्यक् सिद्धि नहीं होती), **इति** = इस प्रकार, **वक्ष्ये** = कहूँगा, **तयोः** = उन दोनों के (प्रमाण और प्रमाणाभास के) **लक्ष्म** = लक्षण को, **सिद्धम्** = पूर्वाचार्यों से प्रसिद्ध, **अल्पं** = संक्षिप्त(पूर्वापर विरोध से रहित), **लघीयसः** = अल्पबुद्धियोंके हितार्थ,।

अन्वयार्थ - मैं ग्रन्थकार (माणिक्यनन्दि आचार्य) कहूँगा। वह क्या है? लक्षण। वह लक्षण कैसा है? अल्प है - संक्षिप्तमें पूर्वापर विरोध से रहित है, शब्दकी अपेक्षा अल्प है पर अर्थकी दृष्टिसे महान है। वह लक्षण किसके उद्देश्यसे कहा जा रहा है? मंदबुद्धि वाले शिष्योंके उद्देश्यसे कहा जा रहा है। यहाँ किन दो के लक्षण को कहा जा रहा है? अर्थात् प्रमाण और प्रमाणाभासके। क्योंकि प्रमाणसे जानने योग्य पदार्थकी सिद्धि होती है और प्रमाणाभाससे पदार्थकी सम्यक्सिद्धि नहीं होती। श्लोकमें इति शब्द हेतु अर्थमें है।

श्लोकार्थ - प्रमाणसे (सम्यग्ज्ञान) अभीष्ट अर्थकी सम्यक् प्रकारसे सिद्धि होती है और प्रमाणाभाससे (मिथ्याज्ञानसे) इष्ट अर्थकी सिद्धि नहीं होती। इसलिए मैं प्रमाण और प्रमाणाभासका पूर्वाचार्य प्रसिद्ध एवं पूर्वापर दोषसे रहित संक्षिप्त लक्षणको लघु जनों (मंद बुद्धिवालों) के हितार्थ कहूँगा।

प्रश्नोत्तरी

प्रश्न 1- परीक्षामुख ग्रन्थके लेखक कौनसे आचार्य है?

उत्तर - परीक्षामुख ग्रन्थके लेखक आचार्य माणिक्यनन्दि जी हैं।

प्रश्न 2- इस ग्रन्थमें किसका कथन है?

उत्तर - इस ग्रन्थमें प्रमाण और प्रमाणाभासके लक्षणोंका कथन है।

प्रश्न 3- परीक्षामुख किस अनुयोगका ग्रन्थ है?

उत्तर - परीक्षामुख द्रव्यानुयोगका ग्रन्थ है।

प्रश्न 4- इस ग्रन्थका नाम परीक्षामुख क्यों है?

उत्तर - परीक्षानाम वस्तु स्वरूपके विचार करनेका है। विवक्षित वस्तुका स्वरूप इस प्रकार है या नहीं अथवा अन्य प्रकार है। इस प्रकारसे निर्णय करनेको परीक्षा कहते हैं। इस ग्रन्थमें प्रमाण के स्वरूप की परीक्षा की गई है। और इसके द्वारा ही समस्त वस्तुओं की परीक्षाकी जाती है, इसलिए इस ग्रन्थ का नाम ''परीक्षामुख'' रखा गया है।

प्रश्न 5- यह ग्रन्थ किस उद्देश्यसे लिखा गया है?

उत्तर - अव्युत्पन्न लोग न्यायरूप समुद्रमें अवगाहन कर सकें इसी उद्देश्य से यह ग्रन्थ लिखा गया है।

प्रश्न 6- मगलाचरणमें इष्टदेव को नमस्कार क्यों नहीं किया?

उत्तर - ऐसी शंका नहीं करना चाहिए क्योंकि इष्टदेवताको नमस्कार मन और कायासे भी किया जाना संभव है। संभव है वचन निबद्ध न करके मन से कर लिया है। अथवा कायसे साष्टांग नमस्कार कर लिया हो। अथवा प्रमाण शब्दका अर्थ अरहंत परमेष्ठी भी होता है। **मा**-अन्तरग और बहिरग लक्ष्मी, **आण शब्द**- दिव्यध्वनि, **प्र** = उत्कृष्ट।मा च आणश्च माणौ, प्रकृष्टौ माणौ यस्य सः प्रमाणः। उत्कृष्ट लक्ष्मी और उत्कृष्ट वाणी सहित व्यक्ति अरहंत भगवान ही है। इस प्रकार यहाँ प्रमाण शब्दका अर्थ अरिहंत हुआ।

प्रश्न 7- आचार्य भगवन ने किसे कहनेकी प्रतिज्ञा की है?

उत्तर - प्रमाण और प्रमाणाभासको कहने की प्रतिज्ञा की है।

प्रश्न 8- प्रमाण और प्रमाणाभास क्या होता है?

उत्तर - प्रमाणसे अभीष्ट अर्थकी सम्यक् प्रकार सिद्धि होती है और प्रमाणाभाससे इष्ट अर्थकी संसिद्धि नहीं होती है।

प्रश्न 9- प्रमाण और प्रमाणाभास किसे कहते है?

उत्तर - सम्यग्ज्ञानको प्रमाण और मिथ्याज्ञानको प्रमाणाभास कहते है।

प्रश्न 10-पदार्थ किसे कहते है?

उत्तर - पदके अर्थको पदार्थ कहते है अथवा क्षायोपशमिक एवं क्षायिकज्ञानसे जो भी विश्वमें देखने और जाननेमें आता है, वह सब पदार्थ है।

प्रश्न 11-"लघीयस" से क्या प्रयोजन है?

उत्तर - लघीयस शिष्योंके प्रयोजनसे कहा जा रहा है। लाघव तीन प्रकारका होता है बुद्धिकृत, शरीरकृत, कालकृत। इनमेंसे यहाँ पर बुद्धिकृत लाघव ग्रहण करना चाहिए। क्योंकि जो बुद्धिसे लघु है, मंदबुद्धि है वे ही प्रकृतमें विवक्षित है।

प्रश्न 12-'अल्प' से क्या प्रयोजन है?

उत्तर - यद्यपि वह लक्षण ग्रन्थकी अपेक्षा अल्प है तथापि वह अर्थकी दृष्टिसे महान है।

प्रश्न 13-लक्षण किसे कहते है।

उत्तर -1. मिले हुए बहुतसे पदार्थोमें से किसी एक पदार्थ को जुदा करने वाले हेतुको लक्षण कहते है।

2. जिसके अभावमें द्रव्यका ही अभाव हो जाए वही उस का लक्षण है।

3. जिसके द्वारा पदार्थ लक्षित किया जाता है वह भी लक्षण है।

प्रश्न 14-ग्रन्थमें (परीक्षामुखमें) कितने सूत्र एवं परिच्छेद है?

उत्तर - 208 सूत्र है एवं 6 परिच्छेद (समुद्देश) है।

प्रश्न 15-ग्रन्थ कैसे होते है?

उत्तर - संबंध, अभिधेय, शक्यानुष्ठान, इष्ट प्रयोजन वाले होते है।

प्रश्न 16-प्रयोजन कितने प्रकारका होता है।

उत्तर - साक्षात् प्रयोजन, परंपरा प्रयोजन प्रस्तुत मंगलाचरणमे 'वक्ष्ये' इस शब्दके द्वारा साक्षात् प्रयोजन और अर्थ संसिद्धि से परंपरा प्रयोजन कहा गया है।

प्रश्न 17-कथा कितने प्रकारकी होती है?

उत्तर - 1. वीतराग कथा, 2.विजिगीषु कथा। इस तरह इस ग्रन्थ में एक प्रकार की विजिगीषु कथा प्रयोजनीय है। होती चार प्रकार की है।

प्रश्न 18-वीतरागकथा किसे कहते है।

उत्तर - गुरु तथा शिष्योंमें अथवा रागद्वेष रहित विशेष विद्वानोंमें तत्त्व के निर्णय होने तक जो आपसमें चर्चाकी जाती है वह वीतरागकथा है।

प्रश्न 19-विजिगीषुकथा किसे कहते है?

उत्तर - वादी और प्रतिवादीमें अपने पक्षको स्थापित करनेके लिए जीत-हार होने तक जो परस्परमें वचन प्रवृत्ति (चर्चा) होती है वह विजीगीषुकथा कहलाती है।

प्रश्न 20-प्रमाणके विषय में विवाद कितने प्रकारका है?

उत्तर - निम्न प्रकारका है -

1. प्रमाणस्वरूप, 2. प्रमाणसंख्या, 3. प्रमाणका विषय, 4. प्रमाणका फल।

प्रश्न 21-प्रस्तुत ग्रन्थके 6 परिच्छेदोंमें किसका निरूपण है?

उत्तर - प्रथमपरिच्छेदमें प्रमाणका लक्षण, द्वितीय परिच्छेदमें प्रमाणके भेद, तृतीय परिच्छेदमें परोक्षप्रमाणका लक्षण, चतुर्थ परिच्छेदमें प्रमाणका विषय, पंचम परिच्छेदमें प्रमाण का फल, षष्ठम् परिच्छेदमें प्रमाणाभासके स्वरूपका निरूपण है।

प्रश्न 22- सूत्र किसे कहते है?

उत्तर - अल्पाक्षरमसदिग्धं, सारवद्विश्वतो मुखम्।
अस्तोममनवद्यं व सूत्र सूत्रविदो विदुः।।

अर्थ - जिसमें अक्षर थोड़े हों, जो संशय रहित हो, सारभूत हो, जगत्प्रसिद्ध शब्दोंके प्रयोगसे युक्त हो विस्तृत न हो और निर्दोष हो ऐसी शब्द रचनाको सूत्रों के जानने वालों ने सूत्र कहा है।

अथ सूत्रानुवाद प्रारभ्यते

प्रमाणस्य लक्षणम् , प्रमाणका लक्षण -

स्वापूर्वार्थ व्यवसायात्मकं ज्ञानं प्रमाणम्॥1॥

सूत्रार्थ - **स्व** = अपने आपके, **अपूर्वार्थ** = जिसे किसी अन्य प्रमाणसे जाना नहीं है। **व्यवसायात्मकं** = निश्चय करने वाले, ज्ञानं = ज्ञानको, **प्रमाणं** = प्रमाण कहते हैं।

सूत्रार्थ - अपने आपके और जिसे किसी अन्य प्रमाणसे जाना नहीं है, ऐसे पदार्थके निश्चय करने वाले ज्ञानको प्रमाण कहते हैं।

संस्कृतार्थ - यत्स्वमन्यपदार्थान्वा विजानाति तत्, अथवा यत् स्वस्वरूपस्य वा निर्णयं विदधाति तदेव प्रमाणं (सम्यग्ज्ञानं) प्रोच्यते।

तथा चानुमानम् प्रमाणं स्वापूर्वर्थि व्यवसायात्मक ज्ञानस्यैव प्रमाणत्वात् यत्तु स्वापूर्वार्थ व्यवसायात्मक ज्ञानं न भवति तन्न प्रमाणं यथा संशयादि घटादिश्च प्रमाण च विवादापन्नं, तस्मात्स्वापूर्वार्थ व्यवसायात्मकज्ञानं प्रमाणम्।

संस्कृत टीकार्थ- जो अपने आपको अथवा अन्यपदार्थो को जानता है वह प्रमाण कहलाता है अथवा जो अपने स्वरूपके और अन्य पदार्थोंके स्वरूपके निर्णयको विशेषरूपसे धारण करता है, वह ही प्रमाण कहा जाता है।

इस सूत्र वाक्यमें अनुमान प्रयोगके द्वारा प्रमाणकी प्रमाणता का निरुपण किया गया है जैसे - स्वापूर्वार्थ व्यवसायात्मक ज्ञान ही प्रमाण है, प्रमाणता होनेसे। परंतु जो स्वापूर्वार्थ व्यवसायात्मक ज्ञान नहीं है वह प्रमाण नहीं होता है जैसे- संशयादि और घटादि। विवादको प्राप्तप्रमाण है। इसलिए स्वापूर्वार्थ व्यवसायात्मक ज्ञानप्रमाण है।

विशेष्य - **पक्ष (धर्मी)** = प्रमाण पद, **साध्य** = स्वापूर्वार्थ व्यवसायात्मक ज्ञान, **हेतु** = प्रमाणत्व, **दृष्टांत** = संशयादि निगमन = प्रामाणसामान्य माननेमें कोई भी विवाद नहीं है।

स्वापूर्वार्थ व्यवसायात्मक ज्ञानप्रमाण है, क्योंकि प्रमाणता उसमें पाई जाती है जो स्वापूर्वार्थ व्यवसायात्मक ज्ञान नहीं है वह प्रमाण भी

नही है। जैसे - संशयादि स्वापूर्वार्थ व्यवसायात्मक नहीं है, अतः प्रमाण नहीं है। जैसे - घट-पटादि। यतः प्रमाण स्वापूर्वार्थ व्यवसायात्मक होता है, अतः वह ज्ञान ही हो सकता है यहाँ प्रमाणस्वरूप हेतु का कथन असिद्ध भी नहीं है। उपरोक्त सूत्रमें प्रमाण विशेष्य है शेष विशेषण है जो अन्य मतों के प्रमाण स्वरूप का निराकरण करते है।

प्रश्न 23- सूत्रमें ज्ञान विशेषण क्यों दिया है?

उत्तर - नैयायिक मतावलम्बियोंके द्वारा मान्य अज्ञानरूप सन्निकर्षकी प्रमाणताका निराकरण करने के लिए जो सार्थक है।

प्रश्न 24- सूत्रमें व्यवसायात्मक विशेषण क्यों दिया है?

उत्तर - बौद्धों द्वारा मान्य निर्विकल्प प्रत्यक्षकी प्रमाणताका निराकरण करनेके लिए अर्थात् जिस ज्ञानमें विकल्पही नहीं फिर भी वह सशयका निराकरण कैसे करेगा इसलिए जैनाचार्य ने व्यवसायात्मक (निश्चायक) विशेषण दिया है।

प्रश्न 25- सूत्रमें अर्थ विशेषण क्यों दिया है?

उत्तर - विज्ञानाद्वैतवादी पुरुषाद्वैतवादी शून्यैकांतवादियोंके द्वारा मान्य प्रमाणके स्वरूपका निराकरण करनेके लिए 'अर्थ' पदको ग्रहण किया है।

प्रश्न 26- अर्थपदके साथ अपूर्व विशेषण क्यों दिया?

उत्तर - ग्रहीतग्राही धारावाहिक ज्ञानकी प्रमाणताके परिहारके लिए 'अपूर्व विशेषण दिया है।

प्रश्न 27- 'स्वपद' का सूत्रमें ग्रहण क्यों किया?

उत्तर - परोक्षज्ञान वादि मीमांसकों, अस्वसंवेदन ज्ञानवादी, संख्यों और ज्ञानान्तर प्रत्यक्ष ज्ञानादि योगों के मतों के निराकरणार्थ स्वपदका सूत्रमें ग्रहण किया गया।

प्रश्न 28- प्रमाण किसे कहते है?

उत्तर - जिसके द्वारा प्रकर्षसे अर्थात् संशय, विपर्यय और अनध्यवसायके व्यवच्छेद (निराकरण) से वस्तु तत्त्व जाना जाए वह प्रमाण कहलाता है।

प्रश्न 29- अन्यथानुपपत्ति किसे कहते है?

उत्तर - साध्यके बिना साधनके नहीं होनेको अन्यथानुपपत्ति कहते हैं।

प्रश्न 30- विचारवान कार्य करने वाले बुद्धिमान प्रमाणका अन्वेषण किसलिए करते हैं?

उत्तर - हित की प्राप्ति और अहित के परिहार के लिए करते हैं।

अब आगे अपने कहे गये प्रमाणके लक्षणमें जो ज्ञान यह विशेषण दिया है, उसका समर्थन करते हुए आचार्य भगवन् उत्तर सूत्र कहते हैं।

"हिताहितप्राप्तिपरिहार समर्थं हि प्रमाणं ततो ज्ञानमेव तत्"।।2।।

सूत्रान्वय :- **हित** = सुख, **अहित** = दुख, **प्राप्ति** = प्राप्त कराने वाला, **परिहार**= निराकरण करनेमें। समर्थं= समर्थ, **हि** = जिससे, **प्रमाणं** = प्रमाण, **ततः** = उससे **ज्ञानम्** = ज्ञान, एव = हि, **तत्** = वह।

सूत्रार्थ - यतः सुख की प्राप्ति और दुखका परिहार करनेमें समर्थ प्रमाण है अतः वह ज्ञान ही हो मकता है। "सन्निकर्ष नहीं।"

संस्कृतार्थ - इंद्रियार्थयोः संबध सन्निकर्षः। स च सन्निकर्षोऽचेतनो विद्यते अचेतनाच्च सुखावाप्तिः दुःख विनाशो वा न जायते, अतः सन्निकर्षः प्रमाणं नो भवेत्। परतु ज्ञानात्सुखावाप्तिः, दुःख विनाशो वा जायते, अतो ज्ञानमेव प्रमाणम्। यतः सुखावाप्तौ दुःख विनाशे वा यत् समर्थं तदेव प्रमाणं प्रोक्तम्।

अस्यानुमान प्रयोगश्चेत्थम् - प्रमाणं ज्ञानमेवेति प्रतिज्ञा हिताहितप्राप्तिपरिहार, समर्थत्वादिति हेतुः हिताहितप्राप्तिपरिहार समर्थं हि ज्ञानं, नान्यत् यथा घटादयः इत्युदाहरणम्। तथा चेदमित्युपनयः तस्मात्तथेति निगमनम्।।2।।

संस्कृत टीकार्थ- इंद्रिय और पदार्थका संबध सन्निकर्ष है और वह सन्निकर्ष अचेतन होता है और अचेतन से सुख की प्राप्ति अथवा दुःख का विनाश नहीं होता है। इसलिए सन्निकर्ष प्रमाण नहीं हो सकता। परंतु ज्ञानसे सुखकी प्राप्ति और दुःखका विनाश होता है। इसलिए ज्ञानही प्रमाण है जो सुखकी प्राप्ति होनेमें और दुखके विनाशमें समर्थ है।उस ज्ञानको ही प्रमाण कहते हैं। सूत्रोक्त कथनका अनुमान प्रयोग इस प्रकार है - प्रमाण ज्ञान ही है। (प्रतिज्ञा) क्योंकि वह हित की प्राप्ति और

अहितके परिहारमें समर्थ है। (हेतु) जो वस्तु ज्ञानरूप नहीं है, वह हितकी प्राप्ति और अहित के परिहार में भी समर्थ नही है जैसे - घटादिक (उदा.)। हितकी प्राप्ति और अहित के परिहार में समर्थ विवादापन्न प्रमाण है। (उपनय) अतः वह ज्ञान ही प्रमाण हो सकता है। (निगमन)।

प्रश्न 31- हित किसे कहते है?

उत्तर - सुख और सुखके कारणको हित कहते है।

प्रश्न 32- अहित किसे कहते है।

उत्तर - दु:ख और दु:खके कारणको अहित कहते है।

प्रश्न 33- सूत्रमें 'हि' किस अर्थमें है?

उत्तर - हेतु अर्थमें (यस्मात्)।

प्रश्न 34- सन्निकर्ष किसे कहते है?

उत्तर - इंद्रिय और पदार्थका संबंध सन्निकर्ष कहलाता है।

प्रश्न 35- सन्निकर्षको प्रमाण कौन मानता है?

उत्तर - नैयायिक।

प्रत्यक्ष तो निर्विकल्प है, अत: व्यवसायात्मक नहीं ऐसा कहने वाले बौद्धों को लक्ष्य में रखकर यह तृतीय सूत्र कहते हैं।

''तन्निश्चयात्मकं समारोपविरुद्धत्वादनुमानवत्''।।3।।

सूत्रान्वय :- तत् = वह (ज्ञान) **निश्चयात्मकं** = व्यवसायात्मक, **समारोप** = सशय-विपर्यय-अनध्यवसाय, **विरुद्धत्वात्** = विरोधी होनेसे, अनुमानवत्= अनुमानके समान।

सूत्रार्थ - वह ज्ञान निश्चयात्मक है क्योंकि समारोपका विरोधी होनेसे जैसे अनुमानकी तरह।

संस्कृतार्थ - यथा समारोपविरुद्धत्वाद् बौद्धांङ्गीकृतमनुमान तन्मते निश्चयात्मकं, तथार्हन्मते समारोपविरुद्धत्वात्प्रमाणमपि निश्चयात्मकम्।

संस्कृत टीकार्थ- जैसे समारोप का विरोधी होनेसे बौद्धोंके द्वारा स्वीकार अनुमान उनके मतमें निश्चयात्मक है।उसी प्रकार अर्हन्त् (जिन) के मतमें समारोपका विरोधी होनेसे प्रमाण भी (ज्ञान) निश्चयात्मक है। **विशेष्य** - **धर्मी** = प्रमाणरूपसे स्वीकृत ज्ञानरूप वस्तु। **साध्य** =

व्यवसायात्मक, **हेतु:** = समारोपका विरोधीपना, **दृष्टांत** = अनुमान।

प्रश्न 36- समारोप किसे कहते है?

उत्तर - संशय, विपर्यय और अनध्यवसाय को समारोप कहते है।

प्रश्न 37- अनुमान का दृष्टान्त क्यों दिया?

उत्तर - बौद्ध लोग प्रत्यक्षको निर्विकल्प मानते है और अनुमान को पदार्थोका निश्चय करने वाला मानते है। इसलिए जब आप अनुमान को निश्चयात्मक मानते है तो प्रत्यक्षको भी निश्चयात्मक मानना चाहिए।

प्रश्न 38- अनुमान किसे कहते है?

उत्तर - साधनसे साध्यके ज्ञानको अनुमान कहते हैं।

प्रश्न 39- जिन (अर्हन्त) किसे कहते है?

उत्तर - जो वीतरागी, सर्वज्ञ, हितोपदेशी होते है उन्हें जिन कहते है।

प्रश्न 40- अर्हन्तमतकी मुख्य विशेषता क्या है?

उत्तर - अहिंसा, सम्यक्, अनेकान्त, स्याद्वाद, अपरिग्रहता।

प्रश्न 41- सशय, विपर्यय किसे कहते है?

उत्तर - दो तरफ ढलता हुआ निर्णय रहित ज्ञान संशय कहलाता है एवं यथार्थसे विपरीत वस्तुका निश्चय कराने वाले ज्ञानको विपर्यय कहते है।

प्रश्न 42- अनध्यवसाय किसे कहते है?

उत्तर - नाम, जाति, संख्यादिके विशेष परिज्ञान न होनेसे अनिर्णीत विषय वाले ज्ञानको अनध्यवसाय कहते हैं।

अनिश्चितो ऽपूर्वार्थ:।।4।।

सूत्रान्वय :- अनिश्चित: = जिसका निश्चय न हो, **अपूर्वार्थ:** = अपूर्वार्थ।

सूत्रार्थ - जिस पदार्थका पहले किसी प्रमाणसे निश्चय नहीं किया गया हो, उसे अपूर्वार्थ कहते है।

संस्कृतार्थ - कस्माच्चिदपि सम्यग्ज्ञानात् यस्य पदार्थस्य कदापि निर्णयो न जात: स: अपूर्वोर्थो निगद्यते। प्रमाणं तमेव निश्चिनोति। अतो यज्ज्ञानं कस्माच्चित्प्रमाणाद् विज्ञातं पदार्थ विजानाति तत्र प्रमाणम्। यतस्तेन तस्य पदार्थस्य निश्चयो न विहित:, किंतु निश्चितमेव विज्ञातम्।

संस्कृत टीकार्थ- किसी भी सम्यक्ज्ञानसे जिस पदार्थ का कभी निर्णय नहीं हुआ है वह अपूर्वार्थ कहा जाता है। प्रमाण उस पदार्थका ही निश्चय करता है। इसमें जो ज्ञान किसी प्रमाणसे जाने हुए पदार्थको जानता है वह प्रमाण नहीं होता इसलिए उसके द्वारा उस पदार्थका निश्चय नहीं होता किंतु निश्चित को ही जानता है।

विशेष्य - **अपूर्वार्थ** = साध्य **अनिश्चयत:** = साधन।

प्रश्न 43- अपूर्वार्थ किसे कहते है?

उत्तर - जिस वस्तुका संशयादिके परिच्छेद करने वाले किसी अन्य प्रमाणसे पहले निश्चय नहीं हुआ है अर्थात् जो वस्तु किसी यथार्थग्राही प्रमाणसे अभी तक जानी नहीं गई है, उसे अपूर्वार्थ कहते हैं।

प्रश्न 44- प्रथम सूत्र में अपूर्व विशेषण क्यों दिया?

उत्तर - जो वस्तु किसी प्रमाणके द्वारा पहले जानी जा चुकी है, उसको पुन: किसी ज्ञानके द्वारा जानना व्यर्थ है।

प्रश्न 45- अवग्रह, ईहा और अवायादि अपूर्वार्थ नहीं रहे?

उत्तर - ऐसा कहना ठीक नही क्योंकि अवग्रह से जाने हुए विषय को विशेषरूप से ईहा आदि जानते है इसलिए अपूर्वार्थ है। अपूर्वार्थ क्या उक्त प्रकारका ही है अथवा अन्य प्रकारका भी है ऐसी जिज्ञासा होने पर यह सूत्र कहते है -

"दृष्टोऽपि समारोपात्तादृक"।।5।।

सूत्रान्वय :- दृष्ट: = अन्यप्रमाणसे ज्ञात, **अपि** = भी, **समारोपात्** = समारोप होने पर, **तादृक** = उसके समान (अपूर्वार्थ)।

सूत्रार्थ - किसी अन्य प्रमाणसे ज्ञात भी पदार्थ समारोप हो जाने से अपूर्वार्थ हो जाता है।

संस्कृतार्थ - केनापि प्रमाणेन विज्ञातेऽपि पदार्थे यदा सशयो, विपर्यय: अनध्यवसायो वा जायते तदा सोऽप्यपूर्वार्थो निगद्यते, तथा च तस्य वेदकं ज्ञानमपि प्रमाणस्वरूपं भवेत्।

संस्कृत टीकार्थ- किसी भी प्रमाणके द्वारा ज्ञात पदार्थमें भी जब संशय, विपर्यय और अनध्यवसाय हो जाता है तब वह भी अपूर्वार्थ कहा जाता है। और उसी प्रकार उसको जानने वाला ज्ञान भी प्रमाण स्वरूप हो।

प्रश्न 46- सूत्र पठित अपि शब्द का क्या अर्थ है?

उत्तर - केवल अनिश्चित ही पदार्थ अपूर्वार्थ नहीं है अपितु प्रमाणान्तरसे निश्चित या ग्रहीत पदार्थमें यदि संशय, विपर्यय, अनध्यवसाय आदि हो जाए तो वह भी अपूर्वार्थ है।

प्रश्न 47- प्रमाणान्तर निर्णीत पदार्थ अपूर्वार्थ क्यों है?

उत्तर - समारोप हो जानेसे प्रमाणान्तर निर्णीत पदार्थ अपूर्वार्थ है।

प्रश्न 48- सूत्र का अभिप्राय रूप अर्थ क्या है?

उत्तर - किसी ज्ञान के द्वारा विषयरूप से ग्रहीत भी वस्तु यदि धूमिल आकार हो जाने से निर्णय न की जा सके तो वह भी अपूर्व नाम से ही कही जाएगी क्योंकि उसके विषय में समारोप उत्पन्न हो गया है।

"स्वोन्मुखतया प्रतिभासनं स्वस्य व्यवसाय:"।।6।।

सूत्रान्वय :- **स्व** = अपने आपके, **उन्मुखतया** = जानने के अभिमुख। **स्वस्य** = अपने आपका, **व्यवसाय:** = निश्चायक।

सूत्रार्थ - स्वोन्मुख रूपसे अपने-आपको जानना स्वव्यवसाय है।

संस्कृतार्थ - स्वस्योन्मुखतया प्रतिभासनं स्वव्यवसायो निगद्यते। अत्र 'अहमात्मानं जाने' इति प्रतीति: जायते।

संस्कृत टीकार्थ- अपने आपके अनुभवसे होने वाली आत्म प्रतीतिको स्वव्यवसाय कहते है। यहाँ 'मैं' अपने आपको जानता हूँ इस प्रकार की प्रतीति होती है।

प्रश्न 49- स्वोन्मुखता किसे कहते है?

उत्तर - अपने आपको जानने के अभिमुख होना स्वोन्मुखता है।

प्रश्न 50- प्रतिभास किसे कहते हैं?

उत्तर - आत्म प्रतीतिको प्रतिभास कहते हैं।

प्रश्न 51- स्वव्यवसाय किसे कहते है?

उत्तर - स्वानुभवरूपसे आत्म प्रतीति होती है वह **स्वव्यवसाय** कहलाता है अर्थात् अपने आपको जानना स्वव्यसाय है।

प्रश्न 52- आत्मा किसे कहते है?

उत्तर - अक्षणोति व्याप्नोति जानातीत्यक्ष आत्मा जो व्याप्त होकर जानता है।

स्वव्यवसायका दृटान्त सूत्रमें कहते है -

"अर्थस्येव तदुन्मुखतया"।।7।।

सूत्रान्वय :- अर्थस्य = अर्थकी, **इव** = तरह, **तत्** = पदार्थ, **उन्मुखता**= जाननेके अभिमुख। **उन्मुखता** = जाननेके अभिमुख।
सूत्रार्थ - जिस प्रकार अर्थके उन्मुख होकर उसे जानना अर्थव्यवसाय है।

संस्कृतार्थ - यथा यदा घटपटादिशब्दानां प्रतीतिः जायते तदा तज्ज्ञानविषयभूताना तत्तत्पदार्थाना ज्ञानमपि अस्माकमवश्यं जायते। तथा यदात्मान प्रति लक्ष्य जायते तदाऽऽत्मा किम्वस्तु विद्यते एतस्यापि ज्ञानमवश्य जायते। तथा यदात्मान प्रति लक्ष्य जायते तदाऽऽत्मा किम्वस्तु विद्यते एतस्यापि ज्ञानमवश्य जायते।

संस्कृत टीकार्थ- जिस प्रकार जब घट (घड़ा) पट (कपड़ा) इत्यादि शब्दोंका हमें ज्ञान होता है तब उस ज्ञानके विषयभूत उन-उन पदार्थोंका ज्ञानभी हमें अवश्य होता है। उसी प्रकार जब आत्माके प्रति (की ओर) लक्ष्य जाता है, तब आत्मा क्या वस्तु है इसका भी ज्ञान अवश्य हो जाता है।

प्रश्न 53- सूत्रका स्पष्ट अर्थ क्या है?

उत्तर - जिस प्रकार पदार्थके अभिमुख होकर उसके जाननेको अर्थव्यवसाय कहते है उसी प्रकार स्व "अर्थात्" अपने आपके अभिमुख होकर जो अपने आपका प्रतिभास होता है। अर्थात् आत्मप्रतीति या आत्मनिश्चय होता है वह स्वव्यवसाय कहलाता है।

प्रश्न 54- आठवें सूत्रमें किसका कथन है?

उत्तर - पदार्थको जाननेके समय होने वाली प्रतीतिका कथन अर्थात् पूर्वोक्त कथनको एक उल्लेख द्वारा स्पष्ट करते है।

"घटमहमात्मना वेद्मि।।8।।

सूत्रान्वय :- **घट्म** = घड़ेको, **अहम्** = मै, **आत्मना** = अपने आपके द्वारा, **वेद्मि**= जाता हूँ।

सूत्रार्थ - मै घडेको अपने आपके द्वारा जानता हूँ।

संस्कृतार्थ - घटमहमात्मना वेद्मि 'इति प्रतीतौ 'अहम्' 'आत्मना' वेति पदाभ्यां व्यव्यवसायां जायते तथा घटम्पदेन पर पदार्थ बोधो जायते। तथैव प्रमाणेन सर्वत्र स्वस्य परस्य वा बोधो जायते। अतएव प्रमाणं स्वपर निश्चायकं निगदितम्।।8।।

संस्कृत टीकार्थ- घड़ेको मै अपने द्वारा जानता हूँ, इस प्रकार ज्ञानमें अहम् (मैं) आत्मना (अपने आपके द्वारा) इन दो पदोंसे स्व का निश्चय होता है और घटम् पदसे पर पदार्थका ज्ञान होता है। इसी प्रकार
प्रमाणके द्वारा सर्वत्र स्व और परका व्यवसाय (ज्ञान) होता है। इसलिए प्रमाणको स्व और पर का निश्चायक कहा है।

प्रश्न 55- प्रस्तुत सूत्रमें कर्त्ता, कर्म, करण और क्रिया क्या है?
उत्तर - अहम् (मैं) कर्त्ता, आत्मना (अपने आपके द्वारा) करण घटम् (घड़ा)-कर्म वेद्मि (जानता हूँ) - क्रिया।
प्रश्न 56- सूत्रका स्पष्ट अर्थ क्या है?
उत्तर - जैसे - जानने वाला पुरुष अपने-आपके द्वारा घटको जानता है, वैसे ही अपने आपको भी जानता है।
प्रश्न 57- ज्ञान केवल पदार्थको ही जानता है, अपने आपको नहीं जानता है। ऐसी मान्यता किनकी है?
उत्तर - नैयायिक।
प्रश्न 58- कर्त्ता और कर्मकी ही प्रतीति होती है ऐसा कौन मानते हैं?
उत्तर - भाट्ट।
प्रश्न 59- नवमाँ सूत्र किसलिए कहा जा सकता है?
उत्तर - उक्त वादियोंके मत प्रतीति बाधित है यह दिखलाने के लिए

अर्थात् पर व्यवसाय मात्रका खंडन करनेके लिए कहा जा रहा है।

"कर्मवत्कर्तृकरणक्रिया प्रतीते:"।।9।।

सूत्रान्वय :- कर्मवत् = कर्मके समान, **कर्तृ** = कर्त्ता। **करण** = करण, **क्रिया** = क्रिया। **प्रतीते:** = ज्ञान होनेसे।

सूत्रार्थ - कर्मके समान कर्त्ता, करण और क्रिया की भी प्रतीति होती है।

संस्कृतार्थ - प्रमाणेन यथा घटपटादिरूपस्य कर्मणो बोधो जायते तथैव कर्तु: करणस्य क्रियाया वा बोधो जायते। अर्थात् प्रमाणेन यथा 'अहं घटपटादि (कर्म) जाने, इति प्रतीति जायते तथा कर्तृकरणक्रिया: प्रत्यपि 'अहं कर्त्रादिकं जाने' इति प्रतीति जायते, नात्र काचिद् बाधा, अनुभव सिद्ध विद्यते।।9।।

संस्कृत टीकार्थ- प्रमाणके द्वारा जैसे घट-पट आदिरूप कर्मका बोध होता है उस प्रकार ही कर्त्ता (मैं) करणका (अपने द्वारा) और क्रिया (जानता हूँ) का भी बोध होता है, अर्थात् प्रमाणके द्वारा जैसे - मै घड़े-कपड़े आदिको जानता हूँ ऐसी प्रतीति होती है - उसी प्रकार कर्त्ता, करण और क्रियाके प्रति भी इन कर्मादिकको भी जानता हूँ ऐसी प्रतीति होती है, इसमें कोई बाधा नहीं है अनुभव सिद्ध है।

प्रश्न 60- कर्म किसे कहते है?
उत्तर - ज्ञानकी विषयभूत वस्तुकर्म कहलाती है एवं ज्ञप्ति रूप क्रियाके द्वारा जो कुछ भी जाना जाता है उसे कर्म कहते है।
प्रश्न 61- कर्त्ता किसे कहते है?
उत्तर - किसी भी वस्तुको जानने वाली आत्मा कर्त्ता कहलाती है।
प्रश्न 62- ज्ञप्ति किसे कहते है?
उत्तर - जानने रूप क्रियाको ज्ञप्ति कहते है।
प्रश्न 63- करण किसे कहते है?
उत्तर - जिसके द्वारा जाना जाता है ऐसा प्रमाणरूप ज्ञान करण कहलाता है।
प्रश्न 64- प्रमिति किसे कहते है?
उत्तर - प्रमाणके फलको प्रमीति कहते है।

प्रश्न 65- सूत्रके अंतमें "प्रतीतेः" यहाँ पंचमीका प्रयोग क्यों किया गया है?
उत्तर - हेतु अर्थमें।
प्रश्न 66- सूत्रका स्पष्ट अर्थ क्या है?
उत्तर - जैसे ज्ञान अपने विषयभूत पदार्थको जानता है उसी प्रकार वह कर्त्ता, करण और क्रियाको भी जानता है।
प्रश्न 67- एक ही ज्ञानमें कर्त्ता, कर्म आदि अनेक कारकों की प्रतीति कैसे संभव है?
उत्तर - अनेकान्त होनेसे।

किसी शकाकारका कहना है कि यह कर्त्ता, कर्मादिकी प्रतीति तो शब्दका उच्चारण मात्र ही है, वस्तुके स्वरूप बल से उत्पन्न नहीं हुई है अर्थात् वास्तविक नही है उसका उत्तर इस दसवें सूत्रमें कहते है -

"शब्दानुच्चारणेऽपि स्वस्यानुभवनमर्थवत्।।10।।

सूत्रान्वय :- शब्द = शब्दका, **अनुचारणे**= उच्चारण नहीं करने पर, **अपि** = भी, **स्वस्य**= अपने आपका। **अनुभवनम्** = अनुभवन। **अर्थवत्** = पदार्थके समान,

सूत्रार्थ - पदार्थके समान शब्दका उच्चारण नहीं करने पर भी अपने आपका अनुभव होता है।

संस्कृतार्थ - यथा प्रत्यक्षाणां घटपटादीनां वस्तूनां परोक्षाणां मोदकादीनाम्वा तद्वाचकशब्दानुच्चारणेऽपि विचार मात्रेणैवालोकनमात्रेणैव वा ज्ञाने तदाकार अनुभवो जायते, यदिदममुकवस्तुं विद्यते; इदं चामुकवस्तु। तथा 'अहमिदं करिये 'इदं मया जातम् इत्यादि विचारे (ज्ञान) 'अहं मया' इत्यादि रूपेण यः स्वबोधः जायते, सः शब्दोच्चारणं विनैव जायते।

संस्कृत टीकार्थ - जैसे प्रत्यक्ष घड़ा कपड़ा आदि वस्तुओंका और परोक्ष लड्डू आदि वस्तुओंका तद्वाचक शब्दके उच्चारण बिना भी विचार मात्रसे ही या अवलोकन मात्रसे ही ज्ञानमें तदाकार अनुभव हो जाता है कि यह अमुकवस्तु है और यह अमुकवस्तु उसी प्रकार 'मै यह करूँगा' मेरे द्वारा यह हुआ इत्यादि (विचारों) ज्ञानमें और मेरे द्वारा इत्यादि रूपसे जो आत्माका बोध होता है वह शब्दोच्चारण बिना भी होता है।
प्रश्न 68- शब्द किसे कहते हैं?
उत्तर - जो कहता है उसे शब्द कहते हैं।

प्रश्न 69- सूत्रका अभिप्राय रूप अर्थ क्या है?
उत्तर - जैसे घडे वस्त्रादिको देखकर घड़ा-वस्त्र शब्दके बोले बिना भी उसका बोध होता है उसी प्रकार 'अह' इत्यादि शब्दके बिना कहे ही अपने आपका भी बोध होता है। अत: कर्त्ता, कर्मकी प्रतीति केवल शाब्दिक नहीं किंतु वास्तविक मानना चाहिए।
प्रश्न 70- सूत्रनं.11 में किसका कथन किया जा रहा है?
उत्तर - स्वप्रतीति की पुष्टिका।

शब्दोच्चारण बिना भी स्वप्रतीति की पुष्टि -

"को वा तत्प्रतिभासिनमर्थमध्यक्षमिच्छॅस्तदेव तथा नेच्छेत्"।।11।।

सूत्रान्वय :- क: = कौन, **वा** = लौकिक(परीक्षक), **तत्** = ज्ञानसे, **प्रतिभासिनम्** = प्रतिभासित हुए, **अर्थम्** = पदार्थ को, **अध्यक्षम्** = प्रत्यक्ष, **इच्छत** = मानता हुआ। **तत्** = स्वय ज्ञानको। **एव** = ही। **तथा** = प्रत्यक्षपने से। **न** = नही। **इच्छेत्** = स्वीकार।

सूत्रार्थ - कौन ऐसा पुरुष है जो ज्ञानसे प्रतिभासित हुए पदार्थको प्रत्यक्ष मानता हुआ भी स्वय ज्ञानको ही प्रत्यक्ष न माने। अपितु मानेगा ही।

संस्कृतार्थ - यदा ज्ञान पर पदार्थ प्रत्यक्षं करोति तदा स्वस्य प्रत्यक्षमपि तस्यावश्य स्यात्। यदि च स्व न जानीयात्तर्हि परपदार्थान् ज्ञातुमपि न शक्नुयात्। यथा घटादय: स्वं न जानन्त्यत: परमपि न जानन्ति। इति स्थितौ को लौकिक: परीक्षको वा जनो विद्यते यो ज्ञानप्रतिभासिनमर्थ प्रत्यक्ष स्वीकुर्वन् स्वयं ज्ञान प्रत्यक्षं नो स्वीकुर्यात्?।।11।।

संस्कृत टीकार्थ- जब ज्ञान दूसरेका प्रत्यक्ष करता है तब अपनाभीप्रत्यक्ष करता होगा। यदि वह अपनेको नहीं जानता होता तो दूसरे पदार्थोको भी नहीं जान सकता। जैसे - घट (घड़ा) आदि अपने आपको नहीं जानते इसलिए दूसरों को भी नहीं जानते। ऐसा कौन लौकिक या परीक्षक पुरुष है जो ज्ञानसे प्रतिभाषित हुए पदार्थको तो प्रत्यक्ष ज्ञानका

विषय माने परंतु स्वयं ज्ञानको प्रत्यक्ष न माने। अर्थात् सभी मानेंगे।

प्रश्न 71- युक्ति किसे कहते है?

उत्तर - "प्रमाणनयात्मको युक्तिः - प्रमाण नयात्मक कथनको युक्ति कहते है।

प्रश्न 72- ज्ञानका मुख्य धर्म क्या है?

उत्तर - प्रत्यक्षपना।

प्रश्न 73- ज्ञानका विषय क्या है?

उत्तर - ज्ञानका विषय पदार्थ है।

प्रश्न 74- पदार्थमें प्रत्यक्षपना क्यों कहा?

उत्तर - व्यवहारके प्रयोजनसे प्रत्यक्षपने का उपचार किया गया है।

प्रश्न 75- सूत्रमें प्रयोजन क्या है?

उत्तर - यहाँ निमित्त ज्ञान और पदार्थमें विषय-विषयी भावरूप संबध का है।

प्रश्न 76- उपचारकी प्रवृत्ति कब होती है?

उत्तर - मुख्य वस्तुके अभावमें प्रयोजन और निमित्तके होने पर उपचारकी प्रवृत्ति होती है।

प्रश्न 77- सूत्रका अभिप्राय रूप अर्थ क्या है?

उत्तर - कौन ऐसा लौकिक या परीक्षक पुरुष है, जो उस ज्ञानसे प्रतिभाषित पदार्थको प्रत्यक्षज्ञान का विषय मानते हुए भी उसी ज्ञानको प्रत्यक्ष रूपसे स्वीकार न करे, अपितु वह करेगा ही। यहाँ पर विषयीज्ञानके प्रत्यक्षपने रूप धर्मका विषय भूतपदार्थमें उपचार करके उक्त प्रकारका निर्देश किया है। अन्यथा अप्रमाणिकपनेका प्रसंग आवेगा।

स्वकी प्रतीतिकी पुष्टिका उदाहरण -

"प्रदीपवत्।।12।।

सूत्रान्वय :- प्रदीप = दीपकके, **वत्** = समान।

सूत्रार्थ - दीपकके समान।

संस्कृतार्थ - यथा दीपको घटपटादिकं परपदार्थप्रकाशयन् स्वम् (दीपकम्) अपि प्रकाशयति तथैव ज्ञानमपि घटपटादिपरपदार्थ जानत्सत् स्वमपि जानाति।

संस्कृत टीकार्थ - जैसे दीपक घट-पट आदि दूसरे पदार्थों को प्रकाशित करता हुआ स्वयं अपने आप (दीपक) को भी जानता है।

प्रश्न 78- स्वप्रतीति की पुष्टि हेतु दीपक का उदा. क्यों दिया?

उत्तर - स्वपर प्रकाशी होनेसे -जैसे दीपक स्वपर प्रकाशी है वैसे ज्ञानभी स्वपर प्रकाशी है।

प्रश्न 79- ज्ञान अपने-आपको जाननेमें अन्य ज्ञानकी अपेक्षा क्यो नही करता?

उत्तर - क्योंकि ज्ञान आत्माका ही गुण है।

प्रश्न 80- दीपकके मुख्य दो गुण कौन से हैं?

उत्तर - प्रकाशता और प्रत्यक्षता।

प्रश्न 81- सूत्रका अभिप्राय रूप अर्थ क्या है।

उत्तर - ज्ञान अपने आपके प्रतिभास करने अर्थात् जानने में अपने से अतिरिक्त सजातीय अन्य पदार्थोंकी अपेक्षासे रहित है, क्योंकि पदार्थको प्रत्यक्ष करनेके गुणसे युक्त होकर अदृष्ट-अनुयायी करणवाला है जैसे दीपक का भासुराकार।

प्रश्न 82- 13वाँ सूत्र क्यों कहा जा रहा है?

उत्तर - प्रमाणकी प्रमाणताका निश्चय करनेके लिए ही यह सूत्र कहा गया है। अत: विभिन्न मतावलंबियों की मान्यताका निराकरण करते हुए स्वमत की पुष्टि हेतु यह सूत्र कहा जाएगा।

मीमांसक - प्रमाणकी प्रमाणता स्वत: और अप्रमाणता परत:।

सांख्य - प्रमाणकी प्रमाणता परत: और अप्रमाणता स्वत:।

नैयायिक - प्रमाणकी प्रमाणता और अप्रमाणता दोनों परत: मानते हैं।

प्रश्न 83- प्रमाणतासे क्या अभिप्राय है?

उत्तर - यथार्थरूप सत्यता से है।

प्रश्न 84- अप्रमाणतासे क्या अभिप्राय है?

उत्तर - अयथार्थतारूप असत्यता से है।

प्रमाणकी प्रमाणताका निर्णय -

"तत्प्रामाण्यं स्वत: परतश्च"।।13।।

सूत्रान्वय :- तत् = उस (प्रमाण) की, **प्रामाण्यं** = प्रमाणता(सच्चाई, वास्तविकता), **स्वत:** = अपने-आपसे, **परत:** = परसे, **च** = और।

सूत्रार्थ - प्रमाणकी वह प्रमाणता अभ्यास दशामें अपने-आपसे और

अनभ्यास दशामें परसे होती है।

नोट - सूत्र वाक्य उपस्कार सहित होते है, उनका ठीक अर्थ जाननेके लिए, तत्संबंद्ध और तत्सूचित अर्थका ऊपरसे अध्याहार करना चाहिए। यहाँ अभ्यास एवं अनभ्यास दशाका अध्याहार किया गया है।

संस्कृतार्थ - तस्य प्रमाणस्य प्रामाण्यस्य (सत्यतायाः वास्तविकतायाः यथावद्विज्ञ- ताया वा) निर्णयः प्रकारद्वयेन जायते। अभ्यासदशायामन्यपदार्थ सहायतां बिना स्वतः अनभ्यासदशान्चान्यकारणानां सहायतया।।13।।

संस्कृत टीकार्थ - उस प्रमाणकी प्रमाणता (सच्चाई वास्तविकता या पदार्थका यथावत् जाननेका निर्णय) दो प्रकारसे होता है। अभ्यास दशामें अन्य पदार्थकी सहायता बिना अपने आप और अनभ्यास दशा में अन्य कारणोंकी सहायता से।

प्रश्न 85- अभ्यास दशा और अनभ्यास दशा किसे कहते है?

उत्तर - परिचित अवस्थाको अभ्यासदशा एवं अपरिचित दशाको अनभ्यास दशा कहते हैं।

प्रश्न 86- परतः प्रमाण्यता कहने का तात्पर्य क्या है?

उत्तर - उत्पत्तिमें अन्तरंग कारण ज्ञानावरणका क्षयोपशम होने पर भी बाध्य कारण इंद्रियादिकके निर्दोष होने पर ही नवीन प्रमाणता रूप कार्य उत्पन्नहोता है अन्यथा नहीं। अतः उत्पत्ति में परतः होती है।

प्रश्न 87- स्वतः प्रमाणता कहनेका तात्पर्य क्या है?

उत्तर - विषयके जानने रूप और प्रवृत्तिरूप प्रमाणके कार्यमें अभ्यास दशाकी अपेक्षा तो प्रमाण्यता स्वतः बाह्य कारणके बिना अपने आप ही होती है।

प्रश्न 88- उपस्कार किसे कहते है?

उत्तर - शब्दके द्वारा दूसरे शब्दका मिलना उपस्कार कहलाता है।

प्रश्न 89- प्रथम परिच्छेदमें किसका कथन किया गया है?

उत्तर - प्रथम परिच्छेदमें प्रमाणकी स्वरूपविप्रतिपत्तिका निराकरण करते हुए प्रमाणके स्वरूपको अति संक्षेपमें कहा गया।

"इति प्रथमः परिच्छेदः समाप्तः"

(इसप्रकार प्रथम परिच्छेद समाप्त हुआ)

अथ द्वितीय परिच्छेदः

अब आचार्य भगवन् प्रमाणकी स्वरूप विप्रतिपत्तिका निराकरण करके संख्या विप्रतिपत्तिका निराकरण करते हुए प्रमाणके समस्त भेदोंके संदर्भका संग्रह करनेको और प्रमाणक की संख्याका प्रतिपादन करने वाला सूत्र कहते है :-

"तद्द्वेधा'।।1।।

सूत्रान्वय :- **तत्** = वह प्रमाण, **द्वेधा** = दो प्रकारका

सूत्रार्थ - वह प्रमाण दो प्रकार का है।

संस्कृतार्थ - प्रमाणस्य द्वावेव भेदौ विद्येते। अन्येषाम्प्रभेदानामनयोर्दयोरेवान्तर्भावात्।

संस्कृत टीकार्थ - प्रमाणके दो ही भेद है। अन्य प्रभेदोंका इन दोनोंमें ही अन्तर्भाव होनेके कारण है।

प्रश्न 90- सूत्रमें तत् शब्द से क्या प्रयोजन है?

उत्तर - तत् शब्दसे प्रमाणका परामर्श किया गया है।

प्रश्न 91- किस प्रमाणका परामर्श किया गया है?

उत्तर - जिसका स्वरूप प्रथम परिच्छेदसे जान लिया गया है।

प्रश्न 92- प्रमाण दो ही प्रकार का क्यों है?

उत्तर - क्योंकि प्रमाणके समस्त भेदो का इन दो ही भेदो मे अन्तर्भाव हो जाता है।

प्रश्न 93- द्वितीय सूत्र किसलिए कहा जा रहा है।

उत्तर - क्योंकि प्रमाणके 2 भेद प्रत्यक्ष और अनुमान प्रकारसे भी संभव है, इस प्रकार बौद्धोंकी आशंका का निराकरण करनेके लिएप्रमाणके समस्त भेदोंका संग्रह करने वाली संख्याको आचार्य उत्तरसूत्र में कहते है।

प्रमाणके दो भेदों का स्पष्टीकरण -

"प्रत्यक्षेतर भेदात्"।।2।।

सूत्रान्वय :- **प्रत्यक्ष** = प्रत्यक्ष प्रमाण, **इतर** = परोक्ष। **भेदात्** = भेदसे।

सूत्रार्थ - प्रत्यक्षं और इतर अर्थात् परोक्षके भेदसे प्रमाण दो प्रकार का है।

संस्कृतार्थ - प्रत्यक्षं परोक्षं चेति प्रमाणस्य दौ भेदौ स्तः। प्रमाणस्यान्यमतावलम्बिपरिकल्पितानामेकद्वित्रिचतुः प्रभृतिभेदानां निराकरणार्थमिद सूत्र विहितम्।।2।।

संस्कृत टीकार्थ - प्रत्यक्षं और परोक्ष इस प्रकार प्रमाणके 2 भेद है, अन्य मतावलम्बियों द्वारा कल्पित प्रमाणकी एक दो तीन और चार आदि संख्याके निराकरणके लिए इस सूत्रको कहा गया है।

प्रश्न 94- मात्र प्रत्यक्षको ही प्रमाण कौन मानता है?

उत्तर - चार्वाक मात्र प्रत्यक्षको ही प्रमाण मानते है।

प्रश्न 95- बौद्ध लोग कितने प्रमाण मानते है?

उत्तर - बौद्ध लोग 2 प्रमाण मानते है -
1. प्रत्यक्ष 2. अनुमान।

प्रश्न 96- साख्य मतावलम्बियों की संख्याके विषयमें क्या मान्यता है?

उत्तर - सांख्य मतावलम्बियों की संख्या के विषयमें 3 प्रकारसे मान्यता है - 1 प्रत्यक्ष, 2 अनुमान, 3. शब्द (आगम)।

प्रश्न 97- नैयायिक कितने प्रमाण मानता है?

उत्तर - नैयायिक 4 प्रमाण मानता है -
1. प्रत्यक्ष 2. अनुमान, 3. शब्द (आगम), 4. उपमान

प्रश्न 98- प्राभाकरकी प्रमाणके विषयमें क्या मान्यता है?

उत्तर - प्राभाकर की प्रमाणके विषयमें 5 प्रकारकी मान्यता है
1. प्रत्यक्ष 2. अनुमान, 3. शब्द (आगम),
4. उपमान, 5. अर्थापत्ति।

प्रश्न 99- भाट्ट लोग क्या कहते है?

उत्तर - भाट्ट लोग 6 प्रमाण मानते है -
1. प्रत्यक्ष 2. अनुमान, 3. आगम,
4. उपमान, 5. अर्थापत्ति, 6. अभाव।

प्रश्न 100-पौराणिक क्या मानते है?

उत्तर - पौराणिक लोग उपरोक्त प्रमाणके अलावा ऐतिह्य आदिको भी प्रमाण मानते है।

प्रश्न 101-जैन लोगोंकी प्रमाणकी संख्याके विषयमें क्या मान्यता है?
उत्तर - जैन लोग प्रत्यक्ष और परोक्ष दो ही प्रमाण मानते है।
प्रश्न 102-सूत्र नं. 3 में आचार्य भगवन् क्या कहना चाहते है?
उत्तर - सूत्र नं. तीन में प्रथम प्रमाण प्रत्यक्षका लक्षण कहते है।

प्रत्यक्षके स्वरूप निरुपणके लिए कहते है -

"विशदं प्रत्यक्षम्"।।3।।

सूत्रान्वय :- विशदं = निर्मल (स्पष्ट), **प्रत्यक्षं** = प्रत्यक्ष। **ज्ञानं** = ज्ञानको।

सूत्रार्थ - विशद अर्थात् निर्मल और स्पष्ट ज्ञानको प्रत्यक्ष कहते हैं।
संस्कृतार्थ - यस्य ज्ञानस्य प्रतिभासो निर्मलो विद्यते तत्प्रत्यक्षं प्रोच्यते। तथा चोक्तं श्री विद्यानन्दिस्वामिना :- निर्मलप्रतिभासत्वमेव स्पष्टत्वमिति। प्रतिपादित च श्री भट्टाकलंकदेवैः प्रत्यक्षलक्षणं प्राहुः स्पष्टं साकार मञ्जसा इति। तथा चानुमानं - प्रत्यक्षं विशदज्ञानात्मकमेव, प्रत्यक्षत्वात् परोक्षवत्। प्रत्यक्षमिति धर्मि- निर्देशः विशदज्ञानात्मकं साध्यं, प्रत्यक्षत्वादिति हेतुः, परोक्षवदिति दृष्टान्तः। तथाहि यत्र विशदज्ञानात्मक तत्र प्रत्यक्ष, यथा परोक्षं प्रत्यक्षं च विवादापन्नं, तस्माद्विशदज्ञानात्मकमिति।।3।।

संस्कृत टीकार्थ - जिस ज्ञानका प्रतिभास निर्मल होता है उसे प्रत्यक्ष कहते है और उसी प्रकार श्री विद्यानन्दि स्वामीके द्वारा कहा गया है - निर्मल प्रतिभासपना ही स्पष्ट है, प्रत्यक्ष है और श्री भट्टाकलंक देवके द्वारा प्रत्यक्षके लक्षणको कहा गया है, स्पष्ट साकार मञ्जसा (स्पष्ट, साकार, निर्मल) इस प्रकार और अनुमान इस प्रकार है। प्रत्यक्ष विशदज्ञान स्वरूप ही है, प्रत्यक्ष होनेसे, परोक्षके समान। इस प्रकार प्रत्यक्षधर्मीका निर्देश है विशदज्ञानपना साध्य है प्रत्यक्ष होनेसे हेतु, परोक्षके समान दृष्टान्त है। इसलिए जो विशदज्ञानात्मक नहीं है वह प्रत्यक्ष नहीं है जैसे परोक्ष/प्रत्यक्ष विवादापन्न है इसलिए वह विशदज्ञानात्मक है।

विशेष - पक्ष - प्रत्यक्ष, हेतु - प्रत्यक्षपना, साध्य - ज्ञानकी विशदता, दृष्टान्त - परोक्षके समान, उपनय - विवादापन्न ज्ञान प्रत्यक्ष है, निगमन - इसलिए वह विशदज्ञानात्मक है।

प्रश्न 103- उपरोक्त सूत्रका सही अर्थज्ञान करने के लिए क्या करना है?

उत्तर - ज्ञानपदकी अनुवृत्ति कर लेना चाहिए।
प्रश्न 104-उपरोक्त सूत्र कैसा है?
उत्तर - यह सूत्र अनुमान के 5 अवयव प्रयोग रूप है।
प्रश्न 105-अनुमानके 5 अवयव कौन-कौन से है?
उत्तर - 1. पक्ष, 2. हेतु, 3. दृष्टान्त, 4. उपनय, 5. निगमन।
प्रश्न 106-प्रस्तुत सूत्रमें पक्ष क्या है?
उत्तर - धर्मीका निर्देश अर्थात् पक्ष है।
प्रश्न 107-प्रस्तुत सूत्रमें साध्य एवं हेतु क्या है?
उत्तर - ज्ञानकी विशदता साध्य एवं प्रत्यक्षपना हेतु है।
प्रश्न 108-परोक्ष ज्ञानवत् यह दृष्टान्त क्यों दिया?
उत्तर - अन्य के समक्ष न होनेसे व्यतिरेक व्याप्ति पूर्वक परोक्ष ज्ञानको व्यतिरेक रूपसे बतलाया गया है।

अब विशदता का लक्षण कहते है -

"प्रतीत्यन्तराव्यवधानेन विशेषवत्तया वा प्रतिभासनं वैशद्यम्"।।4।।

सूत्रान्वय :- **प्रतीति** = ज्ञानं, **अन्तरा** = दूसरे। **अव्यवधानेन** = अतराल से रहित। **विशेषवत्तया** = विशेषपने से, **वा** = और। **प्रतिभासनम्** = प्रतिभासको। **वैशद्यम्** = विशदता कहते है।

सूत्रार्थ - दूसरे ज्ञानके अंतरालसे रहित और विशेषता से होने वाले प्रतिभास को विशदता कहते हैं।

संस्कृतार्थ - एकस्या: प्रतीतेरन्या प्रतीति: प्रतीत्यन्तरं तेनाव्यवधानं; तेन प्रतिभासित्वं वैशद्यं निगद्यते। तथा च ज्ञानान्तर व्यवधान, रहितत्वे सति वर्णसस्थानादिविशेषग्रहणत्वं वैशद्यम्। विशदत्वं, निर्मलत्वं, स्पष्टत्वमिति तु वैशद्यस्यैव नामान्तराणि।।4।।

संस्कृत टीकार्थ - एक प्रतीतिसे भिन्न दूसरी प्रतीतिको प्रतीत्यन्तर कहते है, अन्य ज्ञानके व्यवधानसे रहित जो निर्मल प्रतिभासपना है उसे वैशद्य कहते है और दूसरे की सहायता के बिना होने पर पदार्थके आकार और वर्ण आदिकी विशेषतासे होने वाला प्रतिभास वैशद्य है।

परन्तु विशदता, निर्मलता, स्पष्टता, विशदताके ही पर्यायवाची नाम है।

प्रश्न 109-प्रतीत्यन्तर किसे कहते हैं?

उत्तर - प्रतीति नाम ज्ञानका है, एक प्रतीतिसे भिन्न दूसरी प्रतीतिको प्रतीत्यन्तर कहते है।

प्रश्न 110-व्यवधान किसे कहते हैं?

उत्तर - अंतराल को व्यवधान कहत्ते है।

प्रश्न 111-परोक्षपना कहाँ माना जाता है?

उत्तर - जहाँ पर विषय और विषयीमें भेद होने पर व्यवधान होता है, वहाँ परोक्षपना है।

प्रश्न 112-सूत्रका अभिप्रायरूप अर्थ क्या है?

उत्तर - केवल प्रतीत्यंतरके अव्यवधानसे होने वाले ज्ञानका नामही वैशद्य नहीं है। अपितु वस्तुके वर्ण, गंधादि तथा संस्थान (आकार-प्रकार) आदि विशेषताओंके द्वारा होने वाले विशिष्ट प्रतिभास को वैशद्य कहते है।वह प्रत्यक्ष, मुख्य और संव्यवहार के भेदसे दो प्रकारका है, ऐसा अभिप्राय मनमें रखकर आचार्य भगवन् पहले संव्यवहारिक प्रत्यक्षकी उत्पत्ति का कारण और लक्षण कहते है। अर्थात् ''सांव्यवहारिक प्रत्यक्षका कारण और लक्षण''

''इन्द्रियानिन्द्रिय निमित्तं देशतः सांव्यवहारिकम्''।।5।।

सूत्रान्वय :- इन्द्रिय = इंद्रिय, **अनीन्द्रिय** = मन के। **निमित्तं** = निमित्तसे, **देशतः** = एक देश, **सांव्यवहारिकम्** = साव्यवहारिक प्रत्यक्ष है।

सूत्रार्थ - इंद्रिय और मनके निमित्तसे होने वाले एक देश विशद ज्ञानको सांव्यवहारिक प्रत्यक्ष कहते हैं।

संस्कृतार्थ - यज्ज्ञानं देशतो विशदम् (ईषन्निर्मलम्) भवति, तथेन्द्रियाणां मनसश्च साहय्येन समुत्पद्यते तत्सांव्यवहारिक प्रत्यक्षं प्रोच्यते। तद्यथा-समीचीनः प्रवृत्ति- निवृत्तिरूपो व्यवहारः संव्यवहारः तत्र भवं प्रत्यक्षं सांव्यवहारिकप्रत्यक्षमिति व्युत्पत्त्यर्थः।

संस्कृत टीकार्थ - जो ज्ञान एक देश निर्मल (थोडा निर्मल) होता है तथा इन्द्रिय और मनकी सहायतासे उत्पन्न होता है वह सांव्यवहारिक

प्रत्यक्ष कहा जाता है और यह समीचीन प्रवृत्ति निवृत्ति रूप व्यवहारको सांव्यवहार कहते है, उसमें होने वाला प्रत्यक्ष सांव्यवहारिक प्रत्यक्ष है।

प्रश्न 113-वह सांव्यवहारिक प्रत्यक्ष कैसा है?

उत्तर - इन्द्रिय और अनिन्द्रिय निमित्तक है।

प्रश्न 114-सांव्यवहारिक प्रत्यक्षके कारण कौन-कौन से है?

उत्तर - इन्द्रिय और मन ये दोनों भी जिसके निमित्त है और पृथक-पृथक भी कारण है वह सांव्यवहारिक प्रत्यक्ष है।

प्रश्न 115-इन्द्रिय प्रत्यक्ष किसे कहते हैं?

उत्तर - इन्द्रियों की प्रधानता और मनकी सहायता से उत्पन्न होने वाले ज्ञानको इन्द्रिय प्रत्यक्ष कहते हैं।

प्रश्न 116-अनिन्द्रिय प्रत्यक्ष किसे कहते हैं।

उत्तर - ज्ञानावरण और वीर्यान्तराय कर्मके विशिष्ट क्षयोपशम रूप विशुद्धिकी अपेक्षासे सहित केवल मनसे उत्पन्न होने वाले ज्ञानको अनिन्द्रिय प्रत्यक्ष कहते है।

प्रश्न 117-सांव्यवहारिक प्रत्यक्ष का दूसरा नाम क्या है?

उत्तर - मतिज्ञान।

नैयायिक लोग प्रत्यक्षके उत्पादक इन्द्रिय और अनिन्द्रिय के समान अर्थ (पदार्थ) और प्रकाश (आलोक) को कारण मानते है तो उनकी इस धारणाका निराकरण करनेके लिए आचार्य कहते हैं।

अर्थात् पदार्थ और प्रकाशको ज्ञानके कारणत्व का निषेध -

"नार्थालोकौ कारणं परिच्छेद्यत्वात्तमोवत्"।।6।।

सूत्रान्वय :- न = नहीं, **अर्थ** = पदार्थ। **आलोक** = प्रकाश, **कारणं** = कारण, **परिच्छेद्यत्वात्** = ज्ञानके विषय होनेसे। **तमोवत्** = अंधकारके समान।

सूत्रार्थ - पदार्थ और प्रकाश ये दोनों सांव्यवहारिक प्रत्यक्षके कारण नहीं है क्योंकि ज्ञानके विषय होनेसे (ज्ञेय) अंधकारके समान।

संस्कृतार्थ - अर्थश्च आलोकश्चेति अर्थालोकौ पदार्थप्रकाशावित्यर्थः। कारणं न ज्ञानजनकौ न स्तः। परिच्छेत्तुं योग्यौ परिच्छेद्यौ तयोर्भावस्तत्त्वं, तस्मात् परिच्छेद्यत्वात् ज्ञेयत्वादित्यर्थः। अर्थालोकविति धर्मिनिर्देशः। कारणं

न भवतीति साध्यम्। परिच्छेदत्वादिति हेतुः। तमोवदिति दृष्टान्तः। तथा च व्याप्ति :- यच्च परिच्छेद्यं तन्न ज्ञानं प्रतिकारणं यथान्धकारम्। परिच्छेद्यौ चार्थालोकौ, तस्मात् ज्ञानं प्रति कारणं न भवतः।।6।।

संस्कृत टीकार्थ - अर्थश्च आलोकश्च इति अर्थालोकौ (पदार्थ प्रकाशौ इति अर्थ) यहाँ द्वन्द्व समास है। पदार्थ और प्रकाश यह अर्थ है कारण नहीं है अर्थात् ज्ञानके जनक नही है। जाननेके योग्य सो परिच्छेद्य और उनका भावसो परिच्छेद्यत्व (जाननापना) उससे ज्ञानके विषय होनेसे या ज्ञेय होनेसे यह अर्थ है। धर्मी - अर्थ और प्रकाश, हेतु - ज्ञानके विषय होनेसे, साध्य - कारण नहीं होता है, दृष्टान्त - अंधकारके समान, व्याप्ति - जो ज्ञानका विषय होता है वह ज्ञानका कारण नही होता, जैसे अंधकार। अर्थात् पदार्थ और प्रकाशज्ञानके विषय होनेसे ज्ञानके प्रति कारण नही होते है।

प्रश्न 118-पदार्थ और प्रकाशज्ञानके कारण क्यों नहीं है?

उत्तर - क्योंकि ज्ञानके विषय होनेसे जो-जो ज्ञानका विषय होता है वह ज्ञानका कारण भी नहीं होता।

प्रश्न 119-पदार्थको ज्ञानका कारण माननेमें क्या दोष आयेगा?

उत्तर - ऐसा मानने पर विद्यमान पदार्थका ही ज्ञान होगा और जो उत्पन्न ही नही हुए तथा नष्ट हो गए है उनका ज्ञान नही होगा। क्योंकि जो नष्ट और अनुत्पन्न पदार्थ इस समय विद्यमान ही नही है, वे जानने में कारण कैसे हो सकते है।

प्रश्न 120-प्रकाशको ज्ञानका कारण मानने में क्या दोष आयेगा?

उत्तर - ऐसा मानने पर रात्रिमें कुछ भी ज्ञान नहीं होगा। यह भी नहीं कह सकेंगे कि यहाँ अंधकार है।

प्रश्न 121-ज्ञेय किसे कहते हैं?

उत्तर - जानने योग्य वस्तुको ज्ञेय अर्थात् ज्ञानका विषय कहते हैं।

प्रश्न 122-अंधकार का दृष्टान्त क्यों दिया है?

उत्तर - क्योंकि अंधकार ज्ञानका विषय है यह सभी जानते हैं और कहते भी है कि यहाँ अंधकार है परंतु वह ज्ञानका कारण नहीं प्रत्युत ज्ञानका प्रतिबंधक है क्योंकि अंधकार में रखे हुए पदार्थो का ज्ञान नहीं होता।

अब सूत्रोक्त इसी साध्य को दूसरी युक्तियों से सिद्ध करते है -

"तदन्वयव्यतिरेकानुविधानाभावाच्च केशोण्डुकज्ञानवन्न -क्तञ्चर, ज्ञानवच्च"।।7।।

सूत्रान्वय :- **तत्** = उन (पदार्थ और प्रकाश का), **अन्वय** = अन्वय। **व्यतिरेक** = व्यतिरेक, **अनुविधान** = के अनुसार कार्य, **अभावात्** = अभाव होनेसे, **केश** = केशो में, **उण्डुक** = मच्छर। **ज्ञानवत्** = ज्ञानकी तरह, **नक्तंचर** = रात्रि में चलने वाले (उल्लू, चमगादड़)के, **च** = और। नोट - पूर्व सूत्रमें अध्याहार करने पर यह अर्थ है।

सूत्रार्थ - अर्थ और प्रकाश ज्ञानके कारण नहीं है, क्योंकि ज्ञानका अर्थ और प्रकाशके साथ अन्वय व्यतिरेक रूप संबंध का अभाव है जैसे - केशोंमें होने वाले मच्छर, ज्ञानके साथ तथा नक्तंचर उल्लू आदि को रात्रि में होने वाले ज्ञानके साथ।

संस्कृतार्थ - ज्ञानं अर्थकारणकं न भवति अर्थान्वय व्यतिरेकानु विधानाभावात्। यद्यस्यान्वयव्यतिरेकौ नानुविद्धाति, न तत् तत्कारणकं यथा केशोण्डुकज्ञानम्। नानुविदधते च ज्ञानमर्थान्वियव्यतिरेकौ तस्मादर्थकारणकं न भवतीत्यर्थः। 2 किञ्च ज्ञानं न प्रकाशकारणकं प्रकाशान्वयव्यतिरेकानु- विधानाभावात्। यद्यस्यान्वय व्यतिरेकौ नानुविद्धाति न तत् तत्कारणकं, यथा नक्तञ्चराणां मार्जारादीनां ज्ञानम्। तथा चेदं ज्ञानं तस्मात्प्रकाशकारणकं न भवतीति भावः।।7।।

संस्कृत टीकार्थ - पदार्थ ज्ञानका कारण नहीं है।क्योंकि ज्ञानका पदार्थके साथ अन्वय-व्यतीरेक सबंध नहीं है जो जिसके साथ अन्वय व्यतिरेक को धारण नहीं करता है वह तत्कारणक नहीं है। जैसे केशोंमें होने वाला मच्छरका ज्ञान अर्थके साथ अन्वय व्यतिरेकको धारण नहीं करता। इसलिए पदार्थ ज्ञानका कारण नहीं होता, यह अर्थ है। और आगे प्रकाश ज्ञानका कारण नहीं है, क्योंकि ज्ञानका प्रकाशके साथ अन्वय व्यतिरेक संबंध नही है। जो कारण जिस कार्यके साथ अन्वय व्यतिरेक को धारण नहीं करता। वह तत्कारणक (कारणवाला) भी नहीं है जैसे - रात्रि में विचरण करने वाली बिल्ली, उल्लू आदि के ज्ञानमें प्रकाश कारण नहीं है। उसी प्रकार यह ज्ञान है इसलिए प्रकाश कारणवाला नहीं होता।

प्रश्न 123-अन्वय किसे कहते है?

उत्तर - कारणके होने पर कार्यका होना अन्वय कहलाता है।

प्रश्न 124-कारणके अभावमें कार्यके अभावको क्या कहते है?

उत्तर - व्यतिरेक।

प्रश्न 125-पदार्थ और प्रकाश ज्ञानके कारण क्यों नही है?

उत्तर - क्योंकि यदि पदार्थको ही ज्ञानका कारण माना जाए तो हवा में सिर पर उड़ते हुए बालोंमें मच्छरका ज्ञान होता है इस प्रकारका दोष आता है और यदि प्रकाशको ही ज्ञान कारण माना जाए तो रात्रिमें चलने वाले उल्लू, चमगादड़ आदि को भी ज्ञान होना चाहिए पर नहीं होता।
2. पदार्थके अभाव में भी ज्ञान होता है और प्रकाशके सद्भाव में भी ज्ञान नहीं होता। इस प्रकार अन्वय व्यतिरेक नहीं बनता।

प्रश्न 126- नक्तञ्चर किसे कहते है?

उत्तर - रात्रिमें विचरण करने वाले उल्लू, चमगादड, मार्जार आदि को नक्तञ्चर कहते हैं।

बौद्धों की मान्यता है कि जो ज्ञान जिस पदार्थ से उत्पन्न होता है ज्ञान उसी पदार्थके आकारका होता है उसीका ग्राहक होता है अर्थात् जानता है जैन लोग तो ज्ञानकी अर्थसे उत्पत्ति मानते नहीं है अतः उनके यहाँ ज्ञान और ज्ञेयमें ग्राह्य ग्राहकपना कैसे बनेगा? ऐसी बौद्धों की आशंकाके होने पर आचार्य उत्तर देते हुए आठवाँ सूत्र कहते हैं -

"अतज्जन्यमपि तत्प्रकाशकं प्रदीपवत्"।।8।।

सूत्रान्वय :- अतज्जन्यम् = अर्थसे नहीं उत्पन्न हुआ, **अपि** = भी। **तत्** = वह ज्ञान अर्थका, **प्रकाशकं** = प्रकाशक है, **प्रदीपवत्** = दीपक के समान।

सूत्रार्थ - अर्थसे नहीं उत्पन्न हो के भी ज्ञान अर्थका प्रकाशक होता है, दीपकके समान।।8।।

नोट :- अतज्जन्यता उपलक्षण रूप है, अतः उससे अतदाकारका भी ग्रहण करना है।

संस्कृतार्थ - ननु विज्ञानम अर्थजन्यं सत् अर्थस्य ग्राहकं भवति

तदुत्पत्ति मन्तरेण विषयं प्रति नियमायोगात्। इति चेन्न घटाद्यजन्यस्यापि प्रदीपादे: घटादे: प्रकाशकत्ववत् अर्थाजन्यस्यापि ज्ञानस्यार्थप्रकाशकत्वाभ्युपगमात्। एवमेव तदाकारत्वात् तत्प्रकाशकत्वमित्यप्ययुक्तम् अतदाकारस्यापि प्रदीपादे: घटादिप्रकाशत्वावलोकनात्।8।

संस्कृत टीकार्थ - बौद्ध मानते है कि ज्ञान पदार्थसे पैदा होता हुआ पदार्थका ग्राहक होता है, क्योंकि तदुत्पत्तिके बिना विषयके प्रति कोई नियम नहीं होनेके कारण ऐसा कहते हो तो ठीक नहीं है। घटादि से उत्पन्न नहीं हुए दीपक आदि को घटादिका प्रकाशक होनेके समान पदार्थ से उत्पन्न नहीं होने वाले ज्ञानको भी पदार्थका प्रकाशक माना जाने से दीपक आदि घटके आकार को नहीं धारण करके भी घटको प्रकाशित करता है ऐसा देखा जाता है।

प्रश्न 127-उपलक्षण किसे कहते हैं?

उत्तर - स्वस्य स्वसदृशस्य च ग्राहकं इति उपलक्षणम् - अपने और अपने सदृशका ग्रहण करना उपलक्षण है।

प्रश्न 128-अतज्जन्य से क्या तात्पर्य है?

उत्तर - उससे नहीं उत्पन्न हुआ।

प्रश्न 129-तत्प्रकाशकसे क्या तात्पर्य है?

उत्तर - पदार्थका ज्ञायक होता है।

प्रश्न 130-उपलक्षण से किसे ग्रहण किया गया है?

उत्तर - अतज्जन्यताके समान अतदाकार को भी ग्रहण किया गया है।

प्रश्न 131-सूत्रका अभिप्राय रूप अर्थ क्या है?

उत्तर - अर्थसे नहीं उत्पन्न हुआ भी ज्ञान पदार्थका ज्ञायक होता है। यहाँ पर अतज्जन्यता उपलक्षण रूप है, अत: उसको अतदाकार का भी ग्रहण कर लेना चाहिए। अतज्जन्यता और अतदाकारता इन दोनों के विषयमें प्रदीपका दृष्टान्त समान है।

जैसे - दीपक घट-पटादि पदार्थोसे उत्पन्न नहीं होकर और उनके आकारका नहीं होकर के भी उनका प्रकाशक है वैसे

ही ज्ञान भी घटादि पदार्थों से उत्पन्न नहीं होकर और उनके आकारका नहीं हो करके भी उन पदार्थोंको जानता है।

प्रश्न 132-आगे नवमाँ सूत्र किसलिए कहा जा रहा है?

उत्तर - बौद्धों की शंका निवारण हेतु यह सूत्र कहा जा रहा है, शंका इस प्रकार है आप जैन लोग तदुत्पत्ति और तदाकार को मानते नहीं हो तो फिर अमुक ज्ञान अमुक पदार्थ को ही जाने, इसका कोई नियामक कारण नहीं रहता फिर तो प्रत्येक ज्ञान विश्वके त्रिकाल वर्ति और त्रिजगद व्यापी पदार्थों को जानने वाला हो जायेगा। बौद्धों की ऐसी शंका होने पर आचार्य भगवन् उत्तर देते हुए कहते हैं ।

अतज्जन्य और अतदाकार होने पर भी प्रतिनियतार्थ जाननेका कारण -

"स्वावरण क्षयोपशम लक्षणयोग्यतया हि प्रतिनियतमर्थ व्यवस्थापयति प्रत्यक्षमिति शेष:"।।9।।

सूत्रान्वय :- **स्वावरण** = अपने आवरण, **क्षयोपशमलक्षण** = क्षयोपशम लक्षण वाली। **योग्यतया** = योग्यता से, **प्रत्यक्षम्** = प्रत्यक्ष प्रमाण, **प्रतिनियतमर्थम्** = प्रतिनियत पदार्थोंके जाननेकी। **व्यवस्थापयति** = व्यवस्था करता है।

सूत्रार्थ - अपने आवरण कर्मके क्षयोपशम लक्षण वाली योग्यतासे प्रत्यक्ष प्रमाण प्रतिनियत पदार्थोंके जाननेकी व्यवस्था करता है।

नोट :- अतज्जन्यता उपलक्षण रूप है, अत: उससे अतदाकारका भी ग्रहण करना है।

संस्कृतार्थ - स्वानि व तानि आवरणानि स्वावरणानि तेषां क्षय: उदयाभाव, तेषामेव सदवस्थारूप: उपशम: तावेव लक्षणं यस्या: योग्यताया: तया हेतुभूतया प्रतिनियतमर्थ व्यवस्थापयति (विषयी करोति) प्रत्यक्षमिति शेष:। निष्कर्षश्चायम् कल्पयित्वापि तदुत्पत्तिं, ताद्रूप्यं, तदध्यवसायं व प्रतिनियतार्थ व्यवस्थापनार्थ योग्यतावश्यमभ्युपगन्तव्या।।9।।

संस्कृत टीकार्थ - अपने ज्ञानके रोकने वाले आवरणों को स्वावरण कहते हैं (उदय प्राप्त) उन आवरणकर्मोके (वर्तमान कालमें) उदयाभाव

को क्षय कहते है और (अनुदय प्राप्त) उन्ही कर्मो के सत्तामें अवस्थित रहनेको उपशम कहते है ये दोनों ही जिसके लक्षण है ऐसी योग्यता के द्वारा प्रत्यक्षज्ञान प्रतिनियत अर्थकी व्यवस्था करता है यहाँ प्रत्यक्ष यह पद शेष है (सूत्र में नहीं कहा गया है, अत: ऊपरसे अध्याहार कर लेना) इसका यह निष्कर्ष है कि उक्त प्रकारसे तदुत्पत्ति (ज्ञानका पदार्थसे उत्पन्न होना) ताद्रूप्य (पदार्थके आकार होना) और तदध्यवसाय (उसी पदार्थको जानना) यद्यपि प्रतिनियत अर्थके जानने में कारण रूप से नियामक नहीं है. तथापि दुराग्रहवश कल्पना करके भी अर्थात् उन तीनोंको मान करके भी आप लोगोंको योग्यता अवश्य ही स्वीकार करना चाहिए।

प्रश्न 133-सूत्रमें "हि" शब्द किस अर्थमें है

उत्तर - "हि" शब्द 'यस्मात्' के अर्थ में है। यत: योग्यता वस्तु ज्ञानकी व्यवस्थापक है।

प्रश्न 133-प्रतिनियत व्यवस्था किसे कहते है?

उत्तर - इस ज्ञानका यह पदार्थही विषय है, अन्य नहीं ऐसी व्यवस्था को प्रतिनियत व्यवस्था कहते हैं।

प्रश्न 134-योग्यतासे क्या प्रयोजन है?

उत्तर - ज्ञानावरण और वीर्यान्तराय कर्मो के क्षयोपशम रूप योग्यताको ही जैन लोग प्रतिनियत विषयका नियामक मानते हैं।

प्रश्न 135-क्षयोपशम किसे कहते हैं?

उत्तर - सर्वघाति स्पर्धक अनन्त गुणहीन होकर और देशघाती स्पर्धकों में परिणत होकर उदयमें आते है उन सर्वघाती स्पर्धकों का अनन्त गुण हीनत्व ही क्षय कहलाता है और उनका देशघाती स्पर्धकोंके रूपसे अवस्थान होना उपशम है। उन्हीं क्षय और उपशमसे संयुक्त उदय क्षयोपशम कहलाता है।

2. कर्मोके क्षय और उपशम से उत्पन्न गुण क्षायोपशमिक कहलाता है।

बौद्ध लोग पदार्थको ज्ञानका कारण होनेसे परिच्छेद्य अर्थात् जानने योग्य ज्ञेय कहते है, आचार्य उनके मत का निराकरण करते है :-

"कारणस्य च परिच्छेद्यत्वे करणदिना व्यभिचार:"।।10।।

सूत्रान्वय :- कारणस्य = कारणको, **च** = और, **परिच्छेद्यत्वे** = ज्ञानका विषय मानने पर, **करणादिना** = इन्द्रियादि से, **व्यभिचारः** = असंगत दोष।

सूत्रार्थ - कारणको ज्ञानका विषय मानने पर इंद्रियादिसे व्यभिचार (असंगत) दोष आता है, क्योंकि इन्द्रिय ज्ञानकी कारण तो है परंतु विषय नहीं है अर्थात् इन्द्रियाँ अपने आपको नहीं जानती है।

संस्कृतार्थ -यद्यत्कारणं तत्तत्प्रमेयम् इति व्याप्ति स्वीकारे तु इंद्रियादिना व्यभि-चारः संजायेत। चक्षुरादीनां ज्ञानम्प्रति कारणत्वेऽपि परिच्छेदत्वाभावात्।।10।।

संस्कृत टीकार्थ - जो-जो ज्ञानका कारण है वह-वह ज्ञानका विषय है।

इस प्रकार व्याप्ति स्वीकार करने पर इन्द्रियादि के द्वारा (साथ) व्यभिचार (असंगत) नामका दोष आएगा। चक्षुआदि इन्द्रियों का ज्ञानके प्रति कारणपना होने पर भी ज्ञानके विषयका अभाव होनेसे अर्थात् अपने आपको नहीं जाननेसे है।

प्रश्न 136-सूत्रका अभिप्रायरूप अर्थ क्या है?

उत्तर - करणादि (इंद्रियादि) ज्ञानके कारण है अतः परिच्छेद (ज्ञेय) है, इसलिए इन्द्रियों से व्यभिचार सिद्ध है।

प्रश्न 137-उक्त सूत्रमें बौद्धोंके अनुसार साध्य और हेतु क्या है?

उत्तर - करण होना - हेतु। विषय होना - साध्य। अतः -बौद्ध लोग मानते है कि जो-जो ज्ञानका कारण है, वह-वह ज्ञानका विषय है। इस प्रकारके अनुमानमें इन्द्रियोंमें हेतु तो रह गया। परंतु साध्यत्व विषय होना नहीं रहा।क्योंकि ऐसा कोई भी व्यक्ति नहीं है जो अपनी इन्द्रियों से अपनी ही इन्द्रियों को जान लेवे। इस प्रकार इन्द्रियों के साथ व्यभिचार दोष आता है।

प्रश्न 138-व्यभिचार किसे कहते है?

उत्तर - हेतु के रहने पर साध्य के न रहने को व्यभिचार दोष कहते है।

अब सूत्रकार अतीन्द्रिय जो मुख्य प्रत्यक्ष है, उसका स्वरूप (लक्षण) कहते है -

"सामग्री विशेष विश्लेषिताखिलावरणमतीन्द्रिय मशेषतो मुख्यम्"।।11।।

सूत्रान्वय :- **सामग्री** = द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावरूप, **विशेष** = विशेषता से। **विश्लेषित** = दूर हो गये है, **अखिल** = सम्पूर्ण, **आवरणम्** = आवरण। **अतिन्द्रिययम्** = इन्द्रियतीत **अशेषत:** = पूर्णतया। **मुख्यम्** = मुख्य।

नोट - सूत्रमें विशद और ज्ञान इन दो पदोंकी अनुवृत्ति कर लेना चाहिए।

सूत्रार्थ - सामग्री की विशेषता से दूर हो गये है समस्त आवरण जिसके ऐसे अतीन्द्रिय और पूर्णतया विशद ज्ञानको मुख्य प्रत्यक्ष कहते है।

संस्कृतार्थ - सामग्री द्रव्यक्षेत्रकालभावलक्षण, तस्या: विशेष: समग्रता लक्षण: तेन विश्लेषितान्यखिलान्यवरणानि येन तत्तथोक्तम् इन्द्रियाण्यतिक्रान्तम् अतीन्द्रियम्। तथा च यज्ज्ञानं सामग्री विशेषनिराकृतसमस्त ज्ञानावराणदिकर्मत्वात्, इन्द्रियागोचरत्वाच्च साकल्येन निर्मलं जायते। तन्मुख्यप्रत्यक्षं पारमार्थिप्रत्यक्ष वा प्रोच्यते इति भाव:।

संस्कृत टीकार्थ - योग्य द्रव्य, क्षेत्र, काल और भावरूप लक्षण वाली सामग्री उसका विशेष सर्वकारण-कलापों की परिपूर्णता है। उस सामग्री विशेषसे विघटित कर दिये है अखिल (समस्त) आवरण जिसमें ऐसा वह ज्ञान है। इन्द्रियोंको अतिक्रमण (उल्लंघन) करके (अर्थात् इन्द्रियों की सहायताके बिना जाननेमें समर्थ समस्त ज्ञेय पदार्थोको अत: अतीन्द्रिय है।) जो ज्ञान सामग्री विशेष एवं समस्त ज्ञानावरणादि कर्मो को निराकृत करने से वह मुख्य प्रत्यक्ष या पारमार्थिक प्रत्यक्ष कहा जाता है - यह भाव है सूत्रका।

प्रश्न 139-सामग्री किसे कहते है?

उत्तर - योग्य, द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावकी प्राप्तिको सामग्री कहते हैं।

प्रश्न 140-उक्त सूत्रमें लक्ष्य एवं लक्षण क्या है?

उत्तर - मुख्य प्रत्यक्ष लक्ष्य है, सामग्री विशेषसे दूर हो गये है समस्त आवरण जिसके यह अतीन्द्रिय ज्ञानका लक्षण हैं।

प्रश्न 141- इन्द्रियों की सहायताके बिना समस्त ज्ञेयोंको जाननेमें समर्थ कौन है?

उत्तर - मुख्य प्रत्यक्ष।

पारमार्थिक प्रत्यक्ष पूर्णतया विशद क्यों है - उसका समाधान

"सावरणत्वे करणजन्यत्वे व प्रतिबंधसम्भवात्"।।12।।

सूत्रान्वय :- सावरणत्वे = आवरण सहितमें, **करणजन्यत्वे** = इन्द्रिय जनितमें, **च** = और, **प्रतिबंध** = रूकावट, **संभवात्** = संभव होनेसे।

सूत्रार्थ - क्योंकि आवरण सहित और इन्द्रियजनित मानने पर ज्ञानका प्रतिबंध संभव है।

संस्कृतार्थ - सावरणत्वे करणजन्यत्वे व सत्येव ज्ञाने प्रतिबंध: सम्भवति। अतो यज्ज्ञानं निरावरणमतीन्द्रियं वा जायते तदेव मुख्य प्रत्यक्षमवगन्तव्यम्।12।

संस्कृत टीकार्थ - आवरण सहितपना और इन्द्रियजन्यपना होनेपर ही ज्ञानमें प्रतिबंध संभव होता है इसलिए जो ज्ञान निरावरण और अतीन्द्रिय होता है उसे ही मुख्य प्रत्यक्ष जानना चाहिए।

प्रश्न 142-मुख्य प्रत्यक्ष किसे कहते है?

उत्तर - मुख्य प्रत्यक्ष इन्द्रिय आलोक आदि समस्त पर वस्तुओंकी सहायतासे रहित केवल आत्माके सन्निधि मात्रकी अपेक्षासे उत्पन्न होता है अत: उसे अतीन्द्रिय कहते हैं।

प्रश्न 143-मुख्य प्रत्यक्ष कितने प्रकारका है?

उत्तर - 3 प्रकार का है- 1. अवधिज्ञान, 2. मन:पर्ययज्ञान, 3. केवलज्ञान।

प्रश्न 144-अवधिज्ञान और मन:पर्ययज्ञान तो निरावरण नहीं है फिर मुख्य प्रत्यक्ष क्यों है?

उत्तर - अतीन्द्रिय होने से इन दोनों ज्ञानोंमें भी विशदता पाई जाती है।

प्रश्न 145-केवलज्ञान मुख्य प्रत्यक्ष क्यों है?

उत्तर - केवलज्ञान अतीन्द्रिय और निरावण है।

प्रश्न 146-ज्ञान कि विशदताके लिए आवश्यक क्या है?

उत्तर - निरावरण और अतीन्द्रियपना अत्यावश्यक है।

।।इति द्वितीय: परिच्छेद: समाप्त:।।

(इस प्रकार द्वितीय परिच्छेद पूर्ण हुआ)

अथ तृतीय परिच्छेदः

परोक्षस्य लक्षणं निर्णयो वा, परोक्ष का लक्षण या निर्णय -

"परोक्षमितरत्"।।1।।

सूत्रान्वय :- **परोक्षम्** = परोक्ष, **इतरत्** = भिन्न (प्रत्यक्ष से भिन्न)

सूत्रार्थ - जो प्रत्यक्ष से इतर अर्थात् भिन्न है, वह परोक्ष है।

संस्कृतार्थ - अविशदं परोक्षम्। अथवा यस्य ज्ञानस्य प्रतिभासो निर्मलो न भवति तत्परोक्षं कथ्यते।

संस्कृत टीकार्थ - अविशद ज्ञान परोक्ष है अथवा जिस ज्ञानका प्रतिभास निर्मल नहीं होता वह परोक्ष कहा जाता है।

प्रश्न 147-"इतर" शब्दसे क्या अर्थ लेना है?

उत्तर - इतर शब्द पूर्वमें कहे गये प्रमाणके प्रतिपक्षको कहना है।

प्रश्न 148-परोक्ष किसे कहते है?

उत्तर - प्रत्यक्षसे भिन्न अविशद स्वरूप वाला जो ज्ञान है, वह परोक्ष है।

परोक्ष = परः+अक्ष = आत्मासे भिन्न इन्द्रियादि जो पर उनकी सहायताकी अपेक्षा रखने वाला ज्ञान परोक्ष ज्ञान है।

"पराणीन्द्रियाणि आलोकादिश्च परेषा ज्ञानं परोक्षम्"

"पर का अर्थ इन्द्रियाँ और आलोकादि है, और पर अर्थात् इन इन्द्रियादिके अधीन जो ज्ञान होता है। वह परोक्षज्ञान है।"

परोक्षके भेद और कारणको इस सूत्रमें कहते है -

"प्रत्यक्षादि निमित्तं स्मृति प्रत्यभिज्ञानंतर्कानुमानागम भेदम्"।।2।।

सूत्रान्वय :- **प्रत्यक्षादि** = प्रत्यक्षादि, **निमित्तं** = कारण। **स्मृति** = स्मरण, **प्रत्यभिज्ञान** = प्रत्यभिज्ञान, **तर्क** = तर्क, **अनुमानं** = अनुमान, **आगम** = आगम, **भेदम्** = भेद।

सूत्रार्थ - प्रत्यक्षादि जिसके निमित्त है, ऐसा परोक्ष प्रमाण स्मृति प्रत्यभिज्ञान, तर्क, अनुमान और आगमके भेद से 5 प्रकार का है।

नोट - सूत्रमें आदि शब्दसे परोक्षका ग्रहण करना है 'प्रत्यक्षादि निमित्तं

यस्य' प्रत्यक्षादि है निमित्त जिसके ऐसा विग्रह है ते भेदाः यस्य वे स्मृति आदिक जिसके भेद है। ऐसा विग्रह है और स्मृति आदिमें द्वन्द्व समास है।

संस्कृत टीकार्थ - प्रत्यक्षादि 6 परोक्षज्ञानके कारण है तथा परोक्षके स्मृति, प्रत्यभिज्ञान, तर्क, अनुमान, आगम ये 5 भेद है।

प्रश्न 149-परोक्षज्ञानका कारण क्या है?

उत्तर - प्रत्यक्षादि (आदिसे परोक्षका भी ग्रहण है।)

प्रश्न 150-सूत्रका स्पष्ट अर्थ क्या है?

उत्तर - स्मृति प्रत्यक्ष पूर्वक होती है, प्रत्यभिज्ञान प्रत्यक्ष और स्मरण-पूर्वक होता है, प्रत्यक्षस्मरण और प्रत्यभिज्ञान पूर्वक तर्क होता है, प्रत्यक्ष, स्मरण, प्रत्यभिज्ञान और तर्क पूर्वक अनुमान होता है, श्रावण प्रत्यक्ष, स्मृति और सकेत पूर्वक आगम भेद होता है।

प्रश्न 151-स्मृति आदि को परोक्ष क्यों कहा है?

उत्तर - स्मृति आदि पाँच प्रमाणोंमें दूसरे पूर्वप्रमाणोंकी आवश्यकता होती है, इसलिए इन्हें परोक्ष कहते हैं।

अब क्रम प्राप्त स्मृति प्रमाणके लक्षणका कारण दिखलाते हैं -

"संस्कारोद्बोध निबन्धना तदित्याकारा स्मृतिः"।।3।।

सूत्रान्वय :- संस्कार = (धारण, ज्ञानरूप) संस्कारकी, **उद्बोध** = प्रकटता। **निबंधना** = कारण से, **तत्** = वह, **इति** = इस प्रकार, **आकार** = आकार, **स्मृति** = स्मरण।

सूत्रार्थ - (धारणारूप) संस्कारकी प्रकटता जिसमें कारण है ऐसे (तत्) वह इस प्रकारके आकार वाले ज्ञानको स्मृति कहते हैं।

संस्कृतार्थ - संस्कारस्य उद्बोधः (प्राकट्यं) सः निबन्धनं यस्याः सा तथोक्ता। या धारणास्य संस्कार प्राकट्यकारणिका तदित्युल्लेखिनी च जायते सा स्मृतिः निगद्यते।।3।।

संस्कृत टीकार्थ - संस्कारका उद्बोध अर्थात् प्रकटपना वह है कारण जिसका वह स्मृति कही जाती है जो धारणा ज्ञानरूप संस्कारकी प्रकटतासे वह (तत्) इस आकार अर्थात् उल्लेख वाली है वह स्मृति कही जाती है।

नोट - "भवति" क्रिया पद शेष है जिसका अध्याहार ऊपरसे कर लेना चाहिए।

प्रश्न 152(अ)- स्मृति किसे कहते है।

उत्तर - वह इस प्रकार के आकार वाली स्मृति होती है।

प्रश्न 152(ब)- स्मृति का कारण क्या है?

उत्तर - धारणा रूप ज्ञानकी प्रगटता (वर्तमानमें किसीका प्रत्यक्ष) स्मृतिका दृष्टान्त कहते है -

"स देवदत्तो यथा"।।4।।

सूत्रान्वय :- **सः** = वह, **देवदत्तः** = देवदत्त, **यथा** = जैसे।

सूत्रार्थ - जैसे कि वह देवदत्त।

प्रश्न 153-सूत्रका अभिप्राय रूप अर्थ क्या है?

उत्तर - किसी व्यक्तिने पहले कभी देवदत्त नामक पुरुषको देखा और उसकी धारण करली। पीछे वह धारणारूप संस्कार प्रकट हुआ और उसे याद आया कि वह देवदत्त। इस प्रकार उसके स्मरण रूप ज्ञानको स्मृति कहते है।

अब क्रमप्राप्त प्रत्यभिज्ञानका स्वरूप कहते है -

"दर्शनस्मरणकारणकं सङ्कलनं प्रत्यभिज्ञानं तदेवेदं तत्सदृशं तद्विलक्षणं तत्प्रतियोगीत्यादि"।।5।।

सूत्रान्वय :- **दर्शन** = दर्शन, **स्मरण** = स्मरण, **सङ्कलनम्** = जोडरूप, **प्रत्यभिज्ञानं** = प्रत्यभिज्ञान, **तत्** = वह, **एव** = ही, **इदं** = यह, **तत्** = वह, **सदृशं** = समान, **विलक्षणं** = विलक्षण (भिन्न), **प्रतियोगी** = किसी वस्तु का प्रतिरूप बनाने वाला, **इत्यादि** = इस प्रकार औरभी,

सूत्रार्थ - दर्शन और स्मरण जिसमें कारण है ऐसे जोड़रूप ज्ञानको प्रत्यभिज्ञान कहते है, जैसे - यह वही है, यह उसके समान है, यह उससे विलक्षण है, यह उसका प्रतियोगी है, इत्यादि समान है, यह उससे विलक्षण है, यह उसका प्रतियोगी है, इत्यादि।

संस्कृतार्थ - दर्शनं च स्मरणं च दर्शनस्मरणे ते कारणे यस्य तत्तथोक्ता तथा च दर्शनस्मरण हेतुकत्वे सति संकलनात्मक ज्ञानत्वं

प्रत्यभिज्ञानत्वम् तच्चैकत्वं, सादृश्यं, वैलक्षण्यं, प्रातियौगिकञ्चेति चतुर्विधम्। तदेवेदमित्येकत्व- प्रत्यभिज्ञानम्। तत्सदृशमिति सादृश्यप्रत्यभिज्ञानम्। तद्विलक्षमिति वैलक्षण्य- प्रत्यभिज्ञानम्। तत्प्रतियोगिति प्रातियौगिक प्रत्यभिज्ञानम्।।5।।

संस्कृत टीकार्थ - दर्शनं च स्मरणं च दर्शन स्मरणे = यहाँ द्वन्द्व समास है, ते कारणे यस्य यहाँ बहुव्रीहि समास है। दर्शन और स्मरणमें द्वन्द्व समास है और ये दोनों है कारण जिससे यह बहुव्रीहि समास है। दर्शन और स्मरण है कारण जिसके ऐसे जोड़रूप ज्ञानको प्रत्यभिज्ञान कहते है और वह (प्रत्यभिज्ञान) एकत्व सादृश्य, विलक्षण और प्रतियोगी इस प्रकार 4 भेद हैं।

1. यह वही है इस प्रकार एकत्वप्रत्यभिज्ञान है।
2. यह उसके समान है इस प्रकार सदृशप्रत्यभिज्ञान है।
3. यह उससे विलक्षण है यह वैलक्षण प्रत्यभिज्ञान है।
4. यह उसका प्रतियोगी है, इस प्रकार प्रतियोगी प्रत्यभिज्ञान है।

प्रश्न 154- एकत्वादिको विषय करने वाले ज्ञानको प्रत्यभिज्ञानपना कैसे है?

उत्तर - वर्तमानका प्रत्यक्ष (दर्शन) और पूर्वका स्मरण कारण होनेसे एकत्व सादृश्यादिके विषय करने वाले ज्ञानको भी प्रत्यभिज्ञानपना है।

इन प्रत्यभिज्ञानके भेदोंका क्रमसे उदा. दिखलाते हुए कहते हैं -

"यथा स एवायं देवदत्तः गोसदृशोगवयः गोविलक्षणो महिषः इदमस्माद् दूरम् वृक्षोऽयमित्यादि"।।6।।

सूत्रान्वय :- **यथा** = जैसे, **सः** = वह, **एव** = ही, **अयम्** = यह, **देवदत्तः** = देवदत्त, **गो** = गाय, **सदृशः** = समान, **गवयः** = गवय, **गो** = गाय, **विलक्षणः** = भिन्न, **महिषः** = भैंस, **इदम्** = यह, **अस्मात्** = इससे, **दूरं** = दूर, **वृक्षः**= वृक्ष, **अयम्** = यह, **इत्यादि** = इसप्रकार और।

सूत्रार्थ - जैसे - यह वही देवदत्त है (एकत्व प्रत्यभिज्ञान), गायके समान नील गाय होती है (सदृश्य प्रत्यभिज्ञान) गायसे भिन्न भैंसा होता है (विलक्षण प्रत्यभिज्ञान) यह इससे दूर है (प्रतियोगी प्रत्यभिज्ञान), यह वृक्ष है, (सामान्य प्रत्यभिज्ञान) इत्यादि।

संस्कृतार्थ - एकत्वप्रत्यभिज्ञानस्य स एवायं देवदत्तः, सादृश्यप्रत्यभिज्ञानस्य गोसदृशो गवयः। वैलक्षण्य प्रत्यभिज्ञानस्य गोविलक्षणो महिषः प्रातियौगिक प्रत्यभिज्ञानस्य इदमस्माद्दूरमिति क्रमशः दृष्टान्ता विज्ञेयाः।

संस्कृत टीकार्थ - एकत्व प्रत्यभिज्ञानका यह वही देवदत्त है, सादृश्य प्रत्यभिज्ञानका। गायके समान नीलगाय है। वैलक्षण प्रत्यभिज्ञानका गायसे
भिन्न भैसा, प्रातियौगिक प्रत्यभिज्ञानका यह इससे दूर है इस प्रकार क्रमशः दृष्टान्त जानना चाहिए।

प्रश्न 155-सूत्रमें आदि शब्दसे क्या लेना है?

उत्तर - दूध और जलका भेद करने वाला हंस होता है, छह पैरका भैसा माना गया है। तत्त्वज्ञोंको सात पत्तों वाला विषमच्छद नामक वृक्ष जानना चाहिए। 5 वर्णो वाला मेचक नामक रत्न होता है, विशाल स्तन वाली युवती होती है, एक सींग वाला गैड़ा कहा जाता है, आठ पैर वाला अष्टापद होता है और सुंदर सय (गर्दनके बाल) से युक्त सिंह होता है

प्रश्न 156-इस सूत्रका कहनेका अभिप्राय क्या है?

उत्तर - इसी प्रकारके हंस आदि को देखकर उसी रूपमें जब सत्यापित करता है तब यह संकलन ज्ञान प्रत्यभिज्ञान कहलाता है क्योंकि दर्शन और स्मरणरूप कारण सब जगह समान है अन्य मतावलम्बियों में तो इन्हें भिन्न-भिन्न प्रमाण मानना पड़ेगा उपमानादिमें इनका अन्तर्भाव नहीं होता।

अब क्रम प्राप्त ऊह (तर्क) प्रमाणके विषयमें कहते है -

"उपलम्भानुपलम्भ निमित्तं व्याप्तिज्ञानमूहः"।।7।।

सूत्रान्वय :- उपलम्भ = निश्चय करना, **अनुपलम्भ** = अनिश्चय करना, **निमित्तं** = कारण, **व्याप्ति ज्ञानम** = व्याप्तिके ज्ञानको, **ऊहः** = तर्क **व्याप्ति** - किसी एक पदार्थमें दूसरे पदार्थका पूर्णरूपसे मिला होना।

सूत्रार्थ - निश्चय (अन्वय) और अनिश्चय (व्यतिरेक) जिसमें निमित्त है, ऐसे व्याप्तिके ज्ञानको तर्क कहते हैं।

संस्कृतार्थ - उपलम्भश्चानुपलम्भश्च उपलम्भानुपलम्भौ निश्चयानिश्चया

वित्यर्थः, तौ निमित्तं यस्य उपलम्भानुपम्भनिमित्तम्। तथा च साध्यसाधनविषयिक निश्चयानिश्चयहेतुकत्वे सति व्याप्तिज्ञानत्वं तर्कत्वम्।

संस्कृत टीकार्थ- उपलम्भश्चानुपलम्भश्च उपलम्भानुपलम्भौ यह द्वन्द्व समास है निश्चय और अनिश्चय इस प्रकार अर्थ है। वे दोनों निमित्त है जिसके वह निश्चयानिश्चय निमित्तक है। और उसी प्रकार साध्य साधन विषयकका निश्चय और अनिश्चय कारण होने पर व्याप्तिके ज्ञानको तर्क कहते हैं।

प्रश्न 157-अन्वय किसे कहते है?

उत्तर - साधनके सद्भावमें साध्यका सद्भाव अन्वय कहलाता है।

प्रश्न 158-व्यतिरेक किसे कहते है?

उत्तर - साध्यके अभावमें साधनका अभाव व्यतिरेक कहलाता है।

प्रश्न 159-साध्य एवं साधनका निश्चय और अनिश्चय किसके अनुकूल रहता है?

उत्तर - क्षयोपशम के अनुकूल रहता है।

प्रश्न 160-व्याप्ति किसे कहते है?

उत्तर - किसी एक पदार्थके होनेपर दूसरे पदार्थके होने और उसके न होने पर दूसरे के भी न होने को व्याप्ति कहते हैं।

प्रश्न 161-तर्क किसे कहते है?

उत्तर - अन्वय और व्यतिरेक जिसमें निमित्त है, ऐसे व्याप्तिके ज्ञानको ऊह (तर्क) कहते है।

प्रश्न 162-सूत्रमें उपलम्भ शब्दसे किसे ग्रहण करना है?

उत्तर - सूत्रमें उपलम्भ शब्दसे प्रमाण सामान्यका ग्रहण करना चाहिए।

प्रश्न 163-किस प्रकारकी व्याप्तिके ज्ञानको परोक्ष माना गया है?

उत्तर - अनियत दिग्देश वाली व्याप्तिके ज्ञानको परोक्ष माना गया है।

व्याप्ति ज्ञानकी प्रवृत्तिके प्रकार एवं उदाहरण -

"इदमस्मिन्सत्येव भवत्यसति तु न भवत्येव"।।8।।

"यथाऽग्नावेव धूमस्तदभावे न भवत्येवेति।।9।।

सूत्रान्वय :- **इदम्** = यह, **अस्मिन** = इसमें, **सति** = होने पर, **एव** = ही, **भवति** = होती है, **असति** = नहीं होनेपर, **तु** = परन्तु, **न** =

नही, **यथा** = जैसे, **अग्नौ** = अग्निमें, **धूमः** = धुआँ, **तत्** = उसके, **अभावे** = अभावमें, न = नही, **भवति** = होता है, **इति** = इस प्रकार, **च** = और।

सूत्रार्थ - यह साधन रूप वस्तु इस साध्य रूप वस्तुके होने पर ही होती है और साध्य रूप वस्तुके नहीं होने पर नहीं होती है, जैसे - अग्निमें ही धूम होता है। अग्निके अभावमें धूम नहीं होता है।

संस्कृतार्थ - स च तर्कः इदमस्मिन् सत्येव भवति असति तु न भवति इत्येवम्रूपः प्रवर्तते, यथा वह्नौ सत्येव धूमः उपलभ्यते, वहन्यभावे तु नैवोपलभ्यते।।8-9।।

संस्कृत टीकार्थ - और वह तर्क यह इसमें होने पर ही होता है परन्तु नही होने पर होता है इस प्रकार रूपकी प्रवृत्ति होती है जैसे - अग्नि के होने पर ही धूमकी उपलब्धि होती है, परन्तु अग्निके अभावमें धूमकी प्राप्ति नहीं होती है।

प्रश्न 164- व्याप्ति कितने प्रकारकी होती है? "यह पूर्व सूत्रमें अनुदित है"
उत्तर - दो प्रकार की होती है - 1. अन्वय व्याप्ति 2. व्यतिरेक व्याप्ति।

प्रश्न 165-व्याप्ति बनाते समय क्या ध्यान रखना चाहिए।
उत्तर - 1. साध्य साधन को अविनाभाव रूप सबधका,
2. साधन का साध्यके साथ अविनाभाव होना चाहिए,
3. साध्यका साधनके साथ अविनाभाव नहीं होना चाहिए।
4. उदा. में धूमके होने पर अग्निका निश्चय है, पर जहाँ पर अग्निहो वहाँ पर धूमका होना आवश्यक नहीं है।

इस समय अनुमानका क्रम प्राप्त है अतः उसके लक्षणको कहते है -

"साधनात् साध्य विज्ञानमनुमानम्"।।10।।

सूत्रान्वय :- साधनात् = साधनसे, **साध्य** = साध्यका, **विज्ञानम्** = विशिष्टज्ञान, **अनुमानम्** = अनुमान, (**कथयति** = कहतेहै,)

सूत्रार्थ - साधनसे साध्यके ज्ञानको अनुमान कहते है।

संस्कृतार्थ - साधनाद् धूमादेः लिङ्गात्साध्येऽग्न्यादौ लिङ्गिनि यद्विज्ञानं

जायते तदनुमानं, तस्यैवाग्नयाद्यव्युत्पत्तिविच्छित्तिकरणत्वात्। (साधनाज्जायमानं साध्यविज्ञानमेवानुमानमिति भाव:।।10।।

संस्कृत टीकार्थ- साधन धूमादि लिङ्गसे साध्य अग्नि आदिक लिङ्गिमें जो ज्ञान होता है वह अनुमान है क्योंकि वह साध्य ज्ञानही अग्नि आदिके अज्ञानको दूर करता है।साधनसे अर्थात् जाने हुए लिङ्गसे साध्यमें अर्थात् अग्नि आदिक लिङ्गिमें जो ज्ञान होता है वह अनुमान है -

प्रश्न 166-साधनको ही अनुमानमें कारण मान लिया जाय ना कि साधन के ज्ञानको?

उत्तर - ऐसा कहना ठीक नहीं है, क्योंकि "साधनसे" इस पद का अर्थ

निश्चय पथ प्राप्त धूमादिक से यह विवक्षित है। जिसे जाना नहीं है वह साधन नहीं हो सकता। क्योंकि जिस धूमादि लिङ्ग को नहीं जाना है, उसको साध्यके ज्ञानमें कारण मानने पर सोये हुए अथवा जिन्होंने धूमादिक लिङ्गको ग्रहण नहीं किया उनको भी अग्नि आदिका ज्ञान हो जायेगा। अत: यह सिद्ध हुआकि जाने हुए साधन से होने वाला साध्यका ज्ञानही साध्य विषयक अज्ञान को दूर करनेसे अनुमान है। लिङ्ग ज्ञानादिक नहीं।

प्रश्न 167-'प्रमाणात् विज्ञानम् अनुमानम्" प्रमाणसे जो ज्ञान होता है उसे अनुमान कहते हैं, इतना मात्र लक्षण मानने पर क्या दोष आता है?

उत्तर - अनुमेय आगम आदिसे व्यभिचार आता है। इसलिए उसके निवारणार्थ साध्यका विज्ञान अनुमान है ऐसा कहा है तथापि प्रत्यक्ष से भी व्यभिचार न आये इसलिए साधनसे साध्यके ज्ञानको अनुमान कहा है।

साधनका लक्षण कहते है :-

"साध्याविनाभावित्वेन निश्चितो हेतु:"।।11।।

सूत्रान्वय :- साध्य = साध्यके साथ, **अविनाभावित्वेन** = अविनाभावी होनेसे, **निश्चित:** = निश्चित होता है, **हेतु:** = हेतु।

सूत्रार्थ - साध्यके साथ अविनाभाव संबंध होनेके कारण हेतु निश्चित होता है।

संस्कृतार्थ टीकार्थ - जिसकी साध्यके साथ अन्यथानुपपत्ति (अविनाभाव) निश्चित है उसे साधन कहते है। जिसकी साध्यके अभावमें नहीं होनेरूप व्याप्ति, अविनाभाव आदि नामों वाली साध्यान्यथानुपपत्ति साध्य के होने पर ही होना और साध्यके अभावमें नहीं होना तर्क नामके प्रमाण द्वारा निर्णीत है वह साधन है यह अर्थ है।

प्रश्न 168-साधन किसे कहा गया है?

उत्तर - अन्यथानुपपत्ति मात्र जिसका लक्षण है उसे लिङ्ग साधन कहते है।

प्रश्न 169-अविनाभाव किसे कहते है?

उत्तर - जो जिसके बिना न हो उसे अविनाभाव कहते हैं।

अब अविनाभावके भेदोंको दिखलाते हुए कहते है :-

"सहक्रमभवनियमोऽविनाभाव:"।।12।।

सूत्रान्वय :- सहभव = एक साथ होना, **क्रमभव** = क्रमसे होना **नियम** = नियामक, **अविनाभाव:** = अविनाभाव है।

सूत्रार्थ - सहभव नियम और क्रमभव नियमको अविनाभाव कहते हैं।

संस्कृतार्थ - साध्यसाधनयो: साहचर्य नियम: क्रमवर्तित्वनियमो वा अविनाभाव: प्रोच्यते। सहभाव नियम: क्रमभावनियमश्चेति द्वौ तस्याविनाभावस्य भेदौ स्त:।

संस्कृतार्थ टीकार्थ - साध्य और साधनका एक साथ एक समय होनेका नियम (सहचर्य) सहभाव नियम अविनाभाव है। और क्रमसे होने का (कालके भेदसे साध्य और साधनका) नियम क्रमभाव नियम इस प्रकार दो उस अविनाभाव के भेद है।

प्रश्न 170-सहभाव अविनाभाव किसे कहते है?

उत्तर - एक साथ रहने वाले साध्य साधनके संबंधको सहभाव अविनाभाव कहते हैं।

प्रश्न 171-क्रमभाव अविनाभाव किसे कहते है?

उत्तर - कालके भेदसे क्रमपूर्वक होने वाले साध्य-साधनके संबंधको क्रमभाव अविनाभाव कहते हैं।

प्रश्न 172-किन दो कारणोंमें सहभाव होता है?

उत्तर - तेरहवें सूत्रमें इसका उत्तर है।

"अब आचार्य सहभाव नियमका विषय दिखलाते हुए उत्तरसूत्र कहते है"

"सहचारिणो र्व्याप्यव्यापकयोश्च सहभावः"।।13।।

सूत्रान्वय :- सहचारिणः = सहचारी, **व्याप्य-व्यापकयोः** =व्याप्य, **व्याप्य** = व्याप्यकमें, **सहभावः** = सहभाव कहते है।

सूत्रार्थ - सहचारी और व्याप्य-व्यापक पदार्थमें सहभाव नियम होता है।

संस्कृतार्थ - सहचारिणो र्व्याप्यव्यापकयोश्चाविनाभावः सहभावनियमाविनाभावः प्रोच्यते। यथा रूपरसयो र्व्याप्यप्यापकयोश्च सहभाव नियमोऽ विनाभावौ विद्येते।।13।।

संस्कृत टीकार्थ- साथ-साथ रहने वालोंमें तथा व्याप्य और व्यापकमें जो अविनाभाव संबध होता है उसे सहभाव नियम नामक अविनाभाव सबध कहते हैं जैसे रूप और रसमें और व्याप्य-व्यापकमें सहभाव अविनाभाव होता है।

प्रश्न 173-सहचारी कौन कहलाता है?

उत्तर - रूप और रस सहचारी कहलाते हैं।

प्रश्न 174-व्याप्य और व्यापक कौन कहलाते हैं?

उत्तर - वृक्षत्व और शिंशपात्वादि व्याप्य-व्यापक कहलाते हैं।

प्रश्न 175-व्याप्य किसे कहते हैं?

उत्तर - जो एक देश या स्वल्प देशमें रहता है वह व्याप्य कहलाता है।

प्रश्न 176-व्यापक किसे कहते हैं?

उत्तर - जो अधिक देशमें रहता है, वह व्यापक कहलाता है।

क्रमभाव नियमका विषय दिखलाते हुए कहते है :-

"पूर्वोत्तरचारिणोः कार्यकारणयोश्च क्रमभावः"।।14।।

सूत्रान्वय :- पूर्वचरः = पूर्वचर, **उत्तरचरः** = उत्तरचर, **कार्यकारणयोः** = कार्य कारणमें, **कारण** = कारणमें, **क्रमभावः** = क्रमभाव। **च** = और।

सूत्रार्थ - पूर्वचर और उत्तरचरमें तथा कार्य और कारणमें क्रमभाव नियम होता है।

संस्कृतार्थ - पूर्वोत्तर चारिणोः कार्यकारणयोश्चाविनाभावः क्रमभावनियमा-विनाभावः प्रोच्यते। यथा कृतिकोदयशकटोदययोः धूमानलयोश्च क्रमभाव नियमोऽविनाभावो विद्यते।।14।।

संस्कृतार्थ टीकार्थ - पूर्वचर और उत्तरचरमें तथा कार्य और कारणमें क्रमभाव नियम होता है। वह क्रमभाव अविनाभाव कहलाता है जैसे - पूर्वचर कृतिकोदय, उत्तरचर शकटोदय तथा कार्यकारण धूम और अग्नि में क्रमभाव होता है।

प्रश्न 177-पूर्वोत्तर चारी कौन कहलाते हैं?

उत्तर - कृतिका नक्षत्र का उदय और रोहिणी नक्षत्रका उदयादि पूर्वोत्तरचारी कहलाते हैं।

प्रश्न 178-कार्य-कारण कौन कहलाते हैं?

उत्तर - धूम और अग्निादि कार्य-कारण कहलाते है।

अविनाभावके निर्णय (व्याप्ति ज्ञानका निर्णय) किस प्रमाणसे होता है -

"तर्कात्तन्निर्णयः"।।15।।

सूत्रान्वय :- तर्कात् = तर्क प्रमाणसे, **तत्** = उस अविनाभावका, **निर्णयः** = निश्चय।

सूत्रार्थ - अविनाभाव संबंधका निश्चय (निर्णय) तर्क प्रमाणसे होता है।

संस्कृतार्थ - स हि अविनाभावस्तर्कप्रमाणादेव निश्चीयते।

संस्कृतार्थ टीकार्थ - क्योंकि वह अविनाभाव तर्क प्रमाणसे ही निश्चित होता है।

प्रश्न 179-यह सूत्र क्यों रचा गया है?

उत्तर - अविनाभाव संबंधका निर्णय प्रत्यक्षादि प्रमाणोंसे नहीं होता, तर्क प्रमाणसे ही होता है एवं अन्य मतावलम्बियों ने तर्कको प्रमाण नहीं माना है अतः उनके द्वारा मान्य प्रमाण संख्या

मिथ्या ठहरती है। क्योंकि प्रत्यक्ष, अनुमान, आगम, उपमान, अर्थापत्ति तथा अभाव इन किसी भी प्रमाणसे व्याप्तिका निर्णय नहीं हो सकता है। इसलिए सभी को तर्कप्रमाण मानना ही चाहिए। (तर्कही निर्णायक होता है)

साधनसे होने वाले साध्यके ज्ञानको अनुमान कहते हैं, ऐसा प्रतिपादन तो हो चुका किंतु साध्य किसे कहते है यह ज्ञात न हो सका। अब साध्यका लक्षण कहते है -

"इष्टमबाधितमसिद्धं साध्यम्"।।16।।

सूत्रान्वय :- इष्टम्= इष्ट (अभिप्रेत), **अबाधितम् =** अबाधितको, **असिद्धं=** असिद्ध को, **साध्यम् =** साध्य (कहते है)।

सूत्रार्थ - इष्ट अबाधित और असिद्धभूत पदार्थको "साध्य" कहते है।

संस्कृतार्थ - यद् वादिनः साधयितुमिष्टं, प्रत्यक्षादिप्रमाणैरबाधितं, संशयाद्यक्रान्तं च विद्यते तत्साध्यं प्रोच्यते।।16।।

संस्कृत टीकार्थ- जिसको वादी सिद्ध करना चाहता है वह इष्ट है, प्रत्यक्षादि प्रमाणोंके द्वारा अबाधित और संशयादिका उल्लंघन विद्यमान है और जो सिद्ध नहीं है वह साध्य कहा जाता है।

प्रश्न 180-सूत्रमें साध्यके कितने विशेषण है?

उत्तर - इष्ट, अबाधित और असिद्ध ये तीन विशेषण हैं।

प्रश्न 181-इष्ट किसे कहते हैं?

उत्तर - वादि जिसे सिद्ध करना चाहे अथवा जो पदार्थ वादी को अभिप्रेत हो उसे इष्ट कहते हैं।

प्रश्न 182-अबाधित किसे कहते हैं?

उत्तर - जो किसी भी प्रमाणसे बाधित नहीं होता वह अबाधित है।

प्रश्न 183-असिद्ध किसे कहते हैं?

उत्तर - अप्रतिभूत पदार्थोंको असिद्ध कहते हैं, अथवा संशयादिका व्यवच्छेद करके पदार्थका स्वल्प ज्ञान होना सिद्ध है, इससे विपरीत असिद्ध कहलाता है।

प्रश्न 184-इस सूत्र में लक्ष्य और लक्षण कौन है?

उत्तर - साध्य लक्ष्य है। इष्ट, अबाधित और असिद्ध लक्षण है।

प्रश्न 185-आसन, शयन, भोजन और मिथुनादिक भी इष्ट है अतः इन्हें साध्यपने का प्रसंग आता है?

उत्तर - ऐसा कहना अत्यन्त मूर्खपना है क्योंकि ये नैयायिक अप्रस्तुत प्रलापी हैं। यहाँ पर साधनका अधिकार है। अतः साधनके विषय रूपसे इच्छित वस्तुको ही इष्ट कहा जाता है।

प्रश्न 186-अप्रस्तुत प्रलापी कौन कहलाते हैं?

उत्तर - जो बिना अवसर की बात करते हैं।

अब अपने द्वारा कहे हुए साध्यके लक्षणके विशेषणोंकी सफलता बतलाते हुए असिद्ध विशेषणका समर्थन करने के लिए कहते हैं :-

"संदिग्धविपर्यस्ताव्युत्पन्नानां साध्यत्वं यथास्यादित्यसिद्धपदम्"।।17।।

सूत्रान्वय :- **संदिग्ध** = अनिर्णीत, **विपर्यस्त** = विपरीतपना, **अव्युत्पन्न** = यथावत् निर्णीत न होना, **साध्यत्वं** = साध्यपना, **यथा** = जैसे, **स्यात्** = हों, **इति** = इस प्रकार, **असिद्धपदम्** = असिद्ध पद।

सूत्रार्थ - संदिग्ध विपर्यस्त और अव्युत्पन्न पदार्थोंके साध्यपना जिस प्रकारसे माना जा सके, इसलिए साध्यके लक्षणमें असिद्ध पद दिया है।

संस्कृतार्थ - संशयविपर्ययानध्यवसायगोचराणां पदार्थानां साध्यत्वसंकल्पनार्थ साध्य लक्षणेऽसिद्धपदमुपादीयते।।17।।

संस्कृतार्थ टीकार्थ - संशय, विपर्यय, अनध्यवसायके गोचर पदार्थोंके साध्यपनाको सिद्ध करनके लिए साध्यके लक्षणमें असिद्ध पदको ग्रहण किया गया है।

प्रश्न 187-संदिग्ध किसे कहते हैं?

उत्तर - यह स्थाणु है या पुरुष है इस प्रकार चलित प्रतिपत्तिके विषयभूत उभयकोटीका परामर्श वाली संशयसे युक्त वस्तु संदिग्ध कहलाती है।

प्रश्न 188-विपर्यस्त किसे कहते हैं?

उत्तर - विपरीत वस्तुका निश्चय करने वाले विपर्यय ज्ञानके विषयभूत

(सीपमें) चाँदी आदि पदार्थ विपर्यस्त है।

प्रश्न 189-अव्युत्पन्न किसे कहते हैं?

उत्तर - अव्युत्पन्नसे नाम, जाति, संख्यादिका विशेष परिज्ञान न होने से अनिर्णीत विषय वाले अनध्यवसाय ज्ञानसे ग्राह्य पदार्थको अव्युत्पन्न कहते है।

प्रश्न 190-अनुमानकी आवश्यकता कब होती है?

उत्तर - जब पदार्थमें सदेहादि हो जाता है। अत: 3 प्रकारके पदार्थोंकी सिद्धि करनेमें ही हेतुकी सामर्थ्य होती है इनसे विपरीत पदार्थो की सिद्धि करने में नहीं।

प्रश्न 191- असंदिग्धादि पदार्थोंके लिए अनुमानकी आवश्यकता क्यों नही होती?

उत्तर - क्योंकि वे पदार्थ पहलेसे सिद्ध हैं अर्थात् उनका अनुमान बनाना पिष्टीपेषण हो जाएगा।

अब साध्यके इष्ट और अबाधित इन-इन विशेषणोंकी सफलता दिखलाते है-

"अनिष्टाध्यक्षादिबाधितयो: साध्यत्त्वं मा भूदितीष्टाबाधितवचनम्"।।18।।

सूत्रान्वय :- अनिष्ट = जो इष्ट न हो, **अध्यक्ष** = प्रत्यक्ष, **आदि** = परोक्षादि, **बाधितयो:** = दोनोंसे बाधित, **साध्यत्वं** = साध्यपना, **मा** = नहीं, **भूत** = हो, **इति** = इस प्रकार, **इष्टाबाधित** = इष्ट - अबाधित, **वचनम्** = वचन।

सूत्रार्थ - अनिष्ट और प्रत्यक्षादि प्रमाणों से बाधित पदार्थोके साध्यपना न माना जाए, इसलिए इष्ट और अबाधित ये दो विशेषण दिए गए है।

संस्कृतार्थ - अनिष्टस्य प्रत्यक्षादिबाधितस्य च पदार्थस्य साध्यत्वनिरसार्थम् इष्टाबाधितपदयोरुपादानं कृतम्।।18।।

संस्कृत टीकार्थ- अनिष्टके और प्रत्यक्ष, परोक्षादि प्रमाणसे बाधित पदार्थके साध्यपनाका निराकरण करनेके लिए इष्ट और अबाधित इन दो पदोंको ग्रहण किया गया है।

प्रश्न 192-अनिष्ट किसे कहते हैं?

उत्तर - जिस वस्तुको वादि सिद्ध नहीं करना चाहता है उसे अनिष्ट कहते हैं।

प्रश्न 192-सूत्रमें आदि शब्दसे किसे ग्रहण करना है?

उत्तर - आदि शब्दसे, परोक्षसे अनुमानसे, आगमसे, लोक से तथा स्ववचनसे बाधित इन परोक्षप्रमाणके भेदों का ग्रहण किया जाता है।

प्रश्न 193-साध्यके लक्षणमें इष्ट विशेषण क्यों दिया?

उत्तर - जो वादिको इष्ट न हो उसे सिद्ध करना अप्रकरणिक असामायिक है ऐसी वस्तु साध्य नहीं हो सकती। उसका स्पष्टीकरण करने को साध्यके लक्षण में इष्ट विशेषण दिया है।

प्रश्न 194-साध्यके लक्षणमें अबाधित विशेषण क्यों दिया?

उत्तर - जिस पदार्थ को हम सिद्ध करना चाहते है, वह कदाचित् दूसरे प्रमाणसे बाधित हो तो प्रमाणान्तर उसे सिद्ध नहीं कर सकता अर्थात् जो किसी दूसरे प्रमाणसे बाधित होगा वह भी साध्य नहीं हो सकता। इस बातको स्पष्ट करने के लिए साध्यके लक्षणमें अबाधित वचन दिया गया है।

साध्यके लक्षणमें तीनों विशेषणोंके मध्यमें असिद्ध पद प्रतिवादी की अपेक्षा ही ग्रहण किया है, इष्टपद वादीकी अपेक्षा ग्रहण किया है, ऐसा भेद प्रदर्शित करनेके लिए यह सूत्र कहते है -

"न चासिद्धवदिष्टं प्रतिवादिन:"।।19।।

सूत्रान्वय :- **न** = नहीं, **च** = और, **असिद्धवत्** = असिद्धके समान, **प्रतिवादिन:** = प्रतिवादीकी अपेक्षासे, **इष्टं** = इष्ट।

सूत्रार्थ - असिद्धके समान इष्ट विशेषण प्रतिवादी की अपेक्षासे नही है।

संस्कृतार्थ - न हि सर्व सर्वापेक्षया विशेषणमपि तु किञ्चित्किमप्युद्दिश्य भवतीति। असिद्धवदिति व्यतिरेकमुखेनोदाहरणम्। यथा असिद्ध विशेषणं प्रतिवाद्यपेक्षया प्रोक्तं न तथा इष्टविशेषणमिति भाव:।

संस्कृतार्थ टीकार्थ - सभी विशेषण सभीकी अपेक्षा से नहीं होते है, अपितु कोई विशेषण किसीकी अपेक्षा होता है असिद्धके समान यह व्यतिरेक मुखसे उदा. दिया गया है जैसे - असिद्ध विशेषण प्रतिवादी की अपेक्षा कहा गया, वह उस प्रकारसे इष्ट नहीं है अर्थात् असिद्ध विशेषणवादीकी अपेक्षा कहा गया है।

प्रश्न 195-वादी किसे कहते है?

उत्तर - जो पहले अपने पक्षको स्थापित करता है उसे वादी कहते है।
प्रश्न 195-प्रतिवादी किसे कहते है?
उत्तर - जो उसका निराकरण करता है, उसे प्रतिवादी कहते हैं।
प्रश्न 196-अपने पक्षको समझानेकी इच्छा किसे होती है।
उत्तर - अपने पक्षको समझानेकी इच्छा वक्ताको ही होती है।
प्रश्न 197-पक्षको समझानेके लिए उदा. कौन सा दिया है?
उत्तर - असिद्धवत् यह उदा. व्यतिरेक मुखसे दिया गया है।
इष्ट विशेषणवादीकी अपेक्षा होनेका कारण -

"प्रत्यायनाय हीच्छा वक्तुरेव"।।20।।

सूत्रान्वय :- प्रत्यायनाय = दूसरेको समझानेके लिए, **हि** = निश्चयसे, **इच्छा** = अभिलाषा, **वक्तु:** = वक्ताकी, **एव** = ही।
सूत्रार्थ - क्योंकि दूसरेको समझानेके लिए इच्छा वक्ताको ही होती है।

संस्कृतार्थ - साध्यप्रज्ञापनविषयिणी इच्छा वादिन एव भवति न तु प्रतिवादिन:। अत: साध्ये इष्टविशेषणं वादिन: अपेक्षात: एव विद्यते।

संस्कृत टीकार्थ- साध्यको सिद्ध (दिखानेके लिए) करनेकी इच्छावादीको ही होती है, परन्तु प्रतिवादीको नहीं। इसलिए साध्यमें इष्ट विशेषणवादीकी अपेक्षासे ही है। अर्थात् दूसरों को प्रतिबाधित करने की इच्छा वक्ता की ही होती है।
प्रश्न 198-इष्ट किसे कहते है?
उत्तर - इच्छाका विषयभूत पदार्थ इष्ट कहलाता है।
प्रश्न 199-विशेषण किसे कहते है?
उत्तर - जो किसी दूसरे शब्दकी विशेषता प्रकट करता है। और 3 प्रकारका होता है - 1. व्यावर्तक, 2. हेतुगर्भ, यहाँ सूत्रमें हेतु गर्भरूप इष्ट विशेषण का प्रयोग किया गया है।

साध्य धर्म होता है अथवा विशिष्ट धर्मी ऐसा प्रश्नहोने पर उसका भेद दिखाते है -

"साध्यं धर्म: क्वचित् तद्विशिष्टो वा धर्मी"।।21।।

सूत्रान्वय :- साध्यं = साध्य, **धर्म:** = धर्म, **क्वचित्** = कहीं पर, **तत्**

= उससे, **विशिष्ट** = विशेषण से युक्त, **वा** = और, **धर्मी** = धर्मी।
सूत्रार्थ - कहीं पर धर्म साध्य होता है और कहीं पर धर्म विशिष्ट धर्मी।

संस्कृतार्थ - व्याप्तिकालापेक्षया धर्म एव साध्यो भवति। परन्तु अनुमान प्रयोगापेक्षया धर्म विशिष्टो धर्मी साध्यत्वेन प्रयुज्यते।।21।।

संस्कृत टीकार्थ - व्याप्ति प्रयोगके समय धर्मही साध्य होता है और अनुमान प्रयोगके समय धर्मसे विशिष्ट धर्मी साध्यपने से प्रयुक्त होता है।

विशेष - जहाँ-जहाँ धूम होता है वहाँ-वहाँ अग्नि होती है और जहाँ-जहाँ अग्नि नहीं होती वहाँ धूम भी नही होता। इस प्रकारसे जब किसी शिष्यादिको साध्य-साधनका ज्ञान कराया जाता है, तब उसे व्याप्ति काल कहते है। इस व्याप्तिकाल में अग्निरूप धर्म ही साध्य होता है इस पर्वतमें अग्नि है क्योंकि वह धूमवाला है, इस प्रकार से अनुमानके प्रयोग करने को प्रयोगकाल कहते है, उस समय अग्निरूपधर्म से विशिष्ट पर्वत ही साध्य होता है।

अब आचार्य इसी धर्मीका पर्यायवाची दूसरा नाम कहते हैं -

"पक्ष इति यावत्"।।22।।

सूत्रान्वय :- पक्ष = धर्मी, **इति** = इसप्रकार, **यावत्** = उसी
सूत्रार्थ - उसी धर्मीको पक्ष कहते है। पक्ष इस प्रकार धर्मीका ही पर्यायवाची नाम है।

प्रश्न 200- धर्म और धर्मीके समुदायको पक्ष कहते है। ऐसा स्वरूप क्यों नहीं कहा गया सूत्रमें?

उत्तर - यद्यपि सूत्रकार ने केवल धर्मीको पक्ष कहा है, तथापि उनका अभिप्राय साध्यधर्मसे विशिंष्ट धर्मीको पक्ष कहने का है, इससे धर्म-धर्मीके समुदायका अर्थ आ ही जाता है अतः पूर्व सिद्धान्तसे कोई विरोध नहीं है। बौद्धमतानुसार यह ज्ञात हुआ कि धर्मीका प्रतिभास विकल्प बुद्धिसे होनेके कारण उसकी सत्ता वास्तविक नहीं है? इस कथन को निरस्त करनेके लिए उत्तर सूत्र कहते हैं -

"प्रसिद्धो धर्मी"।।23।।

सूत्रान्वय :- प्रसिद्ध = प्रमाणसे, **धर्मी** = धर्मी (पक्ष)।

सूत्रार्थ - धर्मी प्रसिद्ध अर्थात् प्रमाणसे सिद्ध होता है, काल्पनिक नहीं।

संस्कृतार्थ - धर्मी (पक्षः) प्रसिद्धो विद्यते, अवस्तुस्वरूपः, कल्पितो वा नो विद्यते।।23।।

संस्कृत टीकार्थ- धर्मी (पक्ष) प्रसिद्ध होता है अवस्तुस्वरूप और कल्पित नहीं होता है।

धर्मीकी विकल्पसे प्रतिपत्ति मानने पर वहाँ साध्य क्या है? ऐसी शंकाका निराकरण करनेके लिए यह सूत्र प्रसूत होता है -

"विकल्पसिद्धे तस्मिन् सत्तेतरे साध्ये"।।24।।

सूत्रान्वय :- विकल्पसिद्धे = विकल्पसिद्ध (धर्मीमें), **तस्मिन्** = उसमें, **सत्ता** = अस्तित्व **इतर** = असत्ता (नास्तित्व), **साध्ये** = दोनों साध्य है

सूत्रार्थ - उस विकल्प सिद्धधर्मीमें सत्ता और असत्ता ये दोनों ही साध्य है।

संस्कृतार्थ - तस्मिन धर्मिणि विकल्पसिद्धे सति अस्तित्वं नास्तित्वं चेत्युभे साध्ये भवतः।।24।।

संस्कृत टीकार्थ- उस धर्मीके विकल्प सिद्ध होने पर सत्ता (सद्भाव-मौजूदगी), और असत्ता (असद्भाव-गैरमौजूदगी) दोनों साध्य होते है।

प्रश्न 201- विकल्प किसे कहते हैं?

उत्तर - जिस पक्षका न तो किसी प्रमाण से अस्तित्व सिद्ध हो और न नास्तित्व सिद्ध हो उस पक्षको विकल्प सिद्ध कहते है। इसी बात को न्याय दीपिका में इस प्रकार कहा हे "अनिश्चित प्रामाण्य गोचरत्वं विकल्प सिद्धत्वम्"।

प्रश्न 202- विकल्प सिद्ध धर्मीमें सत्ता साध्य क्यों है?

उत्तर - सुनिश्चित असम्भव बाधक प्रमाण केवलसे सत्ता साध्य है।

प्रश्न 202- विकल्प सिद्ध धर्मीमें असत्ता साध्य क्यों है?

उत्तर - योग्यकी अनुपलब्धिके बलसे असत्ता साध्य है।

अब विकल्प सिद्धधर्मी का उदा.

"अस्ति सर्वज्ञो, नास्ति खरविषाणम्"।।25।।

सूत्रान्वय :- अस्ति = है, **सर्वज्ञः** = सर्वज्ञ, **नास्ति** = नही है, **खर** = गधेके, **विषाणम्** = सींग।

सूत्रार्थ - सर्वज्ञ है, गधेके सींग नहीं है।

संस्कृतार्थ - सर्वज्ञोऽस्ति सुनिश्चितासम्भवबाधकप्रमाणत्वात्। खरविषाणं नास्ति अनुपलब्धेः।

संस्कृत टीकार्थ - सर्वज्ञ (आप्त केवली भगवान) है, सुनिश्चित सम्भव बाधक प्रमाणत्व होनेसे गधेके सींग नहीं है, यहाँ गधेके सींग विकल्प सिद्ध धर्मी है, उनकी असत्ता साध्य है।

प्रश्न 203- विकल्प सिद्ध धर्मीके कितने रूप हो सकते है?

उत्तर - विकल्पसिद्धधर्मीके 2 रूप हो सकते है। सत्तारूप भी और असत्तारूप भी।

प्रश्न 204- इसका उदा. क्या है?

उत्तर - "सर्वज्ञ है" ऐसे प्रतिज्ञारूप वाक्यमें सत्ता साध्य है, "गधे के सींग नहीं है" ऐसे प्रतिज्ञारूप वाक्यमें असत्ता साध्य है।

प्रश्न 205- पक्ष या धर्मी किसे कहते है?

उत्तर - जिसमें साध्य रहता है उसे पक्ष या धर्मी कहते है।

इस समय प्रमाणसिद्ध और उभयसिद्ध धर्मीमें साध्य क्या है? ऐसी आशंका होने पर कहते हैं -

"प्रमाणोभयसिद्धे तु साध्यधर्म विशिष्टता"।।26।।

सूत्रान्वय :- प्रमाणसिद्धे = प्रमाणसिद्धमें, **उभयसिद्धे** = प्रमाणविकल्प सिद्ध, **तु** = और, **साध्य** = साध्य (पक्ष), **धर्मविशिष्टता** = धर्मसे युक्त धर्मी।

सूत्रार्थ - प्रमाणसिद्ध धर्मीमें और प्रमाण विकल्पसिद्ध धर्मीमें धर्मसहित धर्मी साध्य होता है।

संस्कृत टीकार्थ - प्रमाण सिद्ध धर्मीमें और प्रमाणविकल्प सिद्ध धर्मी में धर्म से सहित धर्मी साध्य होता है।

प्रश्न 206-"साध्ये" पूर्व सूत्रमें द्विवचनांत है फिर यहाँ एकवचन में प्रयुक्त क्यों किया?

उत्तर - पूर्वसूत्रमें द्विवचनांत होते हुए भी अर्थके वशसे एकवचनांत के रूपसे संबद्ध किया है। प्रमाण और उभय अर्थात् विकल्प और प्रमाण इन दोनों से सिद्ध धर्मीमें साध्य धर्म विशिष्टता साध्य है।

प्रश्न 207-प्रस्तुत सूत्रका भावार्थ क्या है?

उत्तर - प्रमाणसे जानी गई वस्तु (पर्वतादी) विशिष्ट धर्मका आधार होने से विवादका विषय हो जाती है, साध्यताका उल्लंघन नहीं करती है। इस प्रकार उभयसिद्धमें भी योजना करना चाहिए।

प्रमाणसिद्ध और उभयसिद्ध दोनों धर्मियों क्रमको दिखलाते हुए कहते है :-

"अग्निमानयं देशः परिणामी शब्द इति यथा"।।27।।

सूत्रान्वय :- अग्निमान् =अग्निवाला, **अयम्** = यह, **देशः** = प्रदेश, **परिणामी** = परिणमनवाला, **शब्द** = शब्द, **इति** = इस प्रकार, **यथा** = जैसे,

सूत्रार्थ - जैसे यह प्रदेश अग्निवाला है और शब्द परिणामी है।

संस्कृतार्थ - अग्निमानयं प्रदेशः धूमवत्वात् इति प्रमाणसिद्धधर्मिणः उदाहरणम्। यतः पर्वतादिप्रदेशाः प्रत्यक्षादिप्रमाणैः सिद्धाः विद्यन्ते। तथा च शब्द परिणामी, कृतकत्वात् इति प्रमाण विकल्प सिद्धधर्मिणः उदाहरणम्। यतः अत्र धर्मी शब्दः उभयसिद्धो विद्यते। स हि वर्तमान कालिकः प्रत्यक्षगम्यः भूतो, भविष्यंश्च विकल्पगम्यो वर्तते।।27।।

संस्कृत टीकार्थ- यह प्रदेश अग्निवाला है और धूम वाला होनेसे "इस प्रकार प्रमाण सिद्धधर्मीका उदा. है। क्योंकि पर्वतादि प्रदेश प्रत्यक्ष आदि प्रमाणसे सिद्ध होते हैं और उसी प्रकार शब्द परिणामी है किया जाने वाला होनेसे (कृतक होनेसे) इस प्रकार प्रमाणविकल्प सिद्धधर्मीका उदा. है। क्योंकि इसमें धर्मी शब्द उभय (प्रमाण विकल्प)सिद्ध है क्योंकि वही शब्द (पक्ष) वर्तमानकाल वाला तो प्रत्यक्ष प्रमाणसे सिद्ध है और भूत तथा भविष्यत् शब्द विकल्प सिद्ध है।

प्रश्न 208- अनुमान का प्रयोग कब निरर्थक है?

उत्तर - सर्वदर्शीके अनियत दिग्देश कालवर्ती शब्दों के निश्चय होने परभी उसके लिए (सर्वज्ञ) अनुमान का प्रयोग निरर्थक है।

अनुमान प्रयोग कालकी अपेक्षासे धर्म विशिष्ट धर्मीके साध्यपने का कथन करके व्याप्ति कालकी अपेक्षा साध्य नियम को दिखलाते हैं -

"व्याप्तौ तु साध्यं धर्मएव"।।28।।

सूत्रान्वय :- व्याप्तौ = व्याप्तिकालमें, **तु** = परन्तु, **साध्यं** = साध्य **धर्म**= धर्म **एव** = ही।

सूत्रार्थ - व्याप्ति कालमें तो धर्मही साध्य होता है।

संस्कृतार्थ - व्याप्तिकालापेक्षया साध्यं धर्म एव भवति, न तु साध्य विशिष्टो धर्मीति भावः।।28।।

संस्कृत टीकार्थ - व्याप्तिकाल की अपेक्षासे धर्म ही साध्य होता है, परन्तु धर्मविशिष्ट धर्मी नहीं।

विशेष :- जहाँ-जहाँ धुआँ होता है, वहाँ-वहाँ अग्नि होती है, इस प्रकार व्याप्ति होने पर प्रयोगकालमें धर्म ही साध्य होता है, व्याप्ति के समय धर्मी साध्य नहीं होता है। अग्नि ही साध्य होती है, अग्नि विशिष्ट पर्वत नहीं। - शेष सुलभ है।

धर्मीके भी साध्य होने पर क्या दोष है -

"अन्यथा तदघटनात्"।।29।।

सूत्रान्वय :- अन्यथा = अन्यथा, **तत्** = वह व्याप्ति, **अघटनात्** = घटित नहीं होनेसे,

सूत्रार्थ - अन्यथा व्याप्ति घटित नहीं हो सकती।

संस्कृतार्थ - व्याप्तिकालेऽपि धर्मिणः साध्यत्वे धर्मिसाधनयोः व्याप्तघटनात्।।29।।

संस्कृत टीकार्थ - व्याप्तिकालमें भी धर्मी को साध्य करने पर धर्मी और साधन की व्याप्ति घटित नहीं बन सकेगी।

प्रश्न 209- सूत्रमें अन्यथा शब्द क्यों ग्रहण किया?

उत्तर - अन्यथा शब्द ऊपर कहे गये अर्थके विपरीत अर्थ में कहा गया है।

प्रश्न 210- सूत्रमें हेतु क्या है?

उत्तर - धर्मीको साध्य बनाने पर व्याप्ति नहीं बनती है, यह हेतु है

प्रश्न 211- कैसी व्याप्ति संभव नहीं है?

उत्तर - धुएँके देखनेसे सब जगह पर्वत अग्निवाला है, इस प्रकारकी व्याप्ति करना संभव नहीं है, क्योंकि (साध्य साधन भावके असंभव होनेसे) प्रमाणसे विरोध आता है।

पक्षके प्रयोग करनेकी आवश्यता -

"साध्यधर्माधारसन्देहापनोदाय गम्यमानस्यापि पक्षस्य वचनम्"।।30।।

सूत्रान्वय :- साध्य धर्म = साध्यरूप धर्मके, **आधार** = आधारके विषयमें, **संदेह** = सशयको, **अपनोदाय** = दूर करनेके लिए, **गम्यमानस्य** = गम्य मानके, **अपि** = भी, **पक्षस्य** = पक्षके, **वचनम्** = वचनको।

सूत्रार्थ - साध्यधर्मके आधारमें उत्पन्न हुए संदेहको दूर करनेके लिए गम्यमान भी पक्षका प्रयोग किया जाता है।

संस्कृतार्थ - साध्यरूप धर्माधिकरण समुत्थसंशय निवारणाय स्वयंसिद्धस्यापि पक्षस्य प्रयोगः आवश्यकः।।30।।

संस्कृत टीकार्थ- साध्य रूप धर्मके आधारके विषयमें उत्पन्न हुए संदेहको दूर करनेके लिए स्वयं सिद्ध भी पक्षका प्रयोग आवश्यक है।

प्रश्न 212- हेतुकी सामर्थ्यसे ज्ञात होने वाले पक्षका प्रयोग आवश्यक क्यों है?

उत्तर - साध्यही धर्म है उसका आधार (पक्ष) उसमें यदि संदेह हो कि इस साध्यरूप धर्मका आधार यहाँ रसोईघर आदि है या पर्वत है उसका अपनोद व्यवच्छेद करनेके लिए गम्यमान भी यदि पक्षका प्रयोग न किया जाए तो साध्य-साधनके व्याप्य-व्यापक भावरूप संबंधका प्रदर्शन नहीं बन सकता।

पक्षका प्रयोग करनेकी आवश्यकता का दृष्टान्त :-

"साध्यधर्मिणि साधन धर्मावबोधनाय पक्ष धर्मो-पसंहारवत्"।।31।।

सूत्रान्वय :- साध्यधर्मिणि = साध्यसे युक्त धर्मी में, **साधनधर्म** = साधनधर्म, **अवबोधनाय** = ज्ञानकराने के लिए **पक्षधर्म** = पक्षधर्मके, **उपसंहारवत्** = उपसंहारके समान।

सूत्रार्थ - जैसे साध्यसे युक्त धर्मीमें साधन धर्मका ज्ञानकरानेके लिए पक्ष धर्मके उपसंहार रूप उपनय का प्रयोग किया जाता है।

संस्कृतार्थ - साध्यव्याप्तसाधनप्रदर्शनेन तदाधारावगतावपि नियतधर्मिसम्बन्धिता प्रदर्शनार्थं यथोपनयः प्रयुज्यते तथा साध्यस्य विशिष्ट धर्मिसम्बन्धितावबोध-नार्थं पक्षोऽपि प्रयोग प्रयोक्तव्यः।

संस्कृत टीकार्थ - साध्यके साथ व्याप्त साधनके प्रदर्शनसे उसके आधार के अवगत हो जाने पर भी नियत धर्मीके साथ संबंधपना बतलानेके लिए जैसे उपनयका प्रयोग किया जाता है, उसी प्रकार साध्यका विशिष्ट धर्मीके साथ संबंधपना बतलानेके लिए जैसे - उपनय आवश्यक है, उसी प्रकार साध्यका विशिष्ट धर्मीके साथ संबंधपना बतलानेके लिए पक्षका वचन भी आवश्यक है।

प्रश्न 213- उपनय किसे कहते है?

उत्तर - साध्यसे विशिष्ट जो धर्मी पर्वतादि उसमें साधन धर्मका ज्ञान करने के लिए पक्षधर्मके उपसंहारके समान पक्षधर्म जो हेतु उसके उपसंहार को उपनय कहते है।

प्रश्न 214- हेतुका समर्थन करनेपर भी समर्थन आवश्यक क्यों है?

उत्तर - क्योंकि असमर्थित हेतु नहीं हो सकता।

प्रश्न 215- पक्षके प्रयोगके अभावमें हेतु की प्रवृत्ति कहाँ होगी? दोनों जगह समानता है।

उत्तर - इसलिए कार्य, स्वभाव और अनुपलम्भके भेदसे तथा पक्ष धर्मत्वादि के भेदसे 3 प्रकार का हेतु कहकर समर्थन करने वाले बौद्ध को पक्षका प्रयोग स्वीकार करना ही चाहिए।

पक्षके प्रयोग की आवश्यकता की दृष्टि :-

"को वा त्रिधा हेतु मुक्त्वा समर्थयमानो न पक्षयति"।।32।।

सूत्रान्वय :- कः = कौन, **वा** = निश्चय अर्थमें, **त्रिधा** = तीन प्रकारके,

हेतुम् = हेतुको, **उक्त्वा** = कह करके, **समर्थयमानः** = समर्थन करता हुआ, **न** = नहीं, **पक्षयति** = पक्ष प्रयोग करे।

सूत्रार्थ - ऐसा कौन है जो कि तीन प्रकारके हेतुको कह करके उसका समर्थन करता हुआ भी पक्ष प्रयोग न करे।।32।।

संस्कृतार्थ - को वा वादि प्रतिवादी त्रिविधं हेतुं स्वीकृत्य तत्समर्थनं च कुर्वाणः पक्षवचनं न स्वीकरोति? अपि तु स्वीकरोत्येव्।।32।।

संस्कृतटीकार्थ - ऐसा कौन वादि या प्रतिवादी पुरुष है (लौकिक या परीक्षक) जो तीन प्रकारके हेतुको कहकर उसका समर्थन करता हुआ उस हेतुको नहीं मानेगा? अपितु सभी स्वीकार करेंगे ही।

प्रश्न 216-'कः' पदका क्या अर्थ है?

उत्तर - कौन ऐसा वादी या प्रतिवादी पुरुष है।

प्रश्न 217-'वा' शब्द किस अर्थमें है?

उत्तर - वा शब्द निश्चयके अर्थमें है।

प्रश्न 218-सूत्रमें 'उक्त्वा' क्रिया पदको क्यों रखा?

उत्तर - यह समर्थन हेतु प्रयोगके उत्तरकालमें बौद्धों ने स्वयं अंङ्गीकार किया है, इसलिए सूत्रमें 'उक्त्वा' यह पद कहा है।

प्रश्न 219-समर्थन किसे कहते हैं?

उत्तर - हेतु के असिद्ध आदि दोषोंका परिहार करके अपने साध्यके साधन करनेकी सामर्थ्यके प्रकटीकरण में समर्थ वचन को समर्थन कहते है।

प्रश्न 220-कौनपक्षका प्रयोग नहीं करता?

उत्तर - अपितु करता ही है। क्या करके? हेतुका कथन करके ही कथन न करके नहीं, यह अर्थ है।

प्रश्न 221-सांख्य अनुमानके कितने अंग मानते है?

उत्तर - पक्ष, हेतु और दृष्टान्त अनुमानके तीन अवयव होना चाहिए।

प्रश्न 222-मीमांसक अनुमान के कितने अंग मानते है?

उत्तर - प्रतिज्ञा, हेतु, उदाहरण और उपनयके भेदसे अनुमानके चार अवयव होना चाहिए।

प्रश्न 223-योग अनुमानके कितने अंग मानते है?

उत्तर - प्रतिज्ञा, हेतु, उदाहरण, उपनय और निगमनके भेद से अनुमानके 5 अवयव होने चाहिए।

उपरोक्त मतों का निराकरण करते हुए स्वमत सिद्ध दो अवयव ही दिखलाते हुए कहते है?

"एतद्द्वयमेवानुमानाङ्गं नोदाहरणम्"।।33।।

सूत्रान्वय :- **एतद्** = ये, **द्वयम्** = दोनों (पक्ष और हेतु), **एव** =ही, **अनुमान** = अनुमानके, **अंगं** = अंग (अवयव), **न** = नहीं, **उदाहरणम्** = उदाहरण।

सूत्रार्थ - ये दोनों ही (पक्ष और हेतु) अनुमानके अंग है, उदा. नहीं। **संस्कृतार्थ** - पक्ष, हेतुश्चेति द्वितयमेवानुमानाङ्गं नोदाहरणादिकम्।

संस्कृत टीकार्थ- पक्ष और हेतु इस प्रकार दो ही अनुमानके अंग है। उदाहरण आदि नहीं।

विशेष - पक्ष और हेतु ये दोनों ही अनुमानके अंग है, अतिरिक्त नहीं यह सूत्र के पूर्वार्ध का अर्थ है।

प्रश्न 224-सूत्रमें एवकारका प्रयोग क्यों किया गया है?

उत्तर - सूत्र पठित 'एव' पद से उदाहरणादिकका व्यवच्छेद सिद्ध होने पर भी अन्य मतों के निराकरण करने के लिए उदाहरणादिक नहीं ऐसा पुनः कहा है।

इतने पर भी लोग उदा का प्रयोग आवश्यक मानते है, आचार्य उससे पूछते है कि क्या साध्यका ज्ञान करानेके लिए उदा. का प्रयोग आवश्यक है, अथवा हेतुका अविनाभाव संबध बतलानेके लिए अथवा व्याप्तिका स्मरण करनेके लिए? इस प्रकार तीन प्रकार विकल्प उठाकर आचार्य क्रमसे दूषण देते हुए उत्तर सूत्र कहते है :-

"न हि तत्साध्य प्रतिपत्त्यङ्गं तत्र यथोक्त हेतोरेव व्यापारात्"।।34।।

सूत्रान्वय :- **न** = नहीं, **हि** = क्योंकि, **तत्** = वह, **साध्य** = साध्यका, **प्रतिपत्ति** = ज्ञानकरानके लिए, **वा** = निश्चय अर्थमें, **त्रिधा** = तीन प्रकारको, **हेतुम्** = हेतुको, **अङ्ग** = कारण, **तत्र** = ज्ञानमें, **यथोक्त** = जैसा कहा, **हेतोः** = हेतुका, **एव** = ही, **व्यापारात्** = व्यापार होनेसे।

सूत्रार्थ - वह उदाहरण साध्यका ज्ञान करानेके लिए कारण नहीं है, क्योंकि साध्यके ज्ञानमें यथोक्त हेतुका ही व्यापार होता है।।34।।

संस्कृतार्थ - साध्यं प्रज्ञापनार्थम् उदाहरणप्रयोगः इति चेन्न साध्याविनाभावित्वेन निश्चितस्य हेतोरेव साध्यज्ञानजनकत्व सामर्थ्यात्।।34।।

संस्कृतटीकार्थ - साध्यका ज्ञान करानेके लिए उदाहरणका प्रयोग समीचीन है इस प्रकार कहते हैं तो ठीक नहीं है क्योंकि साध्य का अविनाभावी होनेसे निर्दोष हेतुही साध्यके ज्ञान करानेके लिए समर्थ है।

प्रश्न 225- सूत्र अर्थका संबंध कैसा करना चाहिए?

उत्तर - वह उदाहरण साध्यकी प्रतिपत्ति (ज्ञान)का अंग अर्थात् कारण नहीं है। ऐसा सूत्रार्थ है।

प्रश्न 226- 'यथोक्त' का क्या अर्थ हे?

उत्तर - साध्यके साथ अविनाभाव रूपसे निश्चित हेतुका व्यापार होता है।

प्रश्न 227- इस सूत्रमें तीन विकल्पोंमें से कौनसे विकल्पका समाधान दिया है?

उत्तर - प्रथम विकल्प साध्यका ज्ञान करानेके लिए उदा. का प्रयोग आवश्यक है इस विकल्प का निराकरण करने के लिए।

साध्य के साथ हेतुका अविनाभाव निश्चित करानेके लिए उदा. की आवश्यकता के प्रदर्शन का खण्डन :-

"तदविनाभावनिश्चयार्थं वा विपक्षे बाधकप्रमाणबलादेव तत्सिद्धेः"।।35।।

सूत्रान्वय :- **तत** = वह उदा , **अविनाभाव निश्चयार्थ** = अविनाभावके निश्चयके लिए, **वा** = क्योंकि, **विपक्षे** = विपक्षमें, **बाधकात्** = बाधक प्रमाणसे, **एव** = ही, **तत्** = अविनाभाव, **सिद्धेः** = सिद्ध हो जाता है।

नोट - सूत्रका अर्थ करते समय तत् और न इन दो पदों की अनुवृत्ति करना चाहिए।

सूत्रार्थ - वह उदाहरण अविनाभावके निश्चयके लिए भी कारण नहीं है क्योंकि विपक्षमें बाधक प्रमाणसे ही अविनाभाव सिद्ध हो जाता है।

विशेष - तत् और न इन दो पदों की अनुवृत्ति करनेसे सूत्रका अर्थ इस प्रकार है - वह उदाहरण उस साध्यके साथ अविनाभाव संबंधका निश्चय करनेके लिए भी कारण नहीं है। क्योंकि विपक्षमें बाधकप्रमाण के बलसे ही उसकी सिद्धिहो जाती है, अर्थात् अविनाभावका निश्चय हो जाता है।

संस्कृतार्थ - साध्येन सह हेतोरविनाभावनिश्चयार्थमुदाहरण प्रयोग: आवश्यक इति चेन्न विपक्षे बाधकप्रमाणबलादेव तदविनाभाव निश्चय सिद्धे:।।35।।

संस्कृत टीकार्थ- कोई कहता है कि व्याप्ति का स्मरण करनेके लिए उदाहरणका प्रयोग समीचीन है ही। इस प्रकार कहना ठीक नहीं है क्योंकि विपक्षमें बाधक प्रमाणके बलसे ही साध्यके साथ हेतुका अविनाभाव निश्चित हो जाता है।

प्रश्न 228- उदाहरण कैसा होता है?

उत्तर - उदा एक व्यक्ति रूप होता है, वह सर्वदेश सर्वकालवर्ती व्याप्ति का ज्ञान कैसे करा सकता है।

प्रश्न 229- अविनाभाव का निश्चय करानेके लिए यदि उदा. का प्रयोग किया जाए तो क्या दोष आऐगा?

उत्तर - अनवस्था दोष प्राप्त प्राप्त होगा, अन्य व्यक्तियोंमें व्याप्तिके ज्ञान करानेके लिए अन्य उदाहरण भी व्यक्तिरूप होगा। अत: सर्वदेशकालके उपसंहारसे वह भी व्याप्तिका निश्चय करानेके लिए अशक्य होगा। इस प्रकार अन्य-अन्य उदाहरणोंकी अपेक्षा करनेपर अनवस्था दोष प्राप्त होगा। अत: अविनाभावके निश्चयके लिए भी उदाहरणकी आवश्यकता नहीं है।

आचार्य भगवन् इसी बातको उत्तरसूत्र द्वारा प्रकट करते है -

"व्यक्तिरूपं च निदर्शन सामान्येन तु व्याप्तिस्तत्रापि तद्विप्रतिपत्तावनवस्थानं स्याद् दृष्टान्तान्तरापेक्षाणात्"।।36।।

सूत्रान्वय :- व्यक्तिरूपं =व्यक्तिरूप, **च** = और, **निदर्शन** = उदाहरण, **तु** = परन्तु, **व्याप्ति:** = व्याप्ति, **सामान्येन** = सामान्य से, **तत्रापि** = उस उदाहरणमें भी, **तद्विप्रतिपत्तौ** = उसमें विवाद होनेपर, **अनवस्थानम्** = अनवस्थादोष, **स्यात्**= होगा, **दृष्टान्तान्तर** = अन्य दृष्टान्तकी, **अपेक्षाणात्** = अपेक्षासे,

सूत्रार्थ - निदर्शन (उदा.) व्यक्ति रूप होता है और व्याप्ति सामान्यसे

सर्वदेशकालकी उपसंहार वाली होती है। अतः उस उदाहरण में भी विवाद होने पर अन्य दृष्टान्त की अपेक्षा पड़नेसे अनवस्था दोष प्राप्त होगा।

संस्कृतार्थ - दृष्टान्तो विशेष रूपः व्याप्तिश्च सामान्यरूपा भवति। अतः उदाहरणेऽपि सामान्यव्याप्ति सति तन्निश्चयार्थम् उदाहरणान्तरापेक्षणात् अनवस्था- दोषप्रसङ्गो भवेत्।।36।।

संस्कृत टीकार्थ - दृष्टान्त विशेषरूप होता है और व्याप्ति सामान्यरूप से होती है। अतः उदाहरण में भी सामान्य व्याप्तिका विवाद होनेपर उसका निश्चय कराने के लिए अन्य उदा. की अपेक्षा होने से अनवस्था दोषका प्रसंग होता है।

प्रश्न 230 - निदर्शन और व्याप्ति कैसी होती है?

उत्तर - निदर्शन (विशेष आधार वाला होने से विशेषरूप रहता है। और व्याप्ति सामान्यरूप होती है।

विशेष - उस उदाहरण में भी तद्विप्रतिपत्ति अर्थात् सामान्य व्याप्तिमें विवाद होने पर यह अर्थ लेना चाहिए।

अब तृतीय विकल्प-व्याप्तिका स्मरण करनेके लिए भी उदा.का प्रयोग आवश्यक है, इस विषयमें दूषण देते हुए कहते है :-

"नापि व्याप्तिस्मरणार्थं तथाविध हेतुप्रयोगादेव तत्स्मृतेः"।।37।।

सूत्रान्वय :- **न** = नहीं, **अपि** = भी, **व्याप्तिस्मरणार्थं** = व्याप्तिका स्मरण करनेके लिए, **तथाविध** = साध्यके अविनाभावी, **हेतुप्रयोगात्** = हेतुके प्रयोगसे **एव** = ही, **तत्** = उस (व्याप्तिका) **स्मृतेः** = स्मरण हो जानेसे।

सूत्रार्थ - व्याप्तिका स्मरण करानेके लिए भी उदाहरण की आवश्यकता नहीं है। उसका (व्याप्ति) स्मरण तो साध्यके अविनाभावी हेतुके प्रयोगसे ही हो जाता है।

संस्कृतार्थ - ननु व्याप्तिस्मरणार्थम् उदाहरण प्रयोगस्य समीचीनत्वमस्त्येवेति चेन्न साध्याविनाभावित्वापन्नस्य हेतोः प्रयोगादेव व्याप्ति स्मरणसंसिद्धेः।।37।।

संस्कृत टीकार्थ - कोई कहता है कि व्याप्तिका स्मरण करानेके लिए उदा. का प्रयोग समीचीन है ही इस प्रकार कहना ठीक नहीं, क्योंकि साध्यके अविनाभावीपने को प्राप्त हेतुके प्रयोगसे ही व्याप्ति स्मरणकी समीचीन सिद्ध हो जाती है।

विशेष - जिसने साध्यके साथ साधनका संबंध ग्रहण किया है। ऐसे पुरुषको हेतुके दिखलानेसे ही व्याप्ति सिद्ध हो जाती है और जिसने संबंध को ग्रहण नहीं किया है। ऐसे व्यक्ति को सैकड़ो दृष्टान्तों से भी स्मरण नहीं होगा, क्योंकि स्मरणका विषय अनुभूत है।

अतः इस प्रकार उदा.का प्रयोग साध्यके लिए उपयोग नहीं है, अपितु संशयका ही हेतु है :- इस बातको दिखलाते है एवं उपनय और निगमनके प्रयोग बिना उदा. प्रयोग से हानि :-

"तत्परमभिधीयमानं साध्यधर्मिणि साध्य साधने संदेहयति"।।38।।

सूत्रान्वय :- तत् = वह, **परम्** = केवल, **अभिधीयमानं** = कहा जाने वाला, **साध्यधर्मिणि** = साध्य विशिष्ट धर्मीमें, **साध्य साधने** = साध्यके साधन करनेमें, **संदेहयति** = सदेह करा देता है।

सूत्रार्थ - उपनय और निगमनके बिना यदि केवल उदा. का प्रयोग किया जायेगा तो साध्य धर्म वाले धर्मी (पक्ष) में साध्य और साधनके सिद्ध करनेमें सदेह करा देगा।

संस्कृतार्थ - केवल प्रयुज्यमानं तदुदाहरणं साध्यविशिष्टे धर्मिणि साध्य- साधने सदिग्ध करोति।दृष्टान्तधर्मिणि साध्यव्याप्तसाधनोपदर्शनेऽपि साध्य- धर्मिणि तन्निर्णयस्य कर्त्तुमशक्यत्वात्।।38।।

संस्कृत टीकार्थ- वह उदा. पर केवल कहा गया साध्यधर्मीमें साध्य विशिष्ट धर्मीमें साध्यके साधन करनेमें सदेहयुक्त कर देता है। दृष्टान्त धर्मी (रसोईघर) साध्यसे व्याप्त साधनके दिखलाने पर भी साध्य धर्म (पर्वतादि) में साध्यव्याप्त साधनका निर्णय करना संभव नहीं है।

इसी अर्थको व्यतिरेक मुखसे समर्थ करते हुए कहते है अर्थात् केवल उदा. प्रयोग से संदेह होने का स्पष्टीकरण -

"कुतोऽन्यथोपनयनिगमने"।।39।।

सूत्रान्वय :- कुतः = क्यों, **अन्यथा** = अन्यथा, **उपनय निगमने** = उपनय और निगमनका।

सूत्रार्थ - अन्यथा उपनय और निगमन का प्रयोग क्यों किया जाता।

संस्कृतार्थ - केवलोदाहरणप्रयोगस्य संशयजनकात्वाभावे उपनय निगमन

प्रयोग: किमर्थं विधीयते? अतो निश्चीयते यदुदाहरणमात्रप्रयोगात्संशयोऽवश्यं जायते।।39।।

संस्कृत टीकार्थ - केवल उदा.के प्रयोगसे संशय उत्पन्न नहीं होता तो उपनय और निगमनका प्रयोग क्यों किया जाता? इसलिए इससे निश्चय होता है कि उदा. मात्रके प्रयोगसे संशय होता है।

विशेष - उदा. यदि साध्य विशिष्ट धर्मीमें साध्यका साधन करने में संदेह युक्त न करता तो किस कारण उपनय और निगमनका प्रयोग किया जाता।

योग उपनय और निगमन अनुमानके अंग है, उनका प्रयोग न करने पर असंदिग्ध रूपसे साध्यका ज्ञान नहीं हो सकता है?

उक्त कथनका निषेध करनेके लिए कहते है -

'न च ते तदंगे, साध्य धर्मिणि हेतुसाध्ययोर्वचनादेवासंशयात्''।40।

सूत्रान्वय :- न = नहीं, **च** = और, **ते** = वे दोनों उपनय और निगमन, **तत्** = उसके (अनुमान), **अंगे** = अग, **साध्यधर्मिणि** = साध्यधर्मीमें **हेतुसाध्ययो:** = हेतु और साध्यके **वचनात्** = वचनसे, **असंशयात्** = संशय नहीं रहता।

सूत्रार्थ - उपनय और निगमन अनुमानके अंग नही है, क्योंकि हेतु और साध्यके बोलने से ही संशय नहीं रहता है।

संस्कृतार्थ - ननूपनयनिगमनयोरप्यनुमानाङ्गत्वमेव, तदप्रयोगे नि:संशयसाध्यसम्वित्तेरयोगादिति चेन्न हेतुसाध्ययो: प्रयोगादेव साध्यधर्मिणि संशयस्य निराकृत्वात् उपनयनिगमनयोरनुमानाङ्गत्वाभावात्।।40।।

संस्कृत टीकार्थ - कोई कहता है उपनय और निगमन को भी अनुमानका अङ्गपना ही है उनके प्रयोगके बिना नि:संशय साध्यके ज्ञानका योग नहीं है। ऐसा कहना ठीक नहीं है क्योंकि हेतु और साध्यके प्रयोगसे ही साध्यधर्मी में संशयका निराकरण होनेसे उपनय और निगमनका अनुमानके अङ्गपने का अभाव है।

प्रश्न 231-इस सूत्रमें एवं पदको क्यों ग्रहण किया है?

उत्तर - यहाँ पर दिये गये एवं पदसे दृष्टान्तादिकके बिना यह अर्थ लेना है।

प्रश्न 232- यौगमतानुसारियों के उपनय और निगमन अनुमान के अङ्ग है? यह निराकरण कैसे किया?

उत्तर - क्योंकि हेतु और साध्यके बोलनेसे साध्यधर्म वाले धर्मीमें संशय नहीं रहता।

अनुमानके प्रयोग में केवल हेतु की आवश्यकता और उदा. आदि की अनावश्यकता :-

"समर्थनं वा वरं हेतुरूपमनुमानावयवोवास्तु साध्ये तदुपयोगात्"।।41।।

सूत्रान्वय :- समर्थनं = समर्थन ही, **वा** = ही, **वरं** = श्रेष्ठ(वास्तविक), **हेतुरूपम्** = हेतु का स्वरूप है, **अनुमानावयवः** = अनुमानका अंङ्ग, **वा** = अन्यका संकेत, **अस्तु** = हो, **साध्ये** = साध्येकी सिद्धिमें, **उपयोगात्** = उपयोग होनेसे,

सूत्रार्थ - समर्थन ही हेतुका वास्तविक स्वरूप है, अतः वही अनुमानका अवयव माना जाए, क्योंकि साध्यकी सिद्धिमें उसी का उपयोग होता है।

संस्कृतार्थ - किञ्च दृष्टान्तादिकमभिधायापि समर्थनमवश्यं करणीयमसमर्थितस्या हेतुत्वादिति। तथा च समर्थनमेव वास्तविक हेतु स्वरूपमनुमानावयवो वा भवतु, साध्यसिद्धौ तस्यैवोपयोगान्नोदाहरणादिकस्येति।।।।41।

संस्कृत टीकार्थ- कोई कहता है दृष्टान्त आदिकको कह करके भी समर्थन अवश्य ही करना चाहिए क्योंकि जिस हेतुका समर्थन न हुआ हो, वह हेतु ही नहीं हो सकता। इसलिए वह समर्थन ही हेतुका उत्तमरूप है और उसे ही अनुमानका अवयव मानना चाहिए। क्योंकि साध्यकी सिद्धिमें उसका ही उपयोग है उदा. आदि का नहीं कहना चाहिए।

प्रश्न 233- सूत्रमें दो स्थानों पर 'वा' शब्द का प्रयोग है उन्हें किन-किन अर्थो में ग्रहण करना है।

उत्तर - सूत्र पठित प्रथम 'वा' शब्दसे एवकार अर्थ लेना है, द्वितीय 'वा' शब्द अन्य पक्षकी सूचना करता है - शेष अर्थ सरल है।

कोई कहता है कि दृष्टान्तादिकके बिना मंदबुद्धि जनोंको ज्ञान कराना अशक्य है। अतः पक्ष और हेतुकेप्रयोग मात्रसे उन्हें साध्यका ज्ञान कैसे हो जायेगा? इसीका उत्तर इस सूत्रमें देते है :-

"बालव्युत्पत्यर्थं तत्त्रयोपगमे शास्त्रे एवासौ न वादेऽ-नुपयोगात्"।।42।।

सूत्रान्वय :-बाल = मंदबुद्धिवाले, **व्युत्पत्यर्थं** = ज्ञान करानेके लिए, **तत्** = उन, **त्रय** = तीन(उदा उपनय, निगमनकी),**उपगमें** = स्वीकारता,**शास्त्रे** = शास्त्रमें,**एव** = ही, **असौ** = उनकी, **न** = नही, **वादे** = वादमें,**अनुपयोगात्** = उपयोग न होनेसे।

सूत्रार्थ - मंदबुद्धि वाले बालकोकी व्युत्पत्तिके लिए उन उदाहरणादि तीन अवयवोंके मान लेनेपर भी शास्त्रमें ही उनकी स्वीकारता है, वादकाल में नहीं क्योंकि वाद (शास्त्रार्थ) में उनका उपयोग नहीं है।

संस्कृतार्थ - मंदमतीनां शिष्याणां सम्बोधनार्थमुदाहरणादि त्रयप्रयोगाभ्युपगमेऽपि तत्त्रयप्रयोगो वीतरागकथायामेव ज्ञातव्यो न तु बिजिगीषु कथायाम्। तत्र तस्यानुपयोगात्। न हि वादकाले शिष्या: व्युत्पाद्या: व्युत्पन्नानामेव तत्राधिकारात्।।42।।

संस्कृत टीकार्थ - मंदमती वाले शिष्योंको समझानेके लिए उदा. उपनय निगमन इन तीनोंका प्रयोग स्वीकारने पर भी उनका प्रयोगवीत रागकथामें ही जानना चाहिए परन्तु बिजिगीषु कथामें नही। क्योंकि बिजगीषुकथामें बालक अनुपयोगी होनेसे वादके समय शिष्योंको समझाया नहीं जाता। क्योंकि वादमें तो व्युत्पन्न पुरुषोंका ही अधिकार होता है।

प्रश्न 234-कथा कितने प्रकारकी होती है एवं उनका स्वरूप क्या है?

उत्तर - इस प्रश्नका समाधान प्रथम परिच्छेदके प्रथम सूत्रमें किया गया है।

बालव्युत्पत्तिके लिए उन तीनोंको स्वीकार किया गया है अत: शास्त्रमें स्वीकृत उन उदाहरणादिक तीनों अवयवों का स्वरूप दिखलाते हुए प्रथम दृष्टान्त के भेद दिखलाते है :-

"दृष्टान्तो द्वेधा, अन्वयव्यतिरेकभेदात्"।।43।।

सूत्रान्वय :- दृष्टान्त: = दृष्टान्त, **द्वेधा** = दो प्रकारका, **अन्वय** = अन्वय, **व्यतिरेक** = व्यतिरेकके, **भेदात्** = भेदसे।

सूत्रार्थ - दृष्टान्त दो प्रकारका है - अन्वय और व्यतिरेक।

संस्कृतार्थ - दृष्टौ अन्तौसाध्यसाधनलक्षणौ धर्मौ अन्वयमुखेन व्यतिरेकमुखेन

वा यत्र स: दृष्यन्त:। स हि द्विविध: अन्वय दृष्यन्तो व्यतिरेकदृष्यान्तश्चेति।।43।।

संस्कृत टीकार्थ - जहाँ पर साध्य-साधन लक्षण वाले दो धर्म अन्वय या व्यतिरेक रूपसे देखे जाये, वह दृष्टान्त है, इस प्रकारके अर्थका अनुसरण करनेवाली संज्ञा जानना चाहिए। वह दो प्रकारका है, 1. अन्वय दृष्टान्त और 2. व्यतिरेक दृष्टान्त।

प्रश्न 235- दृष्यान्त किसे कहते है?

उत्तर - जहाँ पर साध्य और साधन लक्षण वाले दोनों धर्म अन्वयमुखसे अथवा व्यतिरेक मुखसे देखे जावें। वह दृष्टान्त कहलाता है।

अन्वय दृष्टान्त का लक्षण दिखलाते है :-

"साध्य व्याप्तं साधनं यत्र प्रदर्श्यते सोऽन्वय दृष्यन्त:"।।44।।

सूत्रान्वय :- **साध्य व्याप्तं** = साध्यसे व्याप्त, **साधनम्** = साधनको, **यत्र** = जहाँ, **प्रदर्श्यते** = दिखाया जाता है, **स:** = वह, **अन्वय दृष्यन्त:** = अन्वय दृष्टान्त,

सूत्रार्थ - साध्यके साथ जहाँ साधनकी व्याप्ति दिखाई जाती है, वह अन्वय दृष्टान्त है।

संस्कृतार्थ - साधन सद्भावे साध्यसद्भावो यत्र प्रदर्श्यते सोऽन्वय दृष्टान्त:।।44।।

संस्कृत टीकार्थ - साधनके सद्भाव में साध्यका सद्भाव जहाँ दिखाया जाता है वह अन्वय दृष्टान्त है।

विशेष - (जन्यजनकादि भावरूप) साध्य से व्याप्त अविनाभावसे निश्चित साधन व्याप्ति पूर्वक जहाँ दिखलाया जाता है वह भाव है। धूम और जलकी व्याप्ति नहीं है, क्योंकि वह जन्य जनक भाव नहीं है। परन्तु धूम और अग्निमें जन्य जनक भाव पाया जाता है जैसे सम्यक् दर्शन और सम्यक्ज्ञान। 4 अनंतचतुष्टय और अरहंत। इसमें 4 अनंत चतुष्टय साधन है और अरहंत है जहाँ-जहाँ अनंत चतुष्टय है वहाँ-वहाँ अरहंतपना निश्चित है।

व्यतिरेक दृष्टान्तका स्वरूप और लक्षण दिखलाते है।:-

"साध्याभावे साधनाभावो यत्र कथ्यते स व्यतिरेक दृष्यान्त:"।।45।।

सूत्रान्वय :- साध्याभावे = साध्यके अभावमें, **साधनाभाव:** = साधनका अभाव, **यत्र** = जहाँ, **कथ्यते** = कहा जाता है, **स:** = वह, **व्यतिरेक** = व्यतिरेक दृष्टान्त है।

सूत्रार्थ - जहाँ पर साध्यके अभावमें साधनका अभाव कहा जावे वह व्यतिरेक दृष्टान्त है।

संस्कृत टीकार्थ- साध्याभावे साधनाभावो यत्र प्रदर्श्यते स व्यतिरेक-दृष्टान्त: प्रोच्यते।।45।।

प्रश्न 236-व्यतिरेक किसे कहते है?

उत्तर - साध्यके अभावमें साधनका अभाव व्यतिरेक है।

प्रश्न 237-व्यतिरेक दृष्टान्त किसे कहते है?

उत्तर - व्यतिरेक प्रधान दृष्टान्तको व्यतिरेक दृष्टान्त कहते है।

नोट :- प्रस्तुत सूत्रमें साध्यके अभावमें साधनका अभावही हो इस प्रकार एवकार यहाँ जानना चाहिए।

उपनयका लक्षण एवं स्वरूप दिखलाते है :-

"हेतोरूपसंहार उपनय:"।।46।।

सूत्रान्वय :- हेतो: = हेतोके, **उपसंहार** = उपसहार, **उपनय:** = उपनय।

सूत्रार्थ - उपनीयते पुनरुच्यते इत्युपनय: पक्षे हेतोरूपसहार उपनय इत्यर्थ:।।46।।

संस्कृतार्थ - उपनीयते पुनरूच्यते इति उपनय: "यह व्युत्पत्ति है पक्षके हेतुके दुहरानेको उपनय कहते है।

विशेष - यहाँ पर पक्ष इस पदका अध्याहार करना चाहिए। तब यह अर्थ होता है कि हेतुका पक्ष धर्मरूपसे उपसंहार करना अर्थात् उसी प्रकार यह धूमवाला है इस प्रकारसे हेतुका दुहराना उपनय है।

निगमनका स्वरूप या लक्षण कहते है:-

"प्रतिज्ञायास्तु निगमनम्"।।47।।

सूत्रान्वय :- प्रतिज्ञाया = प्रतिज्ञाके, **तु** = और, **निगमन** = निगमन।

सूत्रार्थ - प्रतिज्ञाके दोहराने को निगमन कहते है।

संस्कृतार्थ - पक्षस्य साध्यधर्मविशिष्टत्वेन प्रदर्शनं निगमनं प्रोच्यते।।47।।

संस्कृत टीकार्थ - पक्षके साध्यधर्म विशिष्टताके साथ दिखलाना निगमन कहा जाता है।

विशेष - सूत्रमें उपसंहार पदकी अनुवृत्तिकी गई है प्रतिज्ञाका उपसंहार अर्थात् साध्यधर्म विशिष्टताके साथ कि धूमवाला होनेसे यह अग्निवाला है, इस प्रकार प्रतिज्ञा दुहराना निगमन है।

प्रश्न 238- शास्त्रमें दृष्टान्त आदि कहना ही चाहिए, ऐसा नियम नही माना गया है, फिर आचार्यो ने यहाँ पर उन तीनों का कथन क्यों किया है?

उत्तर - ऐसी शंका नहीं करना चाहिए, क्योंकि स्वयं नही स्वीकारके भी (शिष्य) प्रतिपाद्यके अनुरोधसे जिनमतका अनुसरण करने वाले आचार्योंने प्रयोग की परिपाटीको स्वीकार किया है। जिन्होने उन उदा. आदिका स्वरूप नहीं जाना है। वे लोक प्रयोग परिपाटी को कर नही सकते है। अतः उनकी जानकारीके लिए उनका स्वरूप भी शास्त्रमें कहना ही चाहिए, इसलिए यहाँ पर उदाहरणादिक का स्वरूप आचार्य ने कहा है

इस प्रकार मतभेदकी अपेक्षा दो, तीन और पाँच अवयव रूप जो अनुमान है वह दो प्रकार का ही है यह दिखलाते हुए आचार्य उत्तरसूत्र कहते है:-

"तदनुमानं द्वेधां"।।48।।

सूत्रान्वय :- तत् = वह, **अनुमानं** = अनुमान, **द्वेधा** = दो प्रकारका।

सूत्रार्थ - वह अनुमान दो प्रकार का है।

संस्कृतार्थ - वह अनुमान दो प्रकार का है।

संस्कृत टीकार्थ - अनुमानं द्विविधम्।।48।।

अनुमान दो प्रकारका है।

अब आचार्य भगवन् उन दोनों भेदों को बतलाते है :-

"स्वार्थपरार्थ भेदात्"।।49।।

सूत्रान्वय :- स्वार्थ = स्वार्थ, **परार्थ** = परार्थ, **भेदात्** = भेदसे।

सूत्रार्थ - स्वार्थ और परार्थके भेद से अनुमान के 2 भेद है।

संस्कृत टीकार्थ- स्वार्थनुमान और परार्थनुमान इस प्रकार अनुमानके 2 भेद है।

प्रश्न 239- सूत्रका अभिप्राय क्या है?

उत्तर - स्व और परके विवादका निराकरण करना ही दोनों प्रकारके अनुमानोंका फल है अर्थात् स्वविषयक विवादका निराकरण करना स्वार्थनुमान है और पर विषयक विवादका निराकरण करना परार्थानुमानका फल है।

अब स्वार्थानुमानका स्वरूप बतलाते हुए आचार्य उत्तरसूत्र कहते हैं:-

"स्वार्थमुक्तलक्षणम्"।।50।।

सूत्रान्वय :- स्वार्थम् = स्वार्थका, **उक्त** = कहा गया, **लक्षणम्** = लक्षण (स्वरूप)।

सूत्रार्थ - स्वार्थानुमानका लक्षण कहा जा चुका है।

संस्कृतार्थ - परोपदेशमनपेक्ष्य स्वयमेव निश्चितात् धूमादिसाधनात् पर्वतादौ धर्मिणि वह्न्यादेः साध्यस्य यद् विज्ञानं जायते तत्स्वार्थानुमान निगद्यते।

संस्कृत टीकार्थ- परके उपदेश की अपेक्षासे रहित स्वयं ही निश्चित होनेसे धूमादि साधन से पर्वत आदि धर्मिमें अग्नि आदि साध्यका जो विशेष ज्ञान होता है, वह स्वार्थानुमान कहा जाता है।

विशेष - दूसरेके उपदेशके बिना स्वतः ही साधनसे साध्यका जो अपने लिए ज्ञान होता है, उसे स्वार्थानुमान कहते हैं।

अब अनुमानके दूसरे भेदका स्वरूप बतलानेके लिए उत्तरसूत्र कहते है :-

"परार्थं तु तदर्थ परामर्शि वचनाज्जातम्"।।51।।

सूत्रान्वय :- परार्थ = पराथानुमान, **तु** = परन्तु, **तत्** = उस स्वार्थानुमानके विषयभूत, **अर्थ** = पदार्थका, **परामर्श** = परामर्श करने वाले, **वचनात्** = वचनोंसे, **जातम्** = उत्पन्न होता है।

सूत्रार्थ - उस स्वार्थानुमानके विषयभूत पदार्थका परामर्श करने वाले वचनोंसे जो उत्पन्न होता है, उसे परार्थानुमान कहते हैं।

संस्कृतार्थ - स्वार्थानुमानगोचरार्थप्रतिपादक वचनेभ्यः समुत्पन्नं

यत्साधनज्ञानं तन्निमित्तिक साध्यविज्ञानं परार्थानुमानं निगद्यते।।51।।

संस्कृत टीकार्थ- स्वार्थानुमान गोचर पदार्थ साध्य और साधनको कहने वाले वचनों से उत्पन्न हुआ जो साधन ज्ञान उसके निमित्त जो साध्य का ज्ञान होता है वह परार्थानुमान कहा जाता है।

विशेष - उस स्वार्थानुामनका अर्थ जो साध्य-साधन लक्षण वाला पदार्थ उसे तदर्थपरामर्शि कहते है। ऐसे तदर्थ परामर्शि वचनोंसे जो विज्ञान उत्पन्न होता है वह परार्थानुमान है ऐसा जानना चाहिए।

प्रश्न 240 - परार्थानुमान किसे कहते है?

उत्तर - दूसरेके वचनोंके द्वारा साधनसे जो साध्यका ज्ञान होता है वह परार्थानुमान है और दूसरोंके वचनोंके बिना जो स्वयं साधनसे जो साध्यका ज्ञान होता है, वह स्वार्थानुमान है यही दोनोंमें भेद है।

परार्थानुमानके प्रतिपादक वचनोंकी उपचारसे परार्थानुमान संज्ञा है - यह बतलानेके लिए उत्तरसूत्र कहते हैं :-

"तद्वचनमपि तद्धेतुत्वात्"।।52।।

सूत्रान्वय :- **तत्** = परार्थानुमानके प्रतिपादक, **वचनम्** = वचनोंको, **अपि** = भी, **हेतुत्वात्** = कारण होनेसे।

सूत्रार्थ - परार्थानुमानके कारण होनेसे परार्थानुमानके प्रतिपादक वचनोंको भी परार्थानुमान कहते हैं।

संस्कृतार्थ - स्वार्थानुमानस्य कार्यत्वात् परार्थानुमानस्य कारणत्वाच्च परार्थानुमानप्रतिपादकवचनमपि उपचारतः परार्थानुमानं प्रोच्यते।।52।।

संस्कृत टीकार्थ - स्वार्थानुमानका कार्य होनेसे परार्थानुमानका कारण होनेसे परार्थानुमानका प्रतिपादक वचन भी उपचारसे परार्थानुमान कहा जाता है।

प्रश्न 241-"तद्वचन" किसे कहते हैं?

उत्तर - साध्यसाधनका प्रतिपादन करने वाले पुरुषका ज्ञान लक्षणभूत अनुमान है कारण जिसका, उसको कहते हैं "तद्वचन"।

प्रश्न 242-तत् हेतुत्व किसे कहते हैं?

उत्तर - प्रतिपाद्य शिष्यादि पुरुषके ज्ञान लक्षणरूप अनुमानका जो कारण है उसे तत् हेतुत्व कहते हैं।

प्रश्न 243(अ)- उपचार की प्रवृत्ति कब होती है?

उत्तर - मुख्यका अभाव होने पर तथा प्रयोजन और निमित्तके होने पर उपचार की प्रवृत्ति होती है।

प्रश्न 243(ब)- यहाँ किसमें किसका उपचार किया गया है?

उत्तर - यहाँ अनुमानके कारण वचनोंमें ज्ञानरूप कार्यका उपचार किया गया है।

प्रश्न 244-सूत्र अर्थ का संबंध कैसा करना चाहिए?

उत्तर - परार्थानुमानका प्रतिपादक जो वक्ता पुरुष उसका स्वार्थानुमान है कारण जिसके ऐसा जो परार्थानुमान का वचन वह भी अनुमान है। ऐसा संबंध करना चाहिए। इस पक्षमें कारणका उपचार किया गया है, इतना अर्थसूत्र में शेष है।

प्रश्न 245-वचनको अनुमानपना कहने में प्रयोजन क्या है?

उत्तर - वह यह है कि प्रतिज्ञा हेतु आदिक अनुमानके अवयव है ऐसा शास्त्र में व्यवहार है। ज्ञानात्मक और निरंश अर्थात् अवयव रहित अनुमानमें प्रतिज्ञा हेतु आदिके व्यवहार की कल्पना करना अशक्य है।

वह अनुमान दो प्रकारका है इत्यादि रूपसे उसके प्रकाशको भी विस्तारसे कहकर अन्यथानुपपन्नत्व रूप लक्षणकी अपेक्षा साधन एक प्रकारका होने पर भी अति सक्षेपसे भेद करने पर वह दो प्रकार का है - यह दिखलाते है-

"स हेतुर्द्वैधोपलब्ध्यनुपलब्धि भेदात्"।।53।।

सूत्रान्वय :- **सः** = वह, **हेतुः** = हेतु, **द्वेधा** = दो प्रकार का, **उपलब्धि** = उपलब्धि, **अनुपलब्धि** = अनुपलब्धि, **भेदात्** = भेदसे।

सूत्रार्थ - अविनाभाव लक्षण वाला वह हेतु दो प्रकार का है, उपलब्धि और अनुपलब्धि के भेद है।

संस्कृतार्थ - हेतु द्विविधः उपलब्धिरूपोऽनुपलब्धिरूपश्च।।53।।

संस्कृत टीकार्थ - हेतुके दो प्रकार है उपलब्धिका और अनुपलब्धि रूप।

प्रश्न 246-उपलब्धि और अनुपलब्धिका अर्थ क्या है?

उत्तर - उपलब्धि नाम विद्यमानका है और अनुपलब्धि नाम अविद्यमानका है।

उपलब्धि विधि की साधिका ही है, अनुपलब्धि प्रतिषेधकी साधिका ही है, इस प्रकार दूसरे मतवालोंके नियमका निषेध करते हुए आचार्य कहते है कि उपलब्धि और अनुपलब्धि सामान्य रूपसे विधि और प्रतिषेधके साधक है:-

"उपलब्धिर्विधिप्रतिषेधयोरनुपलब्धिश्च"।।54।।

सूत्रान्वय :- **उपलब्धि:** = उपलब्धि, **विधिप्रतिषेधयो:** = विधिके प्रतिषेधके, **अनुपलब्धि:** = अनुपलब्धि।, **च** = और।

सूत्रार्थ - उपलब्धि रूप हेतु भी विधि और प्रतिषेध दोनोंका साधक है तथा अनुपलब्धिरूप हेतु भी दोनोंका साधक है।

संस्कृतार्थ -उपलब्धिरूपो हेतु द्विविध: अविरूद्धोपलब्धि: विरुद्धोपलब्धिश्चेति। अनुपलब्धिरूपो हेतुरपि द्विविध: अविरूद्धानुपलब्धि: विरुद्धानुपलब्धिश्चेति।।54।।

विशेष - इनमें पहला विधिसाधक है और दूसरा प्रतिषेधसाधक है। इसी प्रकार द्वितीय पक्ष में पहला निषेधसाधक है और दूसरा विधिसाधक है। इस प्रकार उपलब्धि और अनुपलब्धिरूप दोनों हेतु विधि और निषेध दोनों के साधक होते है।

इस समय उपलब्धिके भी संक्षेपसे विरुद्ध-अविरुद्ध भेदसे दो भेद बतलाते हुए अविरोद्धोपलब्धिके विधिको सिद्ध करनेमें विस्तारसे भेद कहते है :-

"अविरुद्धोपलब्धिर्विधौ षोढा-व्याप्यकार्यकारणपूर्वोत्तरसहचर भेदात्'।।55।।

सूत्रान्वय :- **अविरुद्धोपलब्धि:** = अविरुद्धोपलब्धि, **विधौ** = विधि (साधन दशामें), **षोढा** = छह, **व्याप्य:** = व्याप्य, **कार्य:** = कार्य, **कारण:** = कारण, **पूर्वचर** = पूर्वचर, **उत्तरचर** = उत्तरचर, **सहचर** = सहचर, **भेदात्** = भेदसे।

सूत्रार्थ - विधि साधनकी दशामें अविरुद्धोपलब्धि व्याप्य, कार्य, कारण, पूर्व, उत्तर और सहचरके भेद से छह प्रकारकी है।

संस्कृतार्थ - अविरुद्धोपलब्धिरूपो हेतु: विधौ साध्ये सति षट्प्रकारो

भवति। व्याप्यरूप: कार्यरूप: कारणरूप: पूर्वचररूप: उत्तरचररूप:, सहचररूपश्चेति।।55।।

संस्कृत टीकार्थ - अविरुद्धोपलब्धि रूप हेतु विधिके साध्य होने पर छह प्रकार की होती है। व्याप्यरूप, कार्यरूप, पूर्वचररूप, उत्तरचररूप और सहचररूप इस प्रकार से 6 भेद हैं।

विशेष - सूत्र पठित पूर्व, उत्तर और सहपदका द्वन्द्व समास करना है, पश्चात् पूर्व, उत्तर और सहपदके साथ चर शब्द का अनुकरण निर्देश करना इस प्रकार द्वन्द्वसमास से पीछे सुना गया चर शब्द प्रत्येकके साथ लगाना चाहिए। तदनुसार यह अर्थ होना है पूर्वचर, उत्तरचर और सहचर पश्चात् व्याप्य आदि पदोंके साथ द्वन्द्वसमास करना चाहिए।

कारणहेतुके विधि साधकपना -

"रसादेक सामग्र्यनुमानेन रूपानुमानमिच्छदिभरिष्टमेव किञ्चित्कारणं हेतुर्यत्र सामर्थ्याप्रतिबंध कारणान्तरावैकल्ये।।56।।

सूत्रान्वय :- **रसात्** = रससे, **एक** = एक, **सामग्री** = सामग्री, **अनुमानेन** = अनुमान द्वारा, **रूपानुमानम्** = रूपका अनुमान, **इच्छदिभ:** = स्वीकार करनेवाले, **इष्टम्** = इष्ट, **एव** = ही, **किञ्चित् कारणं** = कोई विशिष्ट कारण, **हेतु** = हेतु, **यत्र** = जिसमें, **सामर्थ्य** = सामर्थ्यकी, **अप्रतिबंध** = रूकावट नहीं है, **कारणान्तरा** = दूसरे कारणोंकी, **अवैकल्ये** = विकलता नहीं है।

सूत्रार्थ - रससे एक सामाग्रीके अनुमान द्वारा रूपका अनुमान स्वीकार करने वाले **बौद्धों** ने कोई विशिष्ट कारणरूप हेतु माना ही है, जिसमें सामर्थ्यकी रूकावट नहीं है और दूसरे कारणों की विकलता नहीं है।

संस्कृतार्थ - सौगत: प्राह- विधिसाधन द्विविधमेव स्वभावकार्यभेदात्। कारणस्य तु कार्याविनाभावाद् अलिङ्गत्वम्। नावश्यं कारणानि कार्यवन्ति भवन्तीति वचनादिति। तदप्यसङ्गतम् - आस्वाद्य-मानाद्वि रसात् तज्जनिका सामग्री अनुमीयते ततो रूपानुमानं जायते, प्राक्तनो रूपक्षण: सजातीयं रूपक्षणान्तरलक्षणं कार्यं कुर्वन्नेव विजातीय रसलक्षणं कार्य कुरूते इति रूपानुमानमिच्छदिभ: सौगतै: किञ्चित्कारण हेतुत्वेनाभ्युपगतमेव यस्मिन्कारणे सामर्थ्यप्रतिबंध: कारणान्तरविकल्पता च नास्ति तद्विशिष्ट कारणं कार्योत्पत्तिनियामकत्वादवश्यमेव कार्यानुमापकं भवतीति: भाव:।

संस्कृत टीकार्थ - बौद्ध कहते है विधि साधक हेतु दो प्रकारका ही है - स्वभावहेतु और कार्यहेतु। क्योंकि कारणका कार्यके साथ अविनाभावका अभाव होनेसे हेतु नहीं माना जा सकता। कारण कार्य वाले अवश्य हों ऐसा नहीं है इस प्रकार वचन है।

जैन- उन बौद्धों का ऐसा कहना ठीक नहीं है। क्योंकि आस्वाद्यमान रससे उसकी उत्पादक सामग्री का अनुमान किया जाता है उससे रूपका अनुमान होता है पहले का रूपक्षण सजातीय अन्यरूप क्षण रूपकार्य को उत्पन्न करता हुआही विजातीय इस लक्षण कार्यको करता है, इस प्रकारसे रूपके अनुमानकी इच्छा करने वाले बौद्धोंको कोई कारण रूप हेतु इष्ट ही है, क्योंकि पूर्वकालके रूपक्षणका सजातीय अन्य रूपक्षण के साथ कोई व्यभिचार नहीं पाया जाता है। इसके द्वारा यह कहा गया जो जिस कारणमें सामर्थ्य की प्रतिबंध नहीं है और अन्यकारण अविकलता (पूर्णता) है। विशिष्ट कारण कार्योत्पत्ति का नियामक होनेसे अवश्य ही कार्यका अनुमानक होता है यह भाव है।

प्रश्न 247-बौद्ध लोग किस हेतुको नहीं मानते?

उत्तर - बौद्ध लोग कारणरूप हेतु को नहीं मानते।

प्रश्न 248-बौद्ध लोग कारणरूप हेतु को इष्ट कैसे मानते है?

उत्तर - वह इस प्रकार किसी व्यक्ति ने गहन अंधकारमें आमको चखा। वह उसके मीठे रसके स्वादसे विचारता है कि इसका रूप पीला होना चाहिए। यहाँ वर्तमान रस सहकारी कारण से उत्पन्न हुआ है। अत: पूर्वरूप क्षण सजातीय उत्तररूप क्षणरूप कार्यकी उत्पत्ति में सहायक होता है। अत: कारणभूत पूर्वरूपक्षण से कार्य स्वरूव

उत्तररूप क्षणका अनुमान किया जाता है। इस प्रकार बौद्ध रससे एक सामाग्री के द्वारा रूपका अनुमान करते है इससे सिद्ध होता है कि कारणरूप हेतु माना ही है।

अब पूर्वचर और उत्तरचर हेतु भी भिन्न ही है, क्योंकि उनका स्वभाव हेतु कार्य और कारण हेतुओं से भी अन्तर्भाव नहीं होता है। यह बात आचार्य दिखलाते है -

"न च पूर्वोत्तरचारिणोस्तादर्म्यं तदुत्पत्तिर्वा कालं व्यवधाने तदनुपलब्धे:'।।57।।

सूत्रान्वय :- **न** = नहीं, **च** = और, **पूर्वोत्तर चारिणो** = पूर्वचर और उत्तरचरका, **तादात्म्यं** = तादात्म्य संबध, **वा** = और, **तदुत्पत्तिः** = तदुत्पत्ति, **कालव्यवधाने** = कालका व्यवधान होनेपर, **तत्** = उन दोनों संबंधों की, **अनुपलब्धिः** = उपलब्धि नहीं है।

सूत्रार्थ - पूर्वचर और उत्तरचर हेतुओंका साध्यके साथ तादात्म्य संबंध नहीं है, तदुत्पत्ति संबंध भी नहीं है, क्योंकि कालका व्यवधान होने पर इन दोनों सबंधों की उपलब्धि नहीं होती।

संस्कृतार्थ - साध्यसाधनयोस्तादात्म्यसंबधे हेतो: स्वभावहेतावन्तर्भावो भवेत्। तदुत्पत्तिसम्बन्धे च कार्यहेतौ कारणहेतौ वान्तर्भावो विभाव्यते। न च पूर्वोत्तर चारिणो तदुभयसम्बन्धौ स्त: काल व्यवधाने सति तदुभय सबधानुपलब्धे:। पूर्वोत्तर कालव्यवधानं सुनिश्चितम्। अतश्च तयोर्न स्वभावादिहेतुष्वन्तर्भाव:। इति तौ तेभ्य: पृथगेव हेतू प्रत्येतव्यौ।।57।।

संस्कृत टीकार्थ - साध्य साधनमें तादात्म्य संबंधके होने पर स्वभाव हेतुमें अन्तर्भाव होता है और तदुत्पत्ति संबंधके होने पर कार्य या कारण हेतुमें अन्तर्भाव होता है। पूर्वचर और उत्तरचर हेतुमें तादात्म्य और तदुत्पत्ति संबध नही है, क्योंकि कालका व्यवधान होने पर इन दोनों संबंधों की उपलब्धि नहीं होती है। पूर्वचर और उत्तरचरमें अन्तर्मुहूर्त प्रमाण कालका व्यवधान सुनिश्चित है। और इसलिए इन दोनों हेतुओं का स्वभावादि तीनोंमें से किसी भी हेतु में अन्तर्भाव नहीं होता। इस प्रकार पूर्वचर और उत्तरचर पृथक् ही जानना चाहिए।।57।।

प्रश्न 248-तादात्म्य संबध किसे कहते हैं?

उत्तर - ज्ञान और आत्मा जैसे दो अभिन्न पदार्थोंमें जो संबंध होता है उसे तादात्म्य संबध कहते है।

प्रश्न 249-तदुत्पत्ति सबंध किसे कहते हैं?

उत्तर - एक पदार्थ से दूसरे पदार्थकी उत्पत्ति को तदुत्पत्ति संबध कहते है।

विशेष - एक मुहूर्त के बाद रोहिणी नक्षत्रका उदय होगा; क्योंकि

अभी कृतिका का उदय हो रहा है। यह पूर्वचर हेतुका उदा. है। एक मुहूर्तके पूर्वही भरणि का उदय हो चुका है, क्योंकि अभी कृतिकाका उदय हो रहा है, यह उत्तरचर हेतु का उदा. है। इस उदा. से स्पष्ट है कि एक नक्षत्रके बाद दूसरे नक्षत्र के उदयमें अन्तमुहूर्त का व्यवधान है। अतः इनमें न तो तादात्म्य संबंध संभव है और न तदुत्पत्ति संबंध जिससे स्वभाव हेतुमें अन्तर्भाव किया जा सके ? अतः पूर्वचर और उत्तरचर ये दोनों हेतु भिन्न ही है यह सिद्ध हुआ।

यहाँ बौद्धों का कहना है कि काल के व्यवधान में भी कार्यकारणभाव देखा ही जाता है जैसेकि जाग्रद्दशा और प्रबुद्धदशा भावी प्रबोध (ज्ञान) में तथा मरण और अनिष्टमें कार्यकारण भाव देखा जाता है। आचार्य उनके इस कथनका परिहार करनेके लिए उत्तरसूत्र कहते है :-

"भाव्यतीतयोर्मरण जाग्रद्बोधयोरपि नारिष्टोद्बोधौ प्रति-हेतुत्वम्"।।58।।

सूत्रान्वय :- भाव्यतीतयो = भावी और अतीतके, **मरण** = मरण, **जाग्रद** = सोनेसे पूर्वकी अवस्था, **बोधयो:** = दोनों ज्ञानोंका, **अपि** = भी, **न** = नहीं, **अरिष्ट** = अपशकुन, **उद्बोधौ** = दोनो का ज्ञान, **प्रति** = और **हेतुत्वम्** = हेतुपना।

सूत्रार्थ - भावी मरण और अतीतके जाग्रद बोधके भी अपशकुन और जाग्रद अवस्थाके बोध (उद्बोध) के प्रति कारणपना नहीं है।

संस्कृतार्थ - ननु कालव्यवधानेऽपि कार्यकारणभावो दृश्यते एव। यथा जाग्रत्प्र बुद्ध दशाभाविप्रबोधयो र्मरणारिष्टयो र्वा कार्यकारणभाव इति चेन्न भविष्यत्कालीनमरणास्यापशकुनं प्रति, भूतकालीनजाग्रद्बोधस्य प्रबुद्धदशाभाविबोधं प्रति कारणत्वाभावात्।।58।।

संस्कृत टीकार्थ - बौद्धों का कथन है कि कालके व्यवधानमें भी कार्यकारण भाव देखा ही जाता है, जैसे कि जाग्रत दशा और प्रबुद्धदशाभावी प्रबोध (ज्ञान) में तथा मरण तथा अपशकुनमें कार्यकारण भाव देखा जाता है। यदि ऐसा कहते है तो यह ठीक नहीं है, आगामी कालमें होने वाले मरण को अपशकुनादि का कारण तथा सोनेसे पूर्व समयके ज्ञानको प्रातः कालके ज्ञानका कारण नहीं होने से।

विशेष - बौद्धोंका कहना है कि रात्रिमें सोते समयका ज्ञान प्रात:कालके ज्ञानमें कारण होता है और आगामी कालमें होने वाला होने वाला मरण इस समयमें होने वाले अरिष्टों (अपशकुनों) का कारण है, अत: कालके व्यवधानमें भी कार्यकारण होता है। अब जैनाचार्य कहते है कि दोनों में कार्य कारणभाव बतलाना ठीक नहीं है; क्योंकि कार्यकारणभाव तभी संभव है जबकि कारणके सद्भावमें कार्य उत्पन्न हो। जब सोनेसे पूर्व समयका ज्ञान नष्ट ही हो गया है, तब वह प्रात:कालके प्रबोधका कारण कैसे हो सकता है। इसी प्रकार आगामी कालमें होने वाला मरण जब अभी हुआ ही नहीं है, तब वह इस समय होने वाले अपशकुनादि का भी कारण कैसे हो सकता है, क्योंकि आपके द्वारा दिये गये दोनों उदाहरणोंमें कालका अंतराल बीचमें पाया जाता है और जहाँ कालका अतराल पाया जाता है वहाँ कार्यकारण भाव हो नहीं सकता है।

कार्यकारणभाव माननेके खडनमें हेतु :-

''तद्व्यापाराश्रितं हि तद्भावभावित्वम्''।।59।।

सूत्रान्वय :- तत् = उस कारणके, **व्यापार** = व्यापारके, **आश्रितं** = आश्रित, **हि** = ही (यस्मात), **तद्भावित्वम्** = कार्यका व्यापारपना।

सूत्रार्थ - कारणके व्यापारके आश्रित ही कार्यका व्यापार हुआ करता है।

संस्कृतार्थ - यस्मात्कारणात् कार्यकारणभाव: कारण व्यापारिश्रितो विद्यते, ततो मरण जाग्रद बोधयोरपि नारिष्टबोधौ प्रति हेतुत्वम् अतिव्यवहित पदार्थानां कारण व्यापारसापेक्षाभावात्।

संस्कृत टीकार्थ - जिस कारणके होने पर कार्यका होना। कार्यकारणके व्यापारके आश्रित है इसलिए अतीत जाग्रद बोध और भावी उद्बोध तथा भावी मरण और वर्तमान अरिष्ट में कार्यकारण भाव नहीं है।क्योंकि अतिव्यवहित पदार्थोमें कारणके व्यापार का आश्रितपना नहीं होता है।

प्रश्न 250-सूत्रमें 'हि' शब्द किस अर्थमें है?
उत्तर - यहाँ हि शब्द यस्मात्के अर्थ में है।
प्रश्न 251-तद्भाव भावित्व किसे कहते है?
उत्तर - कारणके होने पर कार्यका होना तद्भावभावित्व है।

सहचर हेतुका भी स्वभाव कार्य और कारण हेतुओंमें अन्तर्भाव नहीं होता है। यह प्रदर्शित करते है :-

"सहचारिणोरपि परस्परपरिहारेणावस्थानात्सहोत्पादाच्च"।।60।।

सूत्रान्वय :- सहचारिण: = सहचारी पदार्थके, **अपि =** भी, **परस्पर =** परस्पर, **परिहारेण =** परिहारसे, **अवस्थानात =** अवस्थान होनेसे, **सहोत्पादात् =** एकसाथ उत्पन्न होनेसे, **च =** और।

सूत्रार्थ - सहचारी पदार्थ परस्परके परिहारसे रहते है, अत: सहचर हेतुका स्वभाव हेतुमें अन्तर्भाव नहीं हो सकता। और वे एक साथ उत्पन्न होते है अत: उसका कार्य हेतु और कारण हेतुमें भी अन्तर्भाव नहीं हो सकता है।।60।।

संस्कृतार्थ - सहचारिणोरपि साध्यसाधनयो: परस्परपरिहारेणावस्थानात् सहचराख्य हेतोर्न स्वभावहेतावन्तर्भाव:। सहोत्पादाच्च न कार्यहेतो: कारणहेतौ वान्तर्भाव: तस्मात्सौगतै: सहचराख्योऽपि हेतु: स्वतंत्र एवाभ्युपगन्तव्य:।।60।।

संस्कृत टीकार्थ - सहचारी पदार्थके भी साध्य-साधनका परस्पर परिहारसे अवस्थाना होनेसे सहचर नामक हेतुका स्वभाव हेतुमें अन्तर्भाव नहीं किया जा सकता। तथा सहचारी पदार्थ एक साथ उत्पन्न होनेसे कार्य हेतु अथवा कारण हेतुमें भी अन्तर्भाव नहीं किया जा सकता। इसलिए बौद्धोंके द्वारा सहचर नामक हेतुको भी स्वतंत्र ही स्वीकार करना चाहिए।

विशेष - जैसे गायके समान समयवर्ती अर्थात् एक कालमें होने वाले सत्य (वाम) और इतर (दक्षिण) विषाण (सींग) में कार्य-कारण भाव नहीं माना जाता इसी प्रकार फलादिकमें एक साथ उत्पन्न होने वाले रूप और रसमें भी कार्यकारण भाव नहीं माना जा सकता। अत: सहचर हेतुको स्वतंत्र ही स्वीकार करना चाहिए।

अब क्रम प्राप्त व्याप्य हेतुका उदा. देते हुए अन्वय व्यतिरेक पूर्वक शिष्यके अभिप्राय के वश प्रतिपादित प्रतिज्ञादि पाँच अवयवों को प्रदर्शित करते है:-

"परिणामी शब्दः कृतकत्वात्, य एवं, स एवं दृष्टो, यथा घटः कृतकश्चायं तस्मात्परिणामीति यस्तु न परिणामी स न कृतको दृष्टोः यथा वन्ध्यास्तनन्धयः कृतकश्चायं, तस्मात्परिणामी"।।61।।

सूत्रान्वय :- **परिणामी** = परिणमनशील, **शब्दः** = शब्द, **कृतकत्वात्** = किया जाने वाला होनेसे, **यः** = जो, **एवं** = इसप्रकार, **सः** = वह, **दृष्टः** = देखा जाता है, **यथा** = जैसे, **घटः** = घडा, **कृतकः** = किया जाने वाला, **च** = और, **अयम्** = यह, **तस्मात्** = इसलिए, **परिणामी** = परिणमन वाला, **यः** = जो, **तु** = परन्तु, **न** = नहीं, **कृतकः** = किया जाने वाला, **दृष्टः** = देखा गया, **यथा** = जैसे, **बन्ध्या** = बन्ध्याका, **स्तन्घयः** = पुत्र।

सूत्रार्थ - शब्द परिणामी है क्योंकि वह कृतक होता है। जो इस प्रकार अर्थात् कृतक होता है वह इस प्रकार अर्थात् परिणामी देखा जाता है, जैसे-घड़ा। शब्द कृतक है इसलिए परिणामी है जो परिणामी नहीं होता, वह कृतक भी नहीं देखा जाता है जैसे कि बन्ध्याका पुत्र। कृतक यह शब्द है, अत: वह परिणामी है।

विशेष - प्रतिज्ञा शब्द परिणामी, हेतु - कृतक है अन्वय दृष्टान्त - घडा, उपनय - यह कृतक है, निगमन - इसलिए परिणामी, व्यतिरेक दृष्टान्त - बंध्याका पुत्र।

संस्कृतार्थ - परिणामी शब्दः इति प्रतिज्ञा। कृतकत्वादिति हेतुः। यथा घटः इत्यन्वयदृष्टान्तः। यथा वन्ध्यास्तन्धयः इति व्यतिरेक दृष्टान्तः। कृतकश्चायमित्युपनयः। तस्मात्परिणामीति निगमनम्। एवमत्र पूर्व बालव्युत्पत्त्यर्थम् अनुमानस्य यानि पञ्चाङ्गानि अंगीकृतानि तान्युपदर्शितानि। अत्र कृतकत्वादिति हेतुः शब्दस्य परिणामित्वं साधयति, परिणामित्वेन व्याप्तं च वर्तते, अतोऽविरुद्धव्याप्योपलब्धिनामत्वं लभते।

संस्कृत टीकार्थ - शब्द परिणामी है यह प्रतिज्ञा है। किया जाने वाला होनेसे यह हेतु है। जैसे घड़ा यह अन्वय दृष्टान्त है। जैसे - बंध्याका पुत्र यह व्यतिरेक दृष्टान्त है। यह कृतक है, यह उपनय है। इसलिए परिणामी है यह निगमन है। इस प्रकार इसमें पहले बालको को ज्ञानार्थ अनुमानके जो 5 अंगों को स्वीकृत किया गया था। उनको दिखाया गया है। इसमें किया जाने वाला होनेसे यह हेतु परिणामीपने

को सिद्ध करता है और परिणामीपने के साथ व्याप्त है, अत: परिणामित्व साध्यके अविरूद्ध व्याप्य कृतकृत्वकी उपलब्धि है।

प्रश्न 252-कृतक किसे कहते हैं?

उत्तर - अपनी उत्पत्तिमें अपेक्षित व्यापारवाला पदार्थ कृतक कहा जाता है और यह कृतकपना न कूटस्थ नित्यपक्ष में बनता है और न क्षणिक पक्ष में किंतु परिणामी होने पर ही कृतकपना संभव है।

प्रश्न 253-व्याप्य एवं व्यापक किसे कहते है?

उत्तर - जो अल्प देशमें रहे वह व्याप्य और जो बहुत देशमें रहे उसे व्यापक कहते हैं।

प्रश्न 254-व्याप्य और व्यापक का उदा.?

उत्तर - कृतकत्व केवल पुद्गल द्रव्यमें रहनेसे व्याप्य है और परिणामित्व आकाशादि सभी द्रव्यों में पाये जाने से व्यापक है।

प्रश्न 255-परिणामी किसे कहते हैं?

उत्तर - जो प्रतिसमय परिणमन शील होकर भी अर्थात् पूर्व आकारका परित्यागकर और उत्तर आकारको धारण करते हुए भी दोनों अवस्थाओंमें अपने स्वत्वको कायम रखता है, उसे परिणामी कहते हैं।

अब आचार्य अविरुद्ध कार्योपलब्धिरूप हेतुको कहते हैं :-

"अस्त्यत्र देहिनि बुद्धि र्व्याहारादे:"।।62।।

सूत्रान्वय :- अस्ति = है, **अत्र** = इसमें, **देहिनि** = प्राणीमें, **बुद्धि:** = बुद्धिके कार्य, **व्याहारदे:** = वचनादि।

सूत्रार्थ - इस शरीरधारी प्राणीमें बुद्धि है, क्योंकि बुद्धिके कार्य वचनादिक पाये जाते हैं।

संस्कृतार्थ - अस्त्यत्र देहिनि बुद्धि: व्याहारादेरित्यत्र बुद्धयविरुद्धकार्यस्य वचनादेरुपलब्धि: दृश्यते, अतोऽयम् अविरुद्ध कार्योपलब्धि हेतु: कथ्यते।

संस्कृत टीकार्थ - इस प्राणीमें बुद्धि है, क्योंकि बुद्धिके कार्यवचनादि पाये जाते हैं। यहाँ बुद्धिके अविरुद्ध कार्य वचनादिक की उपलब्धि है। इसलिए यह अविरुद्ध कार्योपलब्धि हेतु है।

विशेष - साध्य - बुद्धि है, हेतु - वचनादि,
अतः यहाँ पर बुद्धि साध्य है और उसका अविरोधी कार्य वचनादिक हेतु है वह अपने साध्यकी सिद्धि करता है यह अविरुद्ध कार्योपलब्धि का उदा. है।
अब अविरुद्ध कारणोपलब्धि रूप हेतु को कहते है:-

"अस्त्यत्रच्छाया छत्रात्"।।63।।

सूत्रान्वय :- **अस्ति** = है, **अत्र** = इसमें, **छाया** = छाया, **छत्रात्** = छत्र होनेसे।

सूत्रार्थ - यहाँ पर छाया है क्योंकि छत्र पाया जाता है।

संस्कृतार्थ - 'अस्त्यत्र छाया छत्रात्' अत्र छत्रनामककारणहेतुः छायानामकसाध्य साध्नोति। अर्थादत्रच्छायायाः अविरुद्धकारणस्य छत्रस्योपलब्धि विद्यते। अतोऽयं हेतुः अविरुद्धकारणोपलब्धिहेतुः कथ्यते।।63।।

संस्कृत टीकार्थ - यहाँ पर छाया है, छत्र होनेसे इसमें छत्र नामक कारण हेतु छाया नामक साध्यको सिद्ध करता है। अर्थात् यहाँ छायाके अविरुद्धकारण छत्रकी उपस्थिति है, इसलिए यह हेतु अविरुद्ध कारणोलब्धि हेतु कहा जाता है।
अब अविरुद्धपूर्वचरोप लब्धिरूप हेतु को कहते है :-

"उदेष्यति शकटं कृत्तिकोदयात्"।।64।।

सूत्रान्वय :- **उदेष्यति** = उदय होगा, **शकटं** = रोहिणी का, **कृतिका** = कृतिका नक्षत्रका, **उदयात्** = उदय होनेसे।
सूत्रार्थ - (एक मुहूर्तके बाद) शकट (रोहिणी नक्षत्र) का उदय होगा, क्योंकि कृतिका का उदय हुआ है।
नोट :- यहाँ मुहूर्तान्त पदका अध्याहार करना चाहिए।

संस्कृतार्थ - उदेष्यति शकटं कृतिकोदयाद् अत्र कृतिकोदयरूपं पूर्वचरहेतुः शकटोदयभावितारूपसाध्यं साध्नोति। अर्थादित्र शकटोदय भाविताया: अविरुद्ध- पूर्वचरस्य कृतिकोदयस्योपलब्धि विद्यते। अतोऽयं हेतुः अविरुद्धपूर्वचरोलब्धि हेतुः निगद्यते।।64।।

संस्कृत टीकार्थ - रोहिणी नक्षत्रका उदय होगा क्योंकि कृतिका का उदय हो रहा है इसमें कृतिकाका उदयरूप पूर्वचर हेतु उदय होनेवाले

शकट रूप साध्य को साधता है अर्थात् यहाँ रोहिणीके उदय भाविता रूपसाध्यको कृतिका उदयरूप पूर्वचर हेतु साध रहा है इसलिए यह हेतु अविरुद्ध पूर्व चरोपलब्धि हेतु: कहा जाता है।

विशेष - प्रतिदिन क्रमसे एक-एक मुहूर्तके पश्चात् अश्विनी भरणी कृत्तिका रोहिणी, मृगशिरा, आर्द्रा, पुनर्वसु, पुष्य आदि नक्षत्रोंका उदय होता है। जब जिसका उदय विवक्षित हो, तब उसके पूर्ववर्ती नक्षत्रको पूर्वचर और उत्तरवर्ती नक्षत्रको उत्तरवर्ती जानना चाहिए।

प्रसंगवश - रोहिणीका उदय साध्य है। वह उसके पूर्वचर कृतिकाके उदयरूप हेतुसे सिद्ध किया जा रहा है, अत: यह अविरुद्ध पूर्व चरोपलब्धि हेतुका उदाहरण है।

अब अविरुद्ध उत्तरचरोपलब्धि हेतुको कहते है:-

"उद्गाद् भरणि: प्राक्तत एव"।।65।।

सूत्रान्वय :- उद्गाद् = उदय होना, **भरणि** = भरणीका, **प्राक्तत:** = एक मुहूर्तके पहले, **एव** = ही।

सूत्रार्थ - भरणीका उदय एक मुहूर्तके पूर्व ही हो चुका है, क्योंकि कृतिकाका उदय पाया जाता है।

नोट :- यहाँ पर "मुहूर्तात प्राक" पदका अध्याहार किया गया है एवं 'तत: एव' पद से "कृतिकोदयात्" एव अर्थ ग्रहण किया गया है।

संस्कृतार्थ - मुहूर्तात्प्राक् भरणेरुदयो व्यतीत: कृतिकोदयात्। अत्र कृतिको दयनामकोत्तरहेतु: भरण्युदयभूततारूपसाध्यं साधयति। अर्थादत्र भरण्युदयभूततायाः अविरुद्धोत्तरचरस्य कृतिकोदयस्योपलब्धि विद्यते अतोऽयं हेतु: अविरुद्धोत्तरचरो- पलब्धि हेतु: निगद्यते।

संस्कृत टीकार्थ - एक मुहूर्तके पहले ही भरणिका उदय हो चुका है क्योंकि कृतिका का उदय हो रहा है। यहाँ पर कृतिका उदयनामका उत्तरचर हेतु पहले उदय हो चुके भरणीके उदयको साधता है अर्थात् यहाँ भरणिके उदयकी भूतताके अविरुद्ध उत्तरचर कृत्तिकाके उदय की उपलब्धि है इसलिए यह हेतु अविरुद्धोत्तर चरोपलब्धि हेतु कहलाता है।

अविरुद्ध सहचरोपलब्धि (सहचर हेतु)का उदा. -

"अस्त्यत्र मातुलिंगे रूपं रसात्"।।66।।

सूत्रान्वय :- अस्ति = है, **अत्र** = इसमें, **मातुलिंगे** = नीबूंमें, **रूपं** = रूप, **रसात्** = रस होनेसे।

सूत्रार्थ - इस विजौरे नीबूंमें रूप है, क्योंकि रस पाया जाता है।

संस्कृतार्थ - अस्त्यत्र मातुलिंगे रूपं रसात्। अत्र रसनामक सहचर हेतुः रूपनामकसाध्यं साधयति। अर्थादत्र रूपविरुद्धसहचरस्य रसस्योपलब्धि विद्यते। अतोऽयं हेतुः *अविरुद्धसहचरोपलब्धि हेतु प्रोच्यते।।66।।*

संस्कृत टीकार्थ - इस विजौरे नीबूके रूप है, क्योंकि रस नामक सहचर हेतु रूप नामक साध्यको साधता है। अर्थात् यहाँ रूपका अविरुद्ध सहचर रस मौजूद है। इसलिए यह हेतु "अविरुद्धसहचरोपलब्धि हेतु" कहलाता है।

अब आचार्य विरुद्धोपलब्धिके भेद कहते हैं:-

"विरुद्धतदुपलब्धिः प्रतिषेधे तथा"।।67।।

सूत्रान्वय :- विरुद्धतदुपलब्धिः = विरुद्धतदुपलब्धिके भी, **प्रतिषेधे** = प्रतिषेधे करने वाली, **तथा** = उसी प्रकार (छह भेद है।)

सूत्रार्थ - प्रतिषेध सिद्ध करने वाली विरुद्धोपलब्धिके भी 6 भेद हैं।

संस्कृतार्थ - प्रतिषेधसाधिकाया विरुद्धोपलब्धेः षड् भेदा विद्यन्ते। विरुद्धव्याप्यो- पलब्धि विरुद्धाकार्योपलब्धिः, विरुद्धकारणोपलब्धि, विरुद्धपूर्वचरोपलब्धि, विरुद्धोत्तर चरोपलब्धिः विरुद्धसहचरोपलब्धिश्चेति।।67।।

संस्कृत टीकार्थ - प्रतिषेधको सिद्ध करने वाली विरुद्धोपलब्धिके भी 6 भेद है।

1 विरुद्धव्याप्योपलब्धि, 2. विरुद्धकार्योपलब्धि, 3. विरुद्धकारणोपलब्धि, 4. विरुद्धपूर्वचरोपलब्धि, 5. विरुद्धउत्तरचरोपलब्धि और 6. विरुद्धसहरोपलब्धि। ये सभी हेतु प्रतिषेधके साधक हैं।

अब साध्यसे विरुद्ध व्याप्योपलब्धिहेतुको कहते है :-

"नास्त्यत्र शीतस्पर्शः औष्ण्यात्"।।68।।

सूत्रान्वय :- नास्ति = नही है, **अत्र** = इसमें, **शीतस्पर्श** = शीतका स्पर्श, **औष्ण्यात** = उष्णता होनेसे।

सूत्रार्थ - यहाँ पर शीत स्पर्श नही है, क्योंकि उष्णता पाई जाती है।

संस्कृतार्थ - नास्त्यत्र शीतस्पर्शः औष्ण्यात्। अत्र प्रतिषेधरूप-साध्यात् शीतस्पर्शात् विरुद्धस्याग्नेः व्याप्यस्वरूप उष्णता विद्यते। यस्य व्याप्यं विद्यते तत्तदेव साधयिष्यति। इत्थमत्र औष्ण्यत्वहेतुः शीतस्पर्शसाध्याविरुद्धव्याप्यम् अग्निमेव साधयिष्यति। अतोऽयं हेतुर्विरुद्ध व्याप्योपलब्धिहेतुः भवेत्।
संस्कृत टीकार्थ - यहाँ शीतस्पर्श नहीं है उष्णता होने से। यहाँ पर प्रतिषेधरूप साध्य शीतस्पर्शसे विरुद्ध अग्निकी व्याप्य स्वरूप उष्णता विद्यमान है। जिसका व्याप्य विद्यमान है वह उसीको ही साधेगा अतएव यहाँ औष्ण्यत्व हेतु शीतस्पर्श साध्यके अविरुद्ध व्याप्त अग्निको ही साधेगा (सिद्ध होगा) इससे यह हेतु विरुद्ध व्याप्योपलब्धि हेतु कहा जाएगा।
विशेष - यहाँ शीतस्पर्श प्रतिषेध्य है, उसकी विरोधी अग्नि है, उसकी व्याप्य उष्णता पाई जा रही है अतः यह विरुद्ध व्याप्योपलब्धि हेतुका उदा. है।

अब अविरुद्ध कार्योपलब्धि हेतुको कहते हैः-

"नास्त्यत्र शीतस्पर्शः धूमात्"।।69।।

सूत्रान्वय :- **नास्ति** = नहीं है, **अत्र** = इसमें, **शीतस्पर्शः** = शीतस्पर्श, **धूमात्** = धूम होनेसे।
सूत्रार्थ - यहाँ पर शीतस्पर्श नहीं है, क्योंकि धूम है।

संस्कृतार्थ -नास्त्यत्र शीतस्पर्शो धूमात्। अत्र प्रतिषेध-रूपसाध्यात् शीतस्पर्शात् विरुद्धस्याग्नेः कार्यस्यरूपो धूमः उपलभ्यते। अग्नेः कार्य साधयित्त्वग्निमेव साधयिष्यति नो शीतस्पर्शम्। अतोऽत्रायं धूमत्वहेतु र्विरुद्ध कार्योपलब्धि-हेतुर्भवेत्।।69।।

संस्कृत टीकार्थ -यहाँ पर शीतस्पर्श नही. है धूम होनेसे। यहाँ पर प्रतिषेध रूपसाध्य शीतस्पर्श से विरुद्ध अग्निका कार्यरूप धूम प्राप्त है, अग्निका कार्य धूम रहकर अग्निको ही जावेगा, शीतस्पर्शको नहीं, इससे यहाँ यह धूमहेतु विरुद्ध कार्योपलब्धि हेतु होगा।
विशेष - यहाँ भी प्रतिषेधके योग्य साध्यजो शीत स्पर्श उसकी विरुद्ध जो अग्नि उसका कार्य धूम पाया जाता है, अतः यह विरुद्ध कार्योपलब्धि हेतु का उदा. है।

अविरुद्ध कारणोपलब्धि (सहचर हेतु)को कहते है :-

"नास्मिन् शरीरिणि सुखमस्ति हृदयशल्यात्"।।70।।

सूत्रान्वय :- **न** = नहीं, **अस्मिन्** = इस, **शरीरणि** = प्राणीमें, **सुखम्** = सुख, **अस्ति** = है, **हृदय शल्यात्** = हृदयमें शल्य होनेसे।

सूत्रार्थ - इस प्राणीमें सुख नही है; क्योंकि हृदयमें शल्य पाई जाती है।

संस्कृतार्थ - नास्मिन शरीरिणि सुखमस्ति हृदयशल्यात् अत्र सुख विरोधिनो दुःखस्य कारण हृदयशल्यरूप हेतुः विरुद्धकारणोपलब्धि हेतुजातः।।70।।

संस्कृत टीकार्थ - इस प्राणीमें सुख नहीं है, क्योंकि हृदयमें शल्य होनेसे क्योंकि यहाँ पर सुखकी विरोधिनी दुःखकी कारण हृदय शल्य (मानसिकपीड़ा) विद्यमान है। इसलिए यहाँ यह हृदय शल्य हेतु विरुद्ध कारणोपलब्धि हेतु जातः।।70।।

विशेष :- सुखका विरोधी दुःख है, उसका कारण हृदयकी शल्य पाये जानेसे यह विरुद्ध कारणोपलब्धि हेतु का उदा. है।

अब विरुद्धोपूर्वचरोपलब्धि हेतुको कहते हैं:-

"नोदेष्यति मुहूत्तान्त शकटं रेवत्युदयात्"।।71।।

सूत्रान्वय :- **न** = नहीं, **उदेष्यति** = उदित होगा, **मुहूर्तान्ते** = एक मुहूर्त के पश्चात्, **शकटं** = रोहिणी, **रेवती** = रेवतीका, **उदयात्** = उदय होनेसे।

सूत्रार्थ - एक मुहूर्तके पश्चात् रोहिणी उदय नहीं होगा। क्योंकि अभी रेवती नक्षत्रका उदय हो रहा है।

संस्कृतार्थ - नोदेष्यति मुहूर्तान्ते शकटं रेवत्युदयात्। अत्र शकटोदयाद् विरुद्धस्याश्विनी नक्षत्र पूर्वचरस्य रेवती नक्षत्रस्योदयो विद्यते। स चाश्विनी नक्षत्र पूर्वचरो वर्तते, अतएवाश्विनी नक्षत्रभावितामेव साधयिष्यति, शकटोदयञ्चनिषेत्स्यति। अतोऽत्राय रेवत्युदयत्वहेतुः विरुद्धपूर्वचरोपलब्धि हेतु जातः।।71।।

संस्कृत टीकार्थ - एक मुहूर्तके बाद रोहिणीका उदय नहीं होगा, क्योंकि रोहिणीके उदयसे विरुद्ध अश्विनी नक्षत्रके पूर्वचर (पहले उदय वाला) रेवतीका उदय हो रहा है। रेवतीका उदय अश्विनीके उदय का पूर्वचर है, इसलिए वह अश्विनीके उदयकी भाविता को ही सिद्ध

करेगा। साधेगा और रोहिणीके उदयका निषेध करेगा, इसलिए यहाँ यह हेतु विरुद्ध पूर्वचरोपलब्धि हेतु हुआ।।71।।

विशेष - यहाँ रोहिणीके विरोधी अश्विनीका उदय है, उसका पूर्वचर रेवती नक्षत्र है। उसका उदय पाये जानेसे यह विरुद्ध पूर्वचरोपलब्धि हेतु का उदा. है।

अब विरुद्धोत्तरचरोपलब्धिहेतुको कहते हैं :-

"नोद्गाद् भरणी मुहूर्तात्परं पुष्योदयात्"।।72।।

सूत्रान्वय :- **न** = नहीं, **उद्गात्** = ऊदय, **भरणी** = भरणीका, **मुहूर्तात्परं** = एक मुहूर्त पहले, **पुष्योदयात्** = पुष्य नक्षत्रका उदय होनेसे।

सूत्रार्थ - एक मुहूर्त पहले भरणी का उदय नही हुआ है, क्योंकि अभी पुष्य नक्षत्रका उदय पाया जा रहा है।

संस्कृतार्थ - नोद्गाद्भरणि: मुहूर्तात्पूर्व पुष्योद्यात। अत्र भरण्युदयात् विरुद्धस्य पुनर्वसूत्तरचरस्य पुष्यस्योदयो विद्यते। अर्थात् पुष्यनक्षत्रोदय: पुनर्वसुनक्षत्रोत्तरचरो वर्ततेऽतस्तस्यैवोदयं सूचयिष्यति यत् पुनर्वसूदयो भूतस्तथा च भूतभरण्युदयं निषेत्स्यति, अतोऽत्राय पुष्योदयत्व हेतु: विरुद्धोत्तचरोपलब्धि जात:।।72।।

संस्कृत टीकार्थ - एक मुहूर्त पहले भरणिका उदय नहीं है। पुष्यका उदय हो रहा है। यहाँ पर भरणीके उदयसे विरुद्ध पुनर्वसुके उत्तरचर (पीछे उदय) पुष्य नक्षत्रका उदय हो रहा है। अर्थात् पुष्य नक्षत्रका उदय पुनर्वसुका उत्तरचर है, इसलिए उसी ही के उदय को सूचित करेगा जो पुनर्वसुका उदय हो चुका है तथा हो चुके भरणिके उदयका निषेध करेगा। इसलिए यहाँ यह पुष्योदयत्व हेतु विरुद्धोत्तर चरोपलब्धि होगा।

विशेष - यहाँ पर भरणिके उदयका विरोधि पुनर्वसु नक्षत्रका उदय पाये जानेसे यह विरुद्धोत्तरचरोपलब्धि हेतुका उदा. है।

अब विरुद्ध सहचरोपलब्धि हेतुको कहते है:-

"नास्त्यत्र भित्तौ परभागाभावोऽर्वाग्भागदर्शनात्"।।73।।

सूत्रान्वय :- **नास्ति** = नहीं है, **अत्र** = इसमें, **भित्तौ** = दीवालमें, **परभाग** = उस ओरके भाग, **अभाव:** = अभाव , **अर्वाग्भाग** = इस

ओरका भाग, **दर्शनात्** = दिखाई दे रहा है।

सूत्रार्थ - इस दीवाल में उस ओरके भागका अभाव नहीं है क्योंकि इस ओरका भाग दिखाई दे रहा है।

संस्कृतार्थ - नास्त्यत्र भित्तौ परभागाभावोऽर्वाग्भागदर्शनात्। अत्र परभागाभावाद् विरुद्धः परभागसद्भावसहचरोऽर्वाग्भागो दृश्यते। अर्थात्परभागसद्भाव सहचरो विद्यतेऽतः सः परभागसद्भावमेव साधयिष्यति। अतोऽत्रायम् अर्वाग्भागदर्शनत्वहेतुः विरुद्धसहचरोपलब्धिहेतुः जातः।।73।।

संस्कृत टीकार्थ - इस दीवालमें उस ओरके भागका अभाव नहीं; इस ओरका भाग दिखनेसे। यहाँ पर उस ओरके भाग अभावसे विरुद्ध उस ओरके भागका सद्भावका साथी इस तरफका भाग दिखाई दे रहा है। अर्थात् उस तरफ के भागके सद्भावका सहचर विद्यमान है। इसलिए वह उसके सद्भावको ही साधेगा। इसलिए यहाँ पर इस ओरके भागका दर्शनत्वहेतु सिद्ध विरुद्ध सहचरोपलब्धि हेतु हुआ।

विशेष :- परभागके अभावका विरोधी उसका सद्भाव है, उसका सहचारी इस ओरका भाग पाया जाता है।

अब अविरुद्धानुपलब्धिके भेदको कहते हैं:-

"अविरुद्धानुपलब्धिः प्रतिषेधे सप्तधा स्वभाव व्यापक कार्य कारण पूर्वोत्तर सहचरानुपलम्भभेदात्"।।74।।

सूत्रान्वय :- **अविरुद्धानुपलब्धि** = अविरुद्धानुपलब्धि, **प्रतिषेधे** = प्रतिषेध होने पर, **सप्तधातु** = सात प्रकार, **स्वभाव** = व्यापक, कार्य, कारण पूर्वचर, उत्तरचर, सहचर, **अनुपलम्भ** = अभावके, **भेदात्** = भेदसे।

संस्कृतार्थ - अविरुद्धानुपलब्धिः प्रतिषेधसाधिका जायते। तस्याः सप्त भेदा विद्यन्ते। अविरुद्धस्वभावनुपलब्धिः अविरुद्धव्यापकानुपलब्धिः अविरुद्धकार्यानुपलब्धिः अविरुद्धकारणानुपलब्धिः, अविरुद्धपूर्व-चरानुपलब्धिः, अविरुद्धोत्तरचरानुपलब्धिः, अविरुद्धसहचरानुपलब्धिश्चेति।।74।।

संस्कृत टीकार्थ - प्रतिषेध अर्थात् अभावको सिद्ध करने वाली अविरुद्धानुलब्धि के 7 भेद है - 1. अविरुद्धस्वभावानुपलब्धि 2. अविरुद्धव्यापका- नुपलब्धिः 3.अविरुद्धकार्यानुपलब्धिः, 4. अविरुद्धकारणानुप-

लब्धि:, 5,अविरुद्धपूर्व-चरानुपलब्धि:, 6. अविरुद्धोत्तरचरानुपलब्धि:, 7. अविरुद्धसह- चरानुपलब्धि।

विशेष - सूत्र पठित स्वभाव, व्यापक आदि पदोंका पहले द्वन्द्वसमास करना है पहिले उसका अनुपलम्भ पदके साथ षष्ठी तत्पुरुष समास करना चाहिए।

अविरुद्ध स्वभावानुपलब्धि का उदा.

"नास्त्यत्र भूतले घटोऽनुपलब्धे:"।।75।।

सूत्रान्वय :- नास्ति = नहीं है, **अत्र** = इसमें, **भूतले** =पृथ्वीतल पर, **घट** = घडा, **अनुपलब्धे:** = उपलब्धि नहीं होनेसे।

सूत्रार्थ - इस भूतल पर घट नहीं है; क्योंकि उपलब्धि योग्य स्वभावके होने पर वह भी नहीं पाया जा रहा है।

संस्कृतार्थ - नास्त्यत्र भूतले घटोऽनुपलब्धे:। अत्र घटप्राप्ति रूपस्वभावस्य भूतलेऽभावो विद्यतेऽत: स घटाभावं साधयति। अर्थात् प्रतिषेधयोग्यघटस्या- विरुद्ध स्वभावस्यानुपलम्भो वर्तते। अतोऽयमनुपलब्धित्वहेतु: 'अविरुद्धस्वभावानुप- लब्धि हेतु:' जात:।।75।।

संस्कृत टीकार्थ - इस भूतल पर घड़ा नहीं है क्योंकि उपलब्ध नहीं है। यहाँ पर घटके प्राप्त होने रूप स्वभावका भूतलमें अभाव है, इसलिए वह घड़ेके अभावको सिद्ध करता है। अर्थात् प्रतिषेध योग्य घटके अविरुद्धस्वभाव का (अभाव) अनुपलम्भ है। इसलिए यह हेतु अविरुद्ध स्वाभावानुपलब्धि हुआ।।75।।

विशेष - यहाँ पर पिशाच और परमाणु आदिकके व्यभिचारके परिहारार्थ उपलब्धि लक्षण प्राप्तिके योग्य होने पर भी इतना विशेषण ऊपरसे लगाना है।

यदि कोई ऐसा कहे कि यहाँ पर भूतप्रेतादि नहीं है, अथवा परमाणु नहीं है, क्योंकि उनकी अनुपलब्धि है। यह व्यभिचारी हेतु है। संभव है कि वे भूत-पिशाचादि या परमाणु आदि यहाँ पर हो और उनका अदृश्य या सूक्ष्म स्वभाव होनेसे हमें उनकी उपलब्धि न हो रही हो अत: इस प्रकारके दोषको दूर करनेके लिए आचार्यने उक्त विशेषण दिया है अत: घटका स्वभाव उपलब्धि के योग्य है। फिर भी वह घट यहाँ उपलब्ध नहीं हो रहा है। अत: यह विरुद्धस्वभावनुपलब्धि रूप हेतु

का उदा. है।

अविरुद्ध व्यापकानुपलब्धि हेतुको कहते है:-

"नास्त्यत्र शिंशपा वृक्षानुपलब्धे:"।।76।।

सूत्रान्वय :- नास्ति = नहीं है, **अत्र** = यहाँ पर, **शिंशपा** = शीशम, **वृक्ष** = वृक्ष, **अनुपलब्धे:** = प्राप्ति नहीं होनेसे।

संस्कृतार्थ - नास्त्यत्र शिंशपा वृक्षानुपलब्धे:। व्यापक वृक्षं विना व्याप्य स्वरूप: शिंशपा: नार्हति। अर्थादत्र व्यापकवृक्षानुपलब्धि: व्याप्यशिंशपा-प्रतिषेधं साधयति। अतोऽय वृक्षानुपलब्धिहेतु: अविरुद्धव्यापकानुपलब्धि हेतु: सम्भूत:।

संस्कृत टीकार्थ - यहाँ पर शीशम नहीं है, वृक्षकी अनुपलब्धि है। व्यापक वृक्षके बिना व्याप्य स्वरूप शिंशपा हो नहीं सकता, अर्थात् यहाँ व्यापक वृक्षकी अनुपलब्धि व्याप्य शीशमके प्रतिषेध को सिद्ध करती है। इसलिए यह हेतु अविरुद्धव्यापकानुपलब्धि हेतु प्राप्त हुआ।

अब अविरुद्ध कार्यानुपलब्धि हेतुको कहते है:-

"नास्त्यत्राप्रतिबद्ध सामर्थ्योऽग्नि धूमानुपलब्धे:"।।77।।

सूत्रान्वय :- नास्ति = नहीं है, **अत्र** = यहाँ, **अप्रतिबद्ध** = बिना रूकी, **सामर्थ्य:** = सामर्थ्य वाली, **अग्नि:** = आग, **धूम** = धुआँ, **अनुपलब्धे:** =प्राप्ति न होनेसे।

सूत्रार्थ - यहाँ पर अप्रतिबद्ध सामर्थ्य वाली अग्नि नहीं है, क्योंकि धूम नहीं पाया जाता है।

संस्कृतार्थ - नास्त्यत्रा प्रतिबद्धसामर्थ्योऽग्नि धूमानुपलब्धे:। अत्र सामर्थ्यवतोग्नेर विरुद्धकार्यस्य धूमस्याभावो विद्यते, अतश्च प्रतीयते यदत्राग्निर्नास्ति, अस्ति चेद् भस्मादिभिराच्छन्नो विद्यते। एवमत्राय धूमानुपलब्धित्वहेतु: अविरुद्धकार्यानुपलब्धिहेतु: 'अविरूद्धकार्यानुपलब्धि हेतु:' विज्ञेय:।।77।।

संस्कृत टीकार्थ - यहाँ पर बिना सामर्थ्यरूपी अग्नि नही है, क्योंकि धुआँ नहीं पाया जाता है। यहाँ पर सामर्थ्यवान अग्निके अविरुद्ध कार्यधूमका अभाव है, इसलिए ज्ञात होता है कि यहाँ अग्नि नही है अगर है भी तो भस्म वगैरह से ढकी हुई है। इससे यहाँ यह धूम अनुपलब्धि हेतु

अविरुद्धकार्यानुपलब्धि हेतु हुआ।

विशेष - जिसकी सामर्थ्य अप्रतिबद्ध है, ऐसा कारण अपने कार्यके प्रति अनुपहत (अप्रतिहत) शक्तिवाला कहा जाता है। यहाँ पर अप्रतिहत शक्तिवाली अग्निका अभाव आग के अविरोधी कार्य धूमके नहीं पाये जानेसे सिद्ध है। अतः यह अविरुद्ध कार्यानुलब्धि हेतु का उदा. है।

अविरुद्ध कारणानुपलब्धि हेतुको कहते है :-

"नास्त्यत्र धूमोऽनग्ने"।।78।।

सूत्रान्वय:- नास्ति = नहीं है, **अत्र** = यहाँ, **धूम** = धुआँ, **अनग्नें** = अग्नी के नहीं होने से।

सूत्रार्थ - यहाँ पर धूम नहीं है, क्योंकि धूमके अविरोधी कारण अग्निका अभाव है।

संस्कृतार्थ - नास्त्यत्र धूमोऽनग्ने। अत्र धूमस्याविरुद्धकारणस्याग्नेरभावो धूमाभावं साधयति। अतोऽयम् अनग्नित्वहेतुः अविरुद्धकारणानुपलब्धिहेतुः जातः।।78।।

संस्कृत टीकार्थ - यहाँ धूम नही है, क्योंकि अग्नि नही है। यहाँ पर धूमके अविरुद्ध कारण अग्निका अभाव धूमके अभावको सिद्ध करता है। इसलिए यह हेतु अविरुद्धकारणानुपलब्धि है।

अब अविरुद्ध पूर्व चरानुपलब्धि हेतुको कहते है:-

"न भविष्यति मुहूर्तान्ते शकटं कृतिकोदयानुपलब्धेः"।।79।।

सूत्रान्वय :- न = नहीं, **भविष्यति** = होगा, **मुहूर्तान्ते** = एक मुहूर्तके बाद, **शकटं** = रोहिणी नक्षत्र, **कृतिका** = कृत्तिका नक्षत्र, **उदय** = उदयकी, **अनुपलब्धेः** = उपलब्धे नहीं होनेसे।

सूत्रार्थ - एक मुहूर्तके पश्चात् रोहिणी का उदय नहीं होगा, क्योंकि कृतिका के उदयकी अनुपलब्धि है।

संस्कृतार्थ - न भविष्यति मुहूर्तान्ते शकटं, कृतिकोदयानुपलब्धेः। अत्र शकटोदयादविरुद्धस्य पूर्वचरस्य कृतिकोदयस्याभावो मुहूर्तान्ते शकटोदयाभावं साधयति। अतोऽयं कृतिकोदयानुपलब्धित्वहेतुः अविरुद्ध-पूर्वचरानुपलब्धिहेतुःजातः।

संस्कृत टीकार्थ - एक मुहूर्तके बाद रोहिणीका उदय नहीं होगा, क्योंकि कृतिका का उदय नहीं हुआ है यहाँ पर रोहिणीके उदयके अविरुद्ध पूर्वचर कृतिकाके उदयका अभाव एक मुहूर्त बाद रोहिणीके उदयके अभावको सिद्ध करता है। इसलिए यह हेतु अविरुद्धपूर्वचरानुप- लब्धि हेतु हुआ।

अब अविरुद्ध उत्तरचर अनुपलब्धि हेतुका उदाहरण कहते है:-

"नोद्गात् भरणि: मुहूर्तात्प्राक् तत एव"।।80।।

सूत्रान्वय :- **नोद्गात्** = नहीं हो चुका उदय, **भरणि** = भरणिका, **मुहूर्तात्** = एक मुहूर्त पहले, **ततः** = उस कारणसे, **एव** = ही।

सूत्रार्थ - एक मुहूर्त पहले भरणिका उदय नहीं हुआ है क्योंकि उत्तरचर कृतिका का उदय नहीं पाया जाता।

संस्कृतार्थ - नोदगात् भरणि: मुहूर्तात्प्राक तत एव। अत्र भरण्युदयात् अविरुद्ध उत्तरचरस्य कृतिका उदयस्य अभावो भरण्युदय भूतताऽभाव साध यति। अतोऽयं हेतु: अविरुद्धोत्तरचरोप लब्धिहेतु: जात:।।

संस्कृत टीकार्थ:- एक मुहूर्त पहले भरणीका उदय नहीं है क्योंकि अभी कृतिकाका उदय नहीं है। यहाँ पर भरणीके उदयके अविरुद्ध उत्तरचर कृतिकाके उदयका अभाव, भरणीके उदयकी भूतताके अभावको सिद्ध करता है, इसलिए यह हेतु अविरुद्धोपचरोपलब्धि हेतु है।

विशेष - यहाँ पर सूत्र पठित "ततः एव" पदसे कृतिकाके उदयकी अनुपलब्धिका अर्थ ग्रहण किया है।

अब अविरुद्ध सहचरोपलब्धिको कहते हैं :-

"नास्त्यत्र समतुलायामुन्नामो नामानुपलब्धे:"।।81।।

सूत्रान्वय :- **नास्ति** = नही है, **अत्र** = इसमें, **समतुलायाम्** = तराजूमें, **उन्नाम** = ऊँचाई, **नाम** = नीचापन, **अनुपलब्धेः** = प्राप्ति नहीं होनेसे।

सूत्रार्थ - इस तराजूमें एक ओर ऊँचापना नहीं है, क्योंकि उन्नामका अविरोधि सहचर नहीं पाया जाता है।

संस्कृतार्थ - नास्त्यत्र समतुलायामुन्नामो नामानुपलब्धे:। अत्र उन्नामाद् अविरुद्धसहचरस्य नामस्याभाव: उन्नामस्याभाव साधयति। अतोऽयं नामानुप-

लब्धि- त्वहेतुः अविरुद्धसहचरानुपलब्धिहेतु जातः।।81।।

संस्कृत टीकार्थ - इस तराजूमें ऊँचापन नहीं है, क्योंकि नीचेपनका अभाव है यहाँ पर ऊँचपने का अविरुद्ध सहचर नीचेपनका अभाव ऊँचेपनके अभावको सिद्ध करता है, इससे यह हेतु अविरुद्ध सहचरानुपलब्धि हेतु हुआ।।81।।

अव विरुद्ध कार्यानुपलब्धि आदि हेतु विधिमें सम्भव है और उसके भेद तीन ही है यह प्रदर्शित करनेके लिए कहते हैः-

"विरुद्धानुपलब्धि विधौ त्रेधा विरुद्ध कार्यकारणस्वभावानुपलब्धि भेदात्"।।82।।

सूत्रान्वयः- **विरुद्धानुपलब्धिः** = विरुद्धानुलब्धिके, **विधौ** = विधिमें, **त्रेधा** = तीन प्रकारके, विरुद्धकार्यकारणस्वभावानुपलब्धि, **भेदात्** = भेद होनेसे।

सूत्रार्थ - विधिके अस्तित्व को सिद्ध करनेमें विरुद्धानुपलब्धिके तीन भेद है। 1. विरुद्धकार्यानुपलब्धि, 2. विरुद्धकारणानुपलब्धि, 3. विरुद्धस्वभावानुपलब्धि।

प्रश्न 256-विरुद्धकार्यानुपलब्धि किसे कहते हैं?

उत्तर - साध्यसे विरुद्ध पदार्थके कार्यका नही जाना जाना विरुद्धकार्यानुपलब्धि हेतु है।

प्रश्न 257- विरुद्धकारणानुपलब्धि हेतु किसे कहते है?

उत्तर - साध्यसे विरुद्ध पदार्थके कारण का नहीं पाया जाना विरुद्धकारणानुपलब्धि है।

प्रश्न 258- विरुद्धस्वभावानुपलब्धि किसे कहते हैं?

उत्तर - साध्यसे विरुद्ध पदार्थके स्वभावका नहीं पाया जाना विरुद्धस्वभावा- नुपलब्धि हेतु है।

प्रश्न 259-इन्हें विधिसाधक क्यों कहा गया है?

उत्तर - ये तीनों ही हेतु अपने साध्यके सद्भावको सिद्ध करते हैं, इसलिए विधि साधक कहा गया है।

अब विरुद्ध कार्यानुपलब्धि हेतुके उदाहरण को कहते हैः-

"यथास्मिन्प्राणिनि व्याधि विशेषोऽस्ति निरामय चेष्टानुपलब्धेः"।।83।।

सूत्रान्वय :- **यथा** = जैसे, **अस्मिन् प्राणिनि** = इस प्राणीमें,

व्याधि विशेषः = रोग विशेष, **अस्ति** = है, **निरामय** = रोग रहित, **चेष्टा** = प्रवृत्ति, **अनुपलब्धेः** = प्राप्त न होनेसे

सूत्रार्थ - इस प्राणीमें व्याधि विशेष है क्योंकि निरामय (रोगरहित) चेष्टा नहीं पाई जाती है।

संस्कृतार्थ - अस्मिन् प्राणिनि व्याधि विशेषोऽस्ति निरामयचेष्टानुपलब्धे। अत्र व्याधि विशेष सद्भाव साध्याद् विरोधिनो व्याधि विशेषाभावस्य कार्यस्य नीरोग चेष्टायाः अनुपलब्धिः विद्यते। अतोऽयं हेतुः विरुद्धकार्यानुपलब्धि हेतु जातः।।83।।

संस्कृत टीकार्थ - इसप्राणीमें व्याधि विशेष है, निरामय चेष्टा नहीं। यहाँ पर व्याधि विशेष के सद्भाव साध्यसे विरोधि व्याधि विशेषके अभावके कार्य नीरोग चेष्टाकी अनुपलब्धि है। इसलिए यह हेतु विरुद्ध कार्यानुपलब्धि हेतु हुआ।

अब विरुद्धकारणानुपलब्धि हेतुको कहते है:-

"अस्त्यत्र देहिनि दुःखमिष्टसंयोगाभावात्"।।84।।

सूत्रान्वय :- अस्ति = है, **देहिनि** = प्राणिमें, **अत्र** = इसमें, **दुःखम्** = दुःख, **इष्ट संयोग** = इष्ट का योग, **अभावात्** = अभाव होनेसे।

सूत्रार्थ - इस प्राणीमें दुःख है क्योंकि इष्ट सयोगका अभाव है।

संस्कृतार्थ - अस्त्यत्र देहिनि दुःखमिष्टसंयोगाभावात्। अत्र दुःखविरोधिनः सुखकारणस्येष्टसयोगस्याभावो दुःख सद्भावमेव साधयति। अतोऽत्रायम् इष्ट सयोगाभावित्व हेतुः विरुद्धकारणानुपलब्धि हेतुरवगन्तव्यः।।84।।

संस्कृत टीकार्थः- इस प्राणीमें दुःख है, क्योंकि इष्ट संयोगका अभाव है। यहाँ पर दुःखके विरोधि सुखके कारण इष्टसंयोगका अभाव दुःख के सद्भावको सिद्ध करता है, इसलिए यहाँ पर हेतु इष्ट संयोग अभावपना विरुद्धकारणानुपलब्धि हेतु जानना चाहिए।

विशेष - दुःखका विरोधी सुख है, उसका कारण इष्टसंयोग है उसकी विवक्षित प्राणी में अनुपलब्धि है अतः यह विरुद्धकारणानुपलब्धि हेतु हुआ।

अब विरुद्ध स्वभावानुपलब्धिरूप हेतुका उदाहरण कहते है :-

"अनेकान्तात्मकं वस्त्वेकान्तस्वरूपानुपलब्धेः"।।85।।

सूत्रान्वय :- अनेकान्तात्मकं = अनेक धर्म स्वरूपवाली, **वस्तु** = वस्तुका, **एकान्त** = एक धर्म, **स्वरूप** = स्वभाव, **अनुपलब्धेः** = प्राप्ति न होनेसे।

सूत्रार्थ - वस्तु अनेकान्तात्मक है अर्थात् अनेकधर्मवाली है, क्योंकि वस्तुका एकान्त रूप पाया नहीं जाता।।85।।

संस्कृतार्थ - अनेकान्तात्मकं वस्त्वेकान्तस्वरूपानुपलब्धेः। अत्रानेकान्तात्मकताया विरुद्धः एकान्तात्मकपाया अभावो वस्तुनोऽनेकान्तात्मकतामेव साधयति, अतोऽत्रायं हेतुः विरुद्धस्वभावानुपलब्धि हेतुः प्रत्येतव्यः।।85।।

संस्कृत टीकार्थ - अनेकान्तात्मक साध्यका विरोधी नित्यत्व आदि एकांत है, न कि एकान्त पदार्थको विषय करने वाला विज्ञान, क्योंकि मिथ्या ज्ञानके रूपसे उसकी उपलब्धि संभव है। नित्यादि एकान्तरूप पदार्थका स्वरूप अवास्तविक है अतः उसकी अनुपलब्धि है, इससे यह विरुद्धस्वभावानुपलब्धि हेतुका उदाहरण है।

शंका - यहाँ पर कोई कहता है कि व्यापक विरुद्धकार्यादि हेतु और परम्परा से अविरोधि हेतुओंका पाया जाना बहुलतासे संभव है। आचार्योंने उनके उदाहरण क्यों नहीं दिए?

सूत्रकार उनकी शंकाका समाधनकरते हुए कहते है:-

"परम्परासंभवत्साधनमत्रैवान्तर्भावनीयम्"।।86।।

सूत्रान्वयः- परम्परा = परम्परासे, **संभवत्** = सभव है, **साधनम्** = साधनको, **अत्रैव** = इनमें ही, **अन्तर्भावनीयम्** = अन्तर्भावकरना चाहिए।

संस्कृतार्थ-गुरुपरम्परयासम्भवन्ति भिन्नानि साधनानि पूर्वोक्त साधनेष्वेवान्तर्भावनीयानि।86।

संस्कृत टीकार्थ - गुरु परम्परासे और भी जो साधन (हेतु) सम्भव हो सकते है उनका पूर्वोक्त साधनों में ही अन्तर्भाव करना चाहिए।

प्रश्न 260-सूत्रमें "अत्रैव" से क्या ग्रहण करना है?

उत्तर - अत्रैव का तात्पर्य यहींकार्यादिहेतुओंमें।

उसी साधनके उपलक्षणके लिए दो उदाहरण दिखलाते हैं -

"अभूदत्र चक्रे शिवकः स्थासात्"।।87।।

सूत्रान्वय :- अभूत् = हो गया है, **अत्र चक्रे** = इस चाक पर, **शिवक:** = शिवक, **स्थासात्** = स्थास होनेसे,

सूत्रार्थ - इस चाक पर शिवक हो गया है, क्योंकि स्थास पाया जा रहा है।

संस्कृतार्थ - अभूदत्र चक्रे शिवक: स्थासात्। अत्र स्थासरूप हेतु: परंपरया शिवककार्य विद्यते, साक्षान्नो, साक्षात्कार्यतु छत्रकं विद्यते। एवमात्रायं स्थासादिति हेतु: कार्यकार्यहेतु विद्यते।।87।।

संस्कृत टीकार्थ - इस चाक पर शिवक हो गया है,क्योंकि स्थास है। यहाँ पर स्थास रूपहेतु परम्परा से शिवक का कार्य है, साक्षात् नहीं, साक्षात् कार्य तो छत्रक है, इस प्रकार यह हेतु यहाँ पर (स्थासात्) कार्य-कार्य हेतु हुआ।

विशेष - जब कुभकार घड़ा बनता है तब घड़ा बनानेसे पहले शिवक छत्रक स्थास कोश, कुशूल आदि अनेक पर्यायें होती है तब अंत में घडा बनता है। यहाँ चाक पर रखी हुई पिण्डाकारपर्यायिका नाम शिवक है, उससे पीछे वाली चाक पर रखी हुई पिण्डाकार पर्यायका नाम शिवक है, उससे पीछे वाली पर्यायका नाम छत्रक है और उसके पश्चात् होने वाली पर्यायका नाम स्थास है इसी व्यवस्थाके अनुसार यह उदाहरण दिया गया है, शिवकरूप पर्याय हो चुकी है क्योंकि अभी स्थासरूप पर्याय है। अत: ज्ञात हुआ की शिवक का कार्य छत्रक है और उसका कार्यस्थास है, अत: स्थास शिवकके कार्यका परम्परासे कार्य है, साक्षात् नहीं, क्योंकि साक्षात्कार्य तो छत्रक है।

अब उक्त हेतु की क्या संज्ञा है और किसहेतु में उसका अन्तर्भाव होता है, ऐसी आशंका होने पर आचार्य उत्तर देते है:-

"कार्यकार्यमविरुद्धकार्योपलब्धौ"।।88।।

सूत्रान्वय :- कार्यकार्यम् = कार्यके कार्यरूप, **अविरुद्धकार्योपलब्धौ** = अविरुद्धकार्योपलब्धिमें।

सूत्रार्थ - कार्यके कार्यरूप उक्त हेतुका अविरुद्ध कार्योपलब्धि में अन्तर्भाव होता है।

नोट :- यहाँ सूत्रमें 'अन्तर्भावनीयम्'' पद का अध्याहार करना चाहिए।
विशेष - उक्त उदाहरणमें शिवकका कार्य छत्रक है और उसका कार्यस्थास है इस प्रकार यह स्थास शिवकके कार्यका अविरोधिकार्य होने से परम्परा से अविरुद्धकार्योपलब्धिमें अन्तर्भूत होता है।

अब आचार्य दृष्टान्त द्वारा परम्परा हेतुका दूसरा दृष्टान्त देते है :-

"नास्त्यत्र गुहायां मृगक्रीडनं, मृगारिसंशब्दनात् कारण विरुद्धकार्य विरुद्धकार्योपलब्धौ यथा''।।89।।

सूत्रान्वय :- नास्ति = नहीं है, **अत्र** = इसमें, **गुहायां** = गुफामें, **मृगक्रीडनम्** = मृगक्रीडा, **मृगारि** = सिंहका, **संशब्दनात्** = गर्जना होनेसे, **कारणविरुद्धकार्य** = कारण कार्य रूपहेतुको, **विरुद्धकार्योपलब्धौ** = विरुद्धकार्योपलब्धिमें, **यथा** = जैसे।

सूत्रार्थ - इस गुफा में हरिण की क्रीड़ा नही है, क्योंकि सिंह की गर्जना हो रही है, यह कारण विरुद्धकार्यरूप हेतु है, इसका विरुद्धकार्योप-लब्धि हेतु में अन्तर्भाव होता है।

संस्कृतार्थ -नास्त्यत्र गुहाया मृगक्रीडन मृगारिसंशब्दनात। अत्र कारण विरुद्धकार्य विद्यते। अर्थात् मृगक्रीड़ा कारण मृगस्य विरोधिनः सिंहस्य शब्दरूपं कार्यम् उपलभ्यते, अतोऽत्रायं हेतुः विरुद्धकार्योपलब्धावन्तर्भवति तथैव कार्यकार्य हेतुरपि अविरुद्धकार्योपलब्धावन्तर्भवति इति भावः।।89।।

संस्कृत टीकार्थ - इस गुफामें हरिणकी क्रीड़ा नहीं है, सिंह की गर्जना होने से यहाँ पर कारण विरुद्ध कार्य विद्यमान है अर्थात् हरिणक्रीड़ाके कारण हरिणके विरोधि सिंह का शब्द रूपकार्य पाया जाता है। इसलिए इस हेतुका विरुद्धकार्योपलब्धि हेतु में अन्तर्भाव करना चाहिए। और जैसे इस कारण विरुद्धकार्योपलब्धिका विरुद्धकार्योपलब्धि हेतु में अन्तर्भाव होता है। उसी प्रकार कार्य-कार्य हेतु का अविरुद्ध कार्योपलब्धि हेतु में अन्तर्भाव होता है।

अब यहाँ पर कोई कहता है कि बाल व्युत्पत्तिके लिए अनुमानके पाँचों अवयवोंका प्रयोग किया जा सकता है, ऐसा आपने कहा, परन्तु व्युत्पन्ना

पुरुषोंके प्रति प्रयोग का क्या नियम है - इसका उत्तर देते हैं।

"व्युत्पन्नप्रयोगस्तु तथोपपत्त्याऽन्यथानुपपत्त्यैव वा"।।90।।

सूत्रान्वयः- **व्युत्पन्न प्रयोगः** = विद्वान प्रयोग, **तु** = परन्तु, **तथोपपत्ति** = तथोपपत्ति, **वा** = अथवा, **अन्यथानुपपत्ति** = अन्यथानुपपत्ति, **एव** = ही।

सूत्रार्थ-विद्वानत्पुरुषों के लिए तथोपत्ति या अन्यथानुपपत्ति नियमसे ही प्रयोग करना चाहिए।

संस्कृतार्थ - व्युत्पन्न प्रयोगस्तु तथोपपत्त्या, अन्यथानुपपत्त्यैव वा।।90।।

संस्कृत टीकार्थ - विद्वान पुरुषोंके लिए तथोपत्तिके द्वारा अथवा अन्यथानुपपत्तिके द्वारा प्रयोग करना चाहिए।

नोट - सूत्रमें "क्रियते" पद शेष है एवं व्युत्पन्नस्य प्रयोग-व्युत्पन्नका प्रयोग एव व्युत्पन्नाय-व्युत्पन्नके लिए इस प्रकार षष्ठी तत्पुरुष एवं चतुर्थी तत्पुरुष समाससे विग्रह करना चाहिए।

प्रश्न 261-तथोपपत्ति किसे कहते है?

उत्तर - साध्यके सद्भावमें साधनका सद्भाव होना।

प्रश्न 262-अन्यथानुपपत्ति किसे कहते हैं?

उत्तर - साध्यके अभावमें साधनका न होना।

अब व्युत्पन्न प्रयोगकी उदाहरण द्वारा पुष्टि :-

"अग्निमानयं देशस्तथैव धूमावत्त्वोपपत्ते धूमत्त्वान्यथानुपपत्तेर्वा"।।91।।

सूत्रान्वय :- **अग्निमान्** = अग्निवाला, **अयम्** = यह, **देशः** = देश, **तथा** = उस प्रकार, **एव** = ही, **धूमवत्त्व**= धूमवान, **उपपत्तेः** = प्राप्त होनेपर, **धूमवत्त्व** = धूमवाला होकर, **अन्यथानुपपत्तेः** = अन्यथानुपपत्तिके, **वा** = अथवा।

सूत्रार्थ - यह प्रदेश अग्नि वाला है क्योंकि तथैव अर्थात् अग्निवाला होने पर ही धूमवाला हो सकता है। अथवा अग्निके अभावमें धूमवाला हो नहीं सकता।।91।।

संस्कृतार्थ - अग्निमानयं देशः, अग्निमत्त्वे सत्येव धूमवत्त्वोपपत्तेः अग्निमत्त्वा भावे धूमवत्त्वानुपपत्तेश्च। व्युत्पन्नायैवमेव प्रयोगो विधेयः। दृष्टान्तेनानेन दृढ़ीकृतं यद्व्युत्पन्नायोदाहरणादीनां प्रयोगस्यावश्यकता नो विद्यते।।91।।

संस्कृत टीकार्थ - यह देश अग्निवाला है, अग्निमान होने पर ही धूमवान की प्राप्ति हो सकती है, अथवा अग्निवाला के अभावमें धूमवाला हो ही नहीं सकता व्युत्पन्न के लिए इस प्रकार प्रयोगकरना चाहिए। इस दृष्ट में यह दृढ़ किया गया है कि विद्वानों के लिए उदाहरण आदिके प्रयोगकी आवश्यकता नहीं है।

विशेष - जो न्याय शास्त्रमें प्रवीण हैं, उनके लिए अनुमानका प्रयोग प्रतिज्ञा के साथ तथोपपत्ति या अन्यथानुपपत्ति रूप हेतुसे ही करना चाहिए क्योंकि उनके लिए उदाहरणादिक शेष अवयवोंके प्रयोगकी आवश्यकता नहीं है।

कोई कहता है कि साध्य साधनके अतिरिक्त दृष्टान्तादि के प्रयोगकी व्याप्ति के ज्ञान कराने में उपयोगी है, फिर व्युत्पन्न पुरुषों की अपेक्षासे उनका प्रयोग क्यों नहीं? इसका समाधान देते है -

"हेतु प्रयोगो हि यथा व्याप्तिग्रहणं विधीयते सा च तावत्मात्रेण व्युत्पन्नैरवधार्यते"।।92।।

सूत्रान्वय :- **हेतु प्रयोगः** = हेतु का प्रयोग, **यथा** = जैसे, **व्याप्तिग्रहणं** = व्याप्तिका ग्रहण, **विधीयते** = किया जाये, **सा** = उस प्रकारसे, **तावन्मात्रेण** = उतने मात्रसे, **व्युत्पन्नैः** = विद्वानोंके द्वारा, **अवधार्यते** = निश्चय कर लिया जाता है, **हि** = क्योंकि।

सूत्रार्थ - जैसे हेतुका प्रयोग व्याप्तिको ग्रहण करता है उतने मात्रसे बुद्धिमानोंके द्वारा धारण किया जाता है।

संस्कृतार्थ - उदाहरणादिकं विना एव तथोपपत्तिमतोऽन्यथानुपपत्तिमतो वा हेतोः प्रयोगेणैव व्युत्पन्ना व्याप्तिं ग्रहणान्ति, अतस्तदपेक्षयोदाहरंणादि प्रयोगावश्यकता नो विद्यते।।92।।

संस्कृत टीकार्थ - उदाहरण आदि के बिना ही तथोपपत्तिमानका और अन्यथानुपत्तिका हेतुके प्रयोगसे ही बुद्धिमान लोग व्याप्तिका निश्चय कर लेते है, इसलिए विद्वानों की अपेक्षा उदाहरणादिक के प्रयोग की आवश्यकता नही है।

विशेष - सूत्र पठित "हि" शब्द यस्मात् इस अर्थमें है। यतः जैसे

व्याप्तिका ग्रहण हो जाए उस प्रकार से अर्थात् तथोपपत्ति और अन्यथानुपपत्तिके द्वारा अन्वय व्याप्ति और व्यतिरेक व्याप्तिके ग्रहण का उल्लंघन न करके ही हेतुका प्रयोग किया जाता है, अतः उतने मात्रसे अर्थात् दृष्टान्तादिक के बिना ही व्युत्पन्न पुरुष व्याप्तिका अवधारण कर लेते हैं।

दृष्टान्तादिक का प्रयोग साध्यकी सिद्धिके लिए फलवान नहीं है, आचार्य भगवन् इसको बतलानेके लिए उत्तर सूत्र कहते है :-

"तावता च साध्य सिद्धिः"।।93।।

सूत्रान्वयः- **तावता** = उतने मात्रासे, **च** = ही, **साध्यः** = साध्यकी, **सिद्धिः** = सिद्धिहोती है।

सूत्रार्थ - उतने मात्रसे ही साध्यकी सिद्धि हो जाती है।

नोट - इस सूत्रमें 'च' शब्द एवकार अर्थ में है।

संस्कृतार्थ - तस्य साध्याविनाभाविनो हेतोः प्रयोगादेव साध्यसिद्धिः जायते। अतः साध्यसिद्धौ दृष्टान्तादयो नोपयुक्ताः।।93।।

संस्कृत टीकार्थ - उस साध्य अविनाभावि हेतुके प्रयोगसे ही साध्यकी सिद्धिहो जाती है, इसलिए साध्यकी सिद्धिमें दृष्टान्तादिक की कोई आवश्यता नहीं है।

विशेष - उतने मात्रसे अर्थात् जिसका विपक्षमें रहना निश्चितरूपसे असंभव है, ऐसे हेतुके प्रयोगमात्र से ही साध्यकी सिद्धि हो जाती है। अतः उसके लिए दृष्टान्तादिकका प्रयोग कोई फलवाला नहीं है।

इसी कारणसे पक्षका प्रयोग सफल है, यह दिखलानेके लिए उत्तरसूत्र कहते है -

"तेन पक्षस्तदाधार सूचनायोक्तः"।।94।।

सूत्रान्वय :- **तेन** = इसीकारणसे, **पक्षः** = पक्षका, **तत्** = उसका, **आधारः** = आधारकी, **सूचनाय** = सूचनाके लिए, **उक्तः** = कहा गया है,

सूत्रार्थ - साधनसे व्याप्त साध्यरूप आधारकी सूचनाके लिए पक्ष कहा जाता है।

संस्कृतार्थ - साध्याविनाभाविनो हेतोः प्रयोगादेव साध्यसिद्धिः जायते अतस्तस्य हेतोः आधारदर्शनार्थमेव पक्षप्रयोगः आवश्यकः।।94।।

संस्कृत टीकार्थ - जब साध्यके विना नहीं होने वाले हेतुके प्रयोगसे ही साध्यकी सिद्धि हो जाती है, तब उस हेतु (साधन) का स्थान दिखानेके लिए पक्षका प्रयोग करना आवश्यक है।

विशेष - जो पुरुष साध्य व्याप्त साधनको नहीं जानते है, उनके लिए विज्ञजन दृष्टान्तसे तद्भावको या हेतुभावको कहते है। किन्तु विद्वानोंके लिए तो केवल एक हेतु ही कहना चाहिए।

इस प्रकार अनुमानके स्वरूपका प्रतिपादन करके अब आचार्यभगवन् क्रमप्राप्त आगम के स्वरूपका निरुपण करनेके लिए उत्तरसूत्र कहते है -

"आप्तवचनादि निबन्धनमर्थज्ञानमागमः"।।95।।

सूत्रान्वय :- आप्त वचनादि = आप्तके वचनआदिके, **निबन्धनम्** = निमित्तसे होनेवाले, **अर्थज्ञानम्** = पदार्थज्ञानको, **आगमः** = आगम।

सूत्रार्थ - आप्तके वचनादिके निमित्तसे होनेवाले अर्थज्ञानको आगम कहते है।

संस्कृतार्थ - यो यत्रावञ्चकः स तत्राप्तः। आप्तस्य वचनम् आप्त वचनम्। आदिशब्देनाऽगुल्यादिसंज्ञा परिग्रहः। आप्तवचनादिर्यस्य तत् तथोक्तम्। आप्त वचनादि निबन्धनं कारणं यस्य तत् तथोक्तम्। तथाचाप्तवचनादि कारणत्वे सति अर्थज्ञानत्वं नाम आगमत्वमिति। अर्थज्ञानमित्येतादुच्यमाने प्रत्यक्षादौ अति व्याप्तिः। अत उक्तं वाक्यनिबन्धनमिति। वाक्यनिबन्ध- नमर्थज्ञानमागमः इत्युच्चमानेऽपि यादृच्छिकसंभावादिषु विप्रलम्भजन्यवाक्येषु सुप्तोन्मत्तादिजन्य वाक्येषु वा नदीतीर फल संसागादिज्ञानेषु अतिव्याप्तिः अतः उक्तम् आप्तेति। आप्तवाक्य निबन्धज्ञानमित्युच्चमानेऽपि आप्तवाक्यकर्मके श्रावण प्रत्यक्षेऽतिव्याप्तिः अतः उक्तमर्थेति।।95।।

संस्कृत टीकार्थ - जहाँ जो अवञ्चक है, वह वहाँ आप्त है, आप्तका वचन आप्तवचन है। आदिशब्द से अङ्गुली आदिके संकेत ग्रहण करना चाहिए। आप्तके वचनआदि जिस अर्थज्ञानके कारण है, वह आगमप्रमाण है। आप्त शब्दके ग्रहणसे अपौरुषेय वेदका निराकरण किया जाता है। "अर्थज्ञान" इस पदसे अन्यापोह ज्ञानका तथा अभिप्रायके सूचक शब्द

सन्दर्भका निराकरण किया गया है।

अर्थज्ञान आगम है, यह कहने पर प्रत्यक्षादिमें अतिव्याप्ति हो जायेगी अत: उसके परिहारके लिए "वाक्य निबन्धनम्" कहा गया है। वाक्य निबन्धनम् अर्थज्ञान आगम है, ऐसा कहने पर भी अपनी इच्छासे कुछ भी बोलने वाले, ठगनेवाले लोगोंके वाक्य सोए हुए तथा उन्मत्त पुरुषोंके वचनोंसे उत्पन्न होने वाले अर्थज्ञानमें लक्षणके चले जाने अति व्याप्ति दोष होगा। आप्तवचन जिसका कर्म है ऐसे श्रावण प्रत्यक्षमें अतिव्याप्ति दोष हो जायेगा। अत: उसके निराकरणार्थ "अर्थ" विशेषण दिया है। आप्तवचन जिसमें कारण है ऐसा अर्थज्ञान आगम है, ऐसा कहे जाने पर परार्थानुमानमें अतिव्याप्ति हो जायेगी, अत: उसका परिहार करने के लिए "आदि" पद ग्रहण किया है।

नोट :- सूत्रमें आदि शब्द से अंगुली आदि का संकेत ग्रहण करना है।

वचन या शब्दसे वास्तविक अर्थबोध होनेका कारण -

"सहज योग्यता संकेतवशाद्धि शब्दादयो वस्तु प्रतिपत्तिहेतव:"।।96।।

सूत्रान्वय :- **सहजयोग्यता** = स्वभावभूत योग्यताके होनेपर, **संकेतवशात्** = संकेत के वशसे, **शब्दादय:** = शब्दादि, **वस्तु** = वस्तु, **प्रतिपत्ति** = ज्ञान करानेके लिए, **हेतव:** = कारण है, **हि** = क्योंकि।

सूत्रार्थ - सहज योग्यताके होनेपर संकेतके वशसे शब्दादि वस्तुका ज्ञान कराने के कारण है।

संस्कृतार्थ - सहजा स्वभाव संभूता, योग्यता शब्दार्थयोर्वाच्यवाचक शक्ति तस्याम् संकेतस्तस्य वशास्तस्मात् तथा च शब्दार्थ निष्ठावाच्यकं शक्तिसंकेत ग्रहण निमित्तेन शब्दादय: स्पष्टरीत्या पदार्थज्ञानं जनयन्ति इति भाव:।।96।।

संस्कृत टीकार्थ - सहजा स्वभावभूतता योग्यता शब्द और अर्थ की वाच्य-वाचक भावरूप शक्ति उसके होने पर संकेतके वशसे और उसी प्रकार अर्थोमें वाच्यरूप तथा शब्दोंमें वाचकरूप एक स्वाभाविक योग्यता होती है, जिसमें संकेत हो जानेसे ही शब्दादिक स्पष्टरूपसे

पदार्थज्ञान को उत्पन्न करनेमें कारण होते है यह भाव है।
विशेष - शब्द और अर्थकी वाच्य-वाचक भावरूप शक्ति, उसके होनेपर संकेतके वशसे स्पष्ट रूपसे पहले कहे गए शब्दादिक वस्तुका ज्ञान करानेमें कारण होते है।

अब शब्दार्थसे अर्थ अवबोध होने का दृष्टान्त देते है :-

"यथा मेर्वादय: सन्ति"।।97।।

सूत्रान्वय :- **यथा** = जैसे, **मेरु** = सुमेरू पर्वत, **आदय:** = आदिक, **सन्ति** = है।

सूत्रार्थ - जैसे मेरू पर्वतादिक है।
संस्कृतार्थ - यथा मेर्वादय: सन्तीत्यादि वाक्य श्रवणात् सहजयोग्यताश्रयेण हेमाद्रि प्रभृतीनां बोधो जायते तथैव सर्वत्र शब्दादर्थाविबोधो जायते।।97।।

संस्कृत टीकार्थ - जैसे मेरू पर्वत आदिक होते है इस प्रकार का वाक्य सुननेसे सहज योग्यताके आश्रयसे हेम आदि पर्वतोंका ज्ञान होता है उसी प्रकार ही सभी जगह शब्दसे पदार्थोका ज्ञान हो जाता है।

।।इति तृतीय परिच्छेद: समाप्त:।।

(इस प्रकार तीसरा परिच्छेद पूर्ण हुआ)

-: हेतुओंके बाईस भेदोंका चार्ट :-

उपलब्धिहेतु 12 भेद

अविरुद्धोपलब्धि
(विधिसाधक 6 भेद)

1. अविरुद्धव्याप्योपलब्धि हेतु
2. अविरुद्धकार्योपलब्धि हेतु
3. अविरुद्धकारणोपलब्धि हेतु
4. अविरुद्धपूर्वचरोपलब्धि हेतु
5. अविरुद्धउत्तरचरोपलब्धि हेतु
6. अविरुद्धसहचरोपलब्धि हेतु

विरुद्धोपलब्धि
(प्रतिषेधसाधक 6 भेद)

1. विरुद्धव्याप्योपलब्धि हेतु
2. विरुद्धकार्योपलब्धि हेतु
3. विरुद्धकारणोपलब्धि हेतु
4. विरुद्धपूर्वचरोपलब्धि हेतु
5. विरुद्धउत्तरचरोपलब्धि हेतु
6. विरुद्धसहचरोपलब्धि हेतु

अनुपलब्धिहेतु 10 भेद

अविरुद्ध की अनुपलब्धि
(प्रतिषेधसाधक 7 भेद)

1. अविरुद्धस्वभावानुपलब्धि हेतु
2. अविरुद्धव्यापकानुपलब्धि हेतु
3. अविरुद्धकार्यानुपलब्धि हेतु
4. अविरुद्धकारणानुपलब्धि हेतु
5. अविरुद्धपूर्वचरानुपलब्धि हेतु
6. अविरुद्धउत्तरचरानुपलब्धि हेतु
7. अविरुद्धसहचरानुपलब्धि हेतु

विरुद्ध अनुपलब्धि
(विधिसाधक 3 भेद)

1. विरुद्धकार्यानुपलब्धि हेतु
2. विरुद्धकारणानुपलब्धि हेतु
3. विरुद्धस्वभावनुपलब्धि हेतु

"अथ प्रमाणविषय निर्णय"

अथ चतुर्थः परिच्छेदः

प्रमाणके स्वरूप और संख्याकी विप्रतिपत्तिका निराकरण करके आचार्य भगवन् अब विषयकी विप्रतिपत्तिका निराकरण करनेके लिए उत्तरसूत्र कहते है :-

"सामान्यविशेषात्मा तदर्थो विषयः"।।1।।

सूत्रान्वय :- सामान्य = सामान्य, **विशेष** = विशेष, **आत्मा** = स्वरूप, **तदर्थः** = उस प्रमाणसे गृहीत पदार्थ, **विषयः** = विषय।

सूत्रार्थ - सामान्य और विशेष स्वरूप वस्तु प्रमाणका विषय है।

संस्कृतार्थ - अनुगत प्रतीति विषयत्वं नाम सामान्यत्वम्। व्यावृत्तप्रतीति विषयत्वं नाम विशेषत्वम्, सामान्यं च विशेषश्चेति सामान्यविशेषौ, तौ आत्मानौ यस्य सः सामान्यविशेषात्मा, स तस्य प्रमाणस्य ग्राह्योऽर्थःइति तदर्थः। तथा च सामान्यविशेषोभय धर्मस्वरूपः प्रमाणग्राह्यः पदार्थः प्रमाण गोचरो भवतीति भावः।।1।।

संस्कृत टीकार्थ - अनुगत (साथ-साथ रहने वालोंमें) ज्ञानके विषयपने का नाम सामान्य है। व्यावृत्त (यह उससे भिन्न है) ज्ञानके विषयपनेका नाम विशेष है। "सामान्यं च विशेषश्चेति सामान्यविशेषौ" (यहाँ द्वन्द्व समास है) सामान्य और विशेष वे दोनों है आत्मा जिसकी वह सामान्यविशेषात्मा (यहाँ बहुव्रीहि समास है) उस प्रमाणके ग्राह्य अर्थ को तदर्थ कहते है। और उसी प्रकार सामान्य और विशेष उभय धर्म स्वरूप पदार्थ प्रमाणसे ग्राह्य है अतः प्रमाणका विषय होता है, यह भाव है।

प्रश्न 263-इस सूत्रमें विशेषण कौन और विशेष्य कौन है?

उत्तर - सामान्यविशेषात्मक = विशेषण, विशेष्य - पदार्थ।

प्रश्न 264 -इस सूत्रमें तीन पदोंका ग्रहण क्यों किया गया है?

उत्तर - केवल सामान्य, केवल विशेष और स्वतंत्र सामान्य विशेष की प्रमाण विषयताके प्रतिषेधके लिए है।

विशेषार्थ - अद्वैतवादी और सांख्य मतावलम्बी पदार्थकी सामान्यात्मक

ही मानते है। बौद्ध पदार्थको विशेष रूपही मानते है। नैयायिक वैशेषिक सामान्यको एक स्वतंत्र पदार्थ और विशेषको एक स्वतंत्र पदार्थ मानते है और उनका द्रव्यके साथ समवाय संबंध मानते है। इस प्रकारके विषयभूत पदार्थ के विषयमें जो मतभेद है, उनके निराकरणके लिए सूत्रमें सामान्य-विशेषात्मा ऐसा विशेषण पदार्थके लिए दिया गया है। जिसका अभिप्राय यह है कि पदार्थन केवल सामान्यरूप है, न केवल विशेषरूप है, और न केवल स्वतंत्र उभयरूप है, अपितु उभयात्मक है। अब आचार्य भगवन् अनेकान्तात्मक वस्तुके समर्थनके लिए दो हेतु कहते है :-

"अनुवृत्तव्यावृत्त प्रत्ययगोचरत्त्वात् पूर्वोत्तराकार परिहाराव्याप्ति स्थिति लक्षण परिणामेनार्थक्रियोपपत्तेश्च"।।2।।

सूत्रान्वय :- अनुवृत्त = अनुवृत्त, **व्यावृत्त** = व्यावृत्त, **प्रत्यय** = ज्ञान, **गोचरत्वात्** = विषय होनेसे, **पूर्व** = पहला, **उत्तर** = बादका, **आकार** = आकृति, **परिहार** = निराकरण, **अवाप्ति** = प्राप्ति, **स्थितिलक्षण** =ध्रुवरूपता, **परिणामेन** = परिणामके साथ, **अर्थक्रिया** = अर्थक्रियाकी, **उपपत्ते:** = प्राप्ति होनेसे, **च** = और।

सूत्रार्थ - वस्तु अनेकान्तात्मक है, क्योंकि वह अनुवृत्त और व्यावृत्त ज्ञानकी विषय है। तथा पूर्व आकार का परिहार और उत्तर आकार की प्राप्ति तथा स्थिति लक्षण परिणाम के साथ उसमें अर्थक्रिया पायी जाती है।।2।।

संस्कृतार्थ - अनुवृत्ताकारो हि गौ: गौ: गौरित्यादिप्रत्यय:। व्यावृत्ताकार: श्याम: शबल: इत्यादि प्रत्यय:। पदार्थानां कार्यमर्थ क्रिया। वस्तुत: पूर्वाकार विनाश: उत्तराकारावाप्तिश्चेत्युभयावस्थासहितस्थिति: परिणाम:।

अनुवृत्तञ्च व्यावृत्तञ्च तौ च प्रत्ययौ, तयो: गोचर: तस्य भावस्तत्त्वं तस्मात्। पूर्वोत्तराकारयो: यथासंख्येन परिहारावाप्ति: ताभ्यां स्थिति: सैव लक्षणं यस्य स: चासौ परिणामश्च, तेनार्थक्रियाया: उपपत्ति: तस्या:। तथा च सादृश्य व्यावृत्तात्मक ज्ञान विषयत्वात् पूर्वोत्तराकारपरित्याग प्राप्ति सहचरित ध्रौव्य लक्षण परिणत्या अर्थक्रिया सिद्धेश्च वस्तु सामान्य विशेषात्मकम् अनेकधर्मात्मकं वासिद्धयति।।2।।

संस्कृत टीकार्थ - गौ, गौ, इस प्रकार अन्वयरूप (यह वही है ऐसे) ज्ञानको अनुवृत्त प्रत्यय कहते है। तथा यह काली है, यह चितकबरी

है, इत्यादि भिन्न-भिन्न (यह वह नही है) प्रतीतिको व्यावृत्त कहते है। पदार्थोके कार्यको अर्थक्रिया कहते है। वस्तुत: पदार्थके पूर्वाकर का विनाश और उत्तराकारका प्रादुर्भाव इन दोनों सहित स्थितिको परिणाम कहते है।

अनुवृत्त और व्यावृत्त इनमें द्वन्द्वसमास है और प्रत्ययके साथ कर्म- धारय समास है इन दो प्रकारके प्रत्ययों का विषय होना, उसके भावको तत्त्व कहते हैं। पूर्वाकार और उत्तराकार इन दोनों पदोंका यथाक्रम से परिहार और अवाप्ति इन दोनों पदोंके साथ सम्बन्ध करना चाहिए। इन दोनोंके साथ जो स्थिति है, है, वही लक्षण जिस परिणामका है, उस परिणाम से अर्थक्रिया बन जाती है। इसलिए वस्तु सामान्य विशेषात्मक अथवा अनेक धर्मात्मक रूप सिद्ध हो जाती है।

प्रश्न 265 - इस सूत्रमें किसे सिद्ध करनेके लिए कितने हेतु दिए है?

उत्तर - पदार्थ सामान्य विशेषात्मक, द्रव्यपर्यायात्मक या अनेक धर्मात्मक है इसे सिद्ध करने के लिए आचार्य भगवन् ने इस सूत्रमें दो हेतु दिए है - 1. पदार्थ अनुवृत्त और व्यावृत्तप्रत्ययका विषय है, 2 उत्पादव्यय- ध्रौव्यात्मकतासे पदार्थकी सिद्धि की गई है।

अब प्रथम कहे गए सामान्यके भेद दिखलाते हुए आचार्य उत्तरसूत्र कहते है:-

"सामान्यं द्वेधा तिर्यगूर्ध्वता भेदात्"।।3।।

सूत्रान्वय :- सामान्यं = सामान्य, **द्वेधा** = दो प्रकार, **तिर्यक्** = तिरछा, **ऊर्ध्वता** = ऊर्ध्वपना, **भेदात्** = भेदसे।

सूत्रार्थ - सामान्यके दो भेद है तिर्यक् सामान्य और ऊर्ध्वपना सामान्य।

संस्कृतार्थ - तिर्यक्सामान्यं ऊर्ध्वता सामान्यञ्चेति सामान्यस्य द्वौ भेदौ स्त:।

संस्कृत टीकार्थ - तिर्यक् सामान्य और ऊर्ध्वपना सामान्यके भेदसे सामान्यके दो भेद हैं।

अब प्रथम भेद तिर्यक् सामान्यको उदाहरण सहित कहते है:-

"सदृशपरिणामस्तिर्यक् खण्डमुण्डादिषु गोत्ववत्"।।4।।

सूत्रान्वय :- सदृशपरिणाम: = सदृश परिणामको, **तिर्यक्** = तिर्यक्,

खण्ड = खण्डी, **मुण्डादिषु** = मुण्डीआदिबोंमें, **गोत्वत्** = गायोंमें गोपना।

सूत्रार्थ - सदृश परिणामको तिर्यक् सामान्य कहते है। जैसे खण्डी, मुण्डी आदि गायोंमें गोपना।

संस्कृतार्थ - सदृशश्यात्मको धर्मस्तिर्यक् सामान्यं प्रोच्यते, यथा खण्डमुण्डादिषु गोषु गौत्वम्।

संस्कृत टीकार्थ - सामान्य परिणमनरूप धर्मको तिर्यक्सामान्य कहते है जैसे खण्डी मुण्डी आदि गायों में गोपना।

विशेषार्थ - नित्य और एकरूप गोत्व आदिके क्रम और यौगपद्यसे अर्थक्रिया का विरोध है तथा एकसामान्यके एक व्यक्तिमें साकल्यरूपसे रहनेपर अन्यमें रहना संभव नहीं है अतः अनेक और सदृशपरिणमनही सामान्य है। योग लोग सामान्यको नित्य और एकही मानते है आचार्य भगवन्ने सामान्यको नित्य माननेमें यह दूषण दिया है कि नित्य पदार्थमें क्रमसे या युगपत् अर्थक्रिया नहीं बन सकती है। अतः उसे सर्वथा नित्य नहीं, किन्तु कथंचित् नित्य मानना चाहिए। तथा सामान्यको एक माना जाए तो यह दूषण आयेगा कि वह गोत्वादि रूप सामान्य जब एक काली या धवली गायमें पूर्णरूपसे रहेगा तब अन्यगायों में उसका रहना असंभव होनेसे अभाव मानना पड़ेगा। अतः वह एक नहीं, किन्तु अनेक है और सदृश परिणाम ही उसका स्वरूप है।

अब आचार्य भगवन् सामान्यके दूसरे भेदको दृष्टान्त केसाथ कहते है :-

"परापरविर्वतव्यापिद्रव्यमूर्ध्वता मृदिव स्थासादिषु"।।5।।

सूत्रान्वय :- **पर** = पूर्व, **अपर** = उत्तर, **विवर्त** = पर्याय, **व्यापि** = रहने वाले, **द्रव्यम्** = द्रव्यको, **ऊर्ध्वता** = ऊर्ध्व सामान्य, **मृदिव** = जैसे मिट्टीमें, **स्थासादिषु** = स्थास आदि पर्यायोंमें।

सूत्रार्थ - पूर्वऔर उत्तर पर्यायोंमें रहने वाले द्रव्यको ऊर्ध्वता सामान्य कहते है। जैसे - स्थास, कोश, कुशूल आदिमें मिट्टीमें रहती है।
नोट :- यहाँ सामान्य पदकी अनुवृत्ति है।

संस्कृतार्थ - परेऽपरे च ये विवर्तास्तेषु व्याप्नोति इति परापरविवर्तव्यापि। तथा च पूर्वोत्तर पर्यायव्यापकत्वे सति द्रव्यत्वं नाम ऊर्ध्वता सामान्यम्। यथा स्थासकोश कुशूलादिषु पर्यायेषु व्यापकत्वं मृत्तिका द्रव्यम्।।5।।

संस्कृत टीकार्थ - "परेऽपरे च ये विवर्तास्तेषु व्याप्नोति इति परापविवर्तव्यापि" यहाँ पर द्वन्द्वगर्भा कर्मधारय समास है कि परमें और अपरमें व्याप्य होकर रहने वाला परापर विवर्तव्यापि है। और इसी तरहपूर्व और उत्तरपर्यायमें व्यापकपनेसे होने पर द्रव्यपने का नाम ऊर्ध्वता सामान्य है जैसे - स्थास, कोश,कुशूल आदि पर्यायोंमें व्यापकपना मिट्टी द्रव्यका है।

प्रश्न 266-वह वस्तु क्या है?

उत्तर - द्रव्य।

प्रश्न 267-वह द्रव्य कैसा है?

उत्तर - वह द्रव्य परापर विर्वत व्यापि इस विशेषणसे विशिष्ट है।

प्रश्न 268-'परापरविर्वतव्यापि'' इस पदका क्या अर्थ है?

उत्तर - पूर्वापर कालवर्ति या त्रिकालवर्ती पर्यायें अनुयायी।

अब विशेष भी दो प्रकार का है, यह दिखलाते है :-

"विशेषश्च"।।6।।

सूत्रान्वय :- च = और, **विशेषः** = विशेष,

सूत्रार्थ - विशेषके भी पर्याय और व्यतिरेक दो भेद है।

नोट - सूत्रमें द्वेधा पदका अधिकार से संबंध किया गया है।

अब विशेषके प्रथम भेदको कहते हैः-

"पर्यायव्यतिरेकभेदात्"।।7।।

सूत्रान्वय एवं **सूत्रार्थ** = पर्याये और व्यतिरेक के भेदसे विशेष दो प्रकार का है।

पर्याय विशेषका स्वरूप वा उदाहरण कहते हैः-

"एकस्मिन्द्रव्ये क्रमभाविनः परिणामाः पर्यायाः आत्मनि हर्षविषादादिवत्"।।8।।

सूत्रान्वय - **एकस्मिन् द्रव्ये** = एक द्रव्यमें, **क्रमभाविनः** = क्रमसे होने वाले, **परिणामः** = परिणामों को, **पर्यायाः** = पर्याय कहते है, **आत्मिन** =आत्मामें, **हर्षविषादादिवत्** = हर्ष और विषादके समान।

सूत्रार्थ - एक द्रव्यमें क्रमसे होने वाले परिणामोंको पर्याय कहते है जैसे आत्मामें हर्ष विषाद आदिक।

संस्कृतार्थ - एकस्मिन्द्रव्ये क्रमश: समुत्पद्यमाना: भावा पर्यायविशेषा: प्रोच्यन्ते (यथात्मनि हर्ष विषादायो भावा:)।।8।।

संस्कृत टीकार्थ - एकद्रव्यमें क्रमसे होने वाले भावोंको पर्यायविशेष कहा जाता है। जैसे आत्मामें हर्ष विषाद आदिक भाव।

विशेषार्थ - यहाँ पर द्रव्य(आत्मद्रव्यअपने शरीरके प्रमाण मात्रही है, न व्यापक है और न वटकणिकामात्र है और न शरीराकार से परिणत भूतोंके समुदाय रूप है।

अब विशेष के दूसरे भेदको बताते हैं :-

"अर्थान्तर विसदृश परिणामो व्यतिरेको गोमहिषादिवत्"।।9।।

सूत्रान्वय - **अर्थ** = पदार्थ, **अन्तर** = एककी अपेक्षा दूसरेमें, **गत:** = प्राप्त, **विसदृश:** = विसदृश, **परिणाम:** = परिणाम, **व्यतिरेक** = व्यतिरेक, **गो**= गाय, **महिषादि** = भैसादि, **वत्** = सामान्य।

सूत्रार्थ - एकपदार्थ की अपेक्षा अन्य पदार्थमें रहने वाले विसदृश परिणामको व्यतिरेक कहते हैं जैसे - गाय, भैस, आदिमें विलक्षणपना।

संस्कृतार्थ - अन्ये अर्था: अर्थान्तराणि, तानि गत: इत्यर्थान्तरगत:। विसदृशश्चासौ परिणामो विसदृश परिणाम:। तथा च भिन्न-भिन्न पदार्थ निष्ठत्वे सति। विलक्षण धर्मत्वं नाम व्यतिरेकत्त्वम्। यथा पारस्परिक वैलक्षण्य विशिष्टा गोमहिषादयश्त्तिर्यञ्च:।।9।।

संस्कृत टीकार्थ - अन्ये अर्था: अर्थान्तराणि (अन्य पदार्थोमें), तानि गत: (उनको प्राप्त) इसप्रकार अर्घान्तर अत शब्द क्या है। और इसी उसी प्रकार भिन्न-भिन्न पदार्थोके स्थितत्व होनेपर विलक्षण धर्मपनेका नाम व्यतिरेक है। जैसे - पारस्परिक विलक्षणता गाय और भैस आदि त्रिर्यञ्च के पायी जाती है।

।।इति चतुर्थ: परिच्छेद: समाप्त:।।

(इस प्रकार चतुर्थ परिच्छेद पूर्ण हुआ)

"अथ प्रमाण फल निर्णय"

अथ पञ्चमः परिच्छेदः

अब आचार्य भगवन् प्रमाणके फल की विप्रतिपत्तिके निराकरण के लिए उत्तरसूत्र कहते है :-

"अज्ञाननिवृत्तिर्हानोपादानोपेक्षाश्च फलम्"।।1।।

सूत्रान्वय :- अज्ञाननिवृत्ति = अज्ञानकी निवृत्ति, **हान** = त्याग, **उपादान** = ग्रहण, **उपेक्षा** = उदासीनता, **च** = और, **फलम्** = फल।

सूत्रार्थ - अज्ञानकी निवृत्ति, त्याग, ग्रहण और उदासीनता ये प्रमाणके फल है।

संस्कृतार्थ - अज्ञानस्य निवृत्तिः अज्ञाननिवृत्तिः। प्रमेयाज्ञान निरास इत्यर्थः। हानं च उपादानं च उपेक्षा चेति हानोपादानोपेक्षाः त्याग ग्रहणानादराः इत्यर्थः। तद्यथा प्रमाणस्य फलं द्विविधं, साक्षात्फलं परम्परा फलं चेति। तत्र साक्षात्फलम् अज्ञाननिवृत्तिः परम्परा फलं च क्वचित् वस्तुत्यागः, क्वचितवस्तु गृहणं, क्वचित् वस्तु अनादरो वा। त्यागादीना प्रमेय निश्चयोत्तरकाल भावित्वात्।।1।।

संस्कृत टीकार्थ - अज्ञानकी निवृत्ति अज्ञाननिवृत्ति (षष्ठी तत्पुरुष) प्रमेय संबंधी अज्ञानका निराकरण हेतु यह अर्थ लेना है। हानं च उपादान च उपेक्षा चेति हानोपादानपेक्षाः यहाँ द्वन्द्व समास है। हान का अर्थ त्याग, उपादान का अर्थ ग्रहण उपेक्षाका अर्थ अनादर है, अतः प्रमाणका फल दो प्रकार है - साक्षात्फल और परम्पराफल, किसी वस्तुका त्याग, किसी वस्तुका ग्रहण और किसी वस्तुका अनादर त्यागादि का प्रमेय के निश्चय करनेके उत्तरकालमें होते है।

प्रश्न 269-फल कितने प्रकारका होता है?

उत्तर - दो प्रकार का - साक्षात्फल और परम्पराफल।

प्रश्न 270-साक्षात् फल किसे कहते है?

उत्तर - वस्तुके जाननेके साथही तत्काल होने वाले फल को साक्षात् फल कहते है।

प्रश्न 271-परम्पराफल किसे कहते है?

उत्तर - वस्तुके जाननेके पश्चात् परम्परासे प्राप्त होने वाले फलको

परम्परा फल कहते है।

प्रश्न 272-हान किसे कहते है?

उत्तर - जाननेके पश्चात् अनिष्ट या अहितकर वस्तु के परित्याग करने को हान कहते है।

प्रश्न 273-उपादान किसे कहते है?

उत्तर - इष्ट या हितकर वस्तुके ग्रहण को उपादान कहते है।

प्रश्न 274-उपेक्षा किसे कहते है?

उत्तर - राग-द्वेष दूर होनेके बाद जो उदासीनता रूप भाव है उसे उपेक्षा कहते है।

यह दोनोंही प्रकार का फल प्रमाणसे भिन्न ही है ऐसा यौग मानते है। प्रमाणसे फल अभिन्न नही है, ऐसा बौद्ध मानते है। इन दोनों मतो के निराकरण के साथ अपने मतकी व्यवस्था करनेके लिए अगला सूत्र कहते है:-

"प्रमाणादभिन्नं च"।।2।।

सूत्रान्वय :- प्रमाणात् = प्रमाणसे, **अभिन्नं** = अभिन्न, **च** = और, **भिन्नं** = भिन्न।

सूत्रार्थ - फलप्रमाणसे कथञ्चित् अभिन्न है और कथञ्चित भिन्न है।

संस्कृतार्थ - तत्प्रमाण फलं संज्ञास्वरूपादिभेदापेक्षया कथञ्चित् प्रमाणात् भिन्नं विद्यते। प्रमाणस्यकरणरूपत्त्वात्, प्रमितेश्च क्रियारूपत्वादिति। कथञ्चिच्चाभिन्नं विद्यते।।2।।

संस्कृत टीकार्थ - वह प्रमाणका फल संज्ञा, स्वरूपादि भेदकी अपेक्षासे कथञ्चित् प्रमाणसे भिन्न है। प्रमाणका कारण रूपहोनेसे प्रमिति की क्रिया रूपहोने से कथञ्चित अभिन्न है।

अब कथञ्चित् अभेदका समर्थन करनेके लिए हेतुरूप सूत्र कहते है :-

"यः प्रमिमीते स एव निवृत्ताज्ञानो जहात्यादत्ते उपेक्षते चेति प्रतीतेः"।।3।।

सूत्रान्वय :- यः = जो, **प्रमिमीते** = जानता है, **सः** = वह, **एव** = ही, **निवृत्ताज्ञानः** = अज्ञान निवृत्त होता है, **जहाति** = त्यागता है, **आदत्तेः** = ग्रहण करता है, **उपेक्षते** = उपेक्षा करता है, **च** = और, **इति** = इस प्रकार, **प्रतीतेः** = प्रतीति से सिद्ध है।

सूत्रार्थ - जो (जानने वाला) प्रमाणसे पदार्थको जानता है, उसीका अज्ञान निवृत्त होता है, अप्रशस्त पदार्थकात्याग करताहै, इष्टका ग्रहण करता है,
इष्टानिष्ट प्रयोजकका साधक जो प्रसाधक नहीं है ऐसे (उपेक्षणीय) पदार्थकी उपेक्षा है, इस प्रकार प्रतीतिसे सिद्ध है।

संस्कृतार्थ - तद्धि प्रमाणफलम् एक प्रमातृ सम्बन्धापेक्षया कथञ्चित् प्रमाणादभिन्नं विद्यते। तद्यथा यः आत्मा पदार्थ जानाति, स एव पदार्थविषयिका ज्ञान रहितः सन् पदार्थ त्यजति, ग्रहणाति, उपेक्षते चेति प्रतीतेः।

संस्कृत टीकार्थ - और ही प्रमाणका फल प्रमाता (ज्ञाता) की अपेक्षासे कथञ्चित् प्रमाणसे अभिन्न है, जो आत्मा पदार्थको जानती है, वही पदार्थ विषयक अज्ञानसे रहित होती हुई पदार्थको त्यागती है, ग्रहण करती है और उपेक्षा करती है इस प्रकार प्रतीति होती है।

विशेष - इस सूत्रका भाव यह है कि जिस ही आत्माकी प्रमाणके आकार से परिणति होती है, उसके ही फल रूपसे परिणाम होता है। इस प्रकार एक प्रमाताकी अपेक्षा प्रमाण और फलमें अभेद है। करण और क्रियारूप परिणामके भेदसे प्रमाण और फलमें भेद है। इस भेद की सिद्धि सामर्थ्य होनेके कारण कथन नहीं किया है।

।।इति पञ्चमः परिच्छेदः समाप्तः।।

(इस प्रकार पाँचवा परिच्छेद पूर्ण हुआ)

"अथ आभास स्वरूप प्रकरणम्"

अथ षष्ठः परिच्छेदः

अब पहले कहे गए प्रमाणके स्वरूप, संख्या, विषय और फल इन चारों के अभासोंको कहते है :-

"ततोऽन्यत्तदाभासम्"।।1।।

सूत्रान्वय :- ततः = उसमें, **अन्यत्** = अन्य, **तदाभासम्** = तदाभास है।

सूत्रार्थ - पहले कहे गए प्रमाणके भिन्न प्रमाणाभास है।

संस्कृतार्थ - पूर्वोक्त प्रमाणस्य स्वरूप संख्याविषय फलेभ्यो विपरीतानि (भिन्नानि) स्वरूप सख्या विषय फलानि स्वरूपाभास संख्याविषय विषयाभासाः प्रोच्यते।।1।।

संस्कृत टीकार्थ - पहले कहे गए प्रमाणके स्वरूप, संख्या, विषय और फलसे विपरीत फलाभास कहे जाते हैं।

प्रश्न 275-तदाभास किसे कहते है?

उत्तर - यथार्थस्वरूपसे रहित होने पर भी उन जैसे प्रतिभासित होने वाले स्वरूपादिको तदाभास कहते हैं।

प्रश्न 276-स्वरूपाभास किसे कहते है?

उत्तर - प्रमाणके स्वरूपसे रहित विपरीत आभासको स्वरूपाभास कहते है।

प्रश्न 277-सख्याभास किसे कहते है?

उत्तर - प्रमाणको यथार्थ संख्यासे विपरीत अयाथार्थसंख्याको संख्याभास कहते है।

प्रश्न 278-विषयाभास किसे कहते है?

उत्तर - प्रमाण के वास्तविक विषय से विपरीत विषयको फलभास कहते है।

प्रश्न 279-फलाभास किसे कहते है?

उत्तर - प्रमाणके वास्तविक फल से विपरीत फलको विषयाभास कहते है।

अब क्रम प्राप्त स्वरूपाभास को कहते है :-

"अस्वसंविदित गृहीतार्थ दर्शनसंशयादयः प्रमाणाभासः"।।2।।

सूत्रान्वय :- अस्वसंविदित = अस्वसवेदी, **गृहीतार्थ** = गृहीत अर्थ, **दर्शन** = दर्शन, **संशयादयः** = सशय आदिको, **प्रमाणाभासः** = प्रमाणाभास कहते है।

सूत्रार्थ - अस्वसंविदित, गृहीतार्थ, दर्शन, संशय, विपर्यय और अनध्यवसाय को प्रमाणाभास कहते है।

संस्कृतार्थ - अस्वसंविदितं, गृहीतार्थज्ञानं, दर्शनं, संशयः, विपर्ययः, अनध्यव- सायश्चेति सप्त प्रमाणाभासाः प्रोच्यन्ते।।2।।

संस्कृत टीकार्थ - अस्वसंविदितको, गृहीतार्थज्ञानको, दर्शनको, संशयको, विपर्ययको और अनध्यवसाय इस प्रकार सात प्रमाणाभास कहे गए हैं।

नोट :- अस्वसविदित, गृहीतार्थ, दर्शन और सशय है आदि में जिनके ऐसे संशयादि इन सभीका द्वन्द्व समास करना चाहिए। आदि शब्दसे विपर्यय और अनध्यवसाय का भी ग्रहण करना है।

प्रश्न 280-अस्वसंविदितज्ञान किसे कहते हैं?

उत्तर - जो ज्ञानअपने आपके द्वारा अपने स्वरूपको नहीं जानता है उसे अस्वसंविदित ज्ञान कहते हैं।

प्रश्न 281-गृहीतार्थज्ञान किसे कहते है?

उत्तर - किसी यथार्थज्ञानके द्वारा पहले जाने हुए पदार्थके पुनः जानने वाले ज्ञानको गृहीतार्थ ज्ञान कहते हैं।

प्रश्न 282-निर्विकल्प ज्ञान किसे कहते हैं?

उत्तर - यह घट है, यह पट है, इत्यादि विकल्प से रहित निर्विकल्परूप ज्ञानको दर्शन कहते हैं।

(विस्तार - प्रमेयरत्नमाला देखें)

अब इन उपर्युक्त अस्वसंविदित ज्ञानादिक के प्रमाणाभासता क्यों है इस प्रश्नका उत्तर देते हुए आचार्य भगवन् सूत्र कहते है :-

"स्वविषयोपदर्शकत्वाभावात्"।।3।।

सूत्रान्वय :- स्व = अपना, **विषयोपदर्शकत्व** = विषयके निश्चयपनेका, **अभावात्** = अभाव होनेसे।

सूत्रार्थ - क्योंकि वे अपने विषयका निश्चय नहीं करते है।

संस्कृतार्थ - अस्वसंविदितादय: स्वस्वविषयनिश्चायकत्वाभावात् प्रमाणाभास: प्रोच्यन्ते।।3।।

संस्कृत टीकार्थ - अस्वसंविदित आदि अपने विषयके निश्चायकपनेका अभाव होनेसे प्रमाणाभास कहे जाते हैं।

अब आचार्य भगवन् ऊपर कहे गए प्रमाणाभासोंके यथाक्रमसे दृष्टान्त कहते है :

"पुरुषान्तरपूर्वार्थगच्छत्तृणस्पर्श स्थाणु पुरुषादि ज्ञानवत्"।।4।।

सूत्रान्वय :- पुरुषान्तर = दूसरे पुरुषका, **पूर्वार्थ** = गृहीतार्थ, **गच्छत्** = जाते हुए पुरुषके, **तृण स्पर्श** = तृण (घास, तिनका) स्पर्श, **स्थाणुपुरुषादि** = स्थाणु में पुरुषादिके, **ज्ञानवत्** = ज्ञानके समान।

सूत्रार्थ - दूसरे पुरुषका ज्ञान, ग्राहीत गृाहीज्ञान, चलते हुए पुरुषके तृण स्पर्शी ज्ञानके समान स्थाणु है या पुरुष ऐसे संशयादि ज्ञान प्रमाणाभास है।

नोट - पुरुषान्तरं च पूर्वार्थश्च, गच्छत्तृण स्पर्शश्च, स्थाणुपुरुषादिश्च तेषा ज्ञानम् तद्वत् सूत्रमें इस प्रकार द्वन्द्वसमास कर लेना चाहिए।

संस्कृतार्थ - यथा पुरुषान्तर ज्ञानं, धारावाहिज्ञानं, गच्छत्तृणस्पर्श ज्ञानं तथा स्थाणु पुरुषज्ञानम् इत्यादिज्ञानानां स्वस्वविषय निश्चायकत्त्वाभावेन प्रमाणाभासत्त्वमुत्पद्यते तथा अस्वसंविदितादि ज्ञानानामपि प्रमाणाभसत्त्वंसिध्यति।।4।।

संस्कृत टीकार्थ- जैसे दूसरे पुरुषका ज्ञान, धारावाही ज्ञान, जाते मनुष्यके तृणस्पर्शी ज्ञान तथा स्थाणुमें पुरुषका ज्ञान इत्यादि ज्ञानोंके अपने-अपने विषयको निश्चय रूपसे नहीं जानते इसलिए प्रमाणाभास है उसी प्रकार अस्वसंविदित ज्ञानोंके भी प्रमाणाभासपना सिद्ध होता है।।4।।

अस्वसंविदित ज्ञानप्रमाण नहीं होता, क्योंकि वह वह अपने विषयका निश्चायक नहीं है जैसे - दूसरे पुरुषका ज्ञान। गृहीतार्थज्ञान प्रमाण नहीं होता क्योंकि वह अपने विषयका निश्चायक नहीं है जैसे - पूर्वमें जाने हुए पदार्थका ज्ञान। निर्विकल्प ज्ञान प्रमाण नहीं होता, क्योंकि वह अपने विषयका निश्चायक नहीं होता है। जैसे - चलते

हुए पुरुषके तृण स्पर्शादिका ज्ञान। संशयादि ज्ञान भी प्रमाण नहीं है क्योंकि अपने विषयके निश्चायक नहीं है, जैसे - स्थाणुमें पुरुष आदि का ज्ञान।।4।।

अब सन्निकर्ष वादीके प्रति दूसरा दृष्टान्त कहते है :-

"चक्षु रसयोर्द्रव्ये संयुक्त समवायवच्च"।।5।।

सूत्रान्वय :- चक्षुरसयोः = चक्षु और रसके, **द्रव्ये** = द्रव्यमें, **च** = और, **संयुक्तसमवायवत्** = सयुक्त समवायके समान।

सूत्रार्थ - द्रव्यमें चक्षु और रसके संयुक्त समवायके समान।।5।।

संस्कृतार्थ - यथा घटपटादि पदार्थेषु चक्षुरसयोः सयुक्त समवायाख्य सन्निकर्षः विद्यमानोऽपि न प्रमाण तस्याचेतनत्वेन प्रमिति क्रियाम्प्रतिकारणात्वाभावात्। किञ्च असन्निकृष्टस्यैव चक्षुषो रूपजनकत्वं दृश्यते, अप्राप्यकारित्वात् तस्य। विशेषश्चात्र न्यायदीपका ग्रन्थाद् अग्रिम लेखमालया वा विज्ञेयः।।5।।

संस्कृत टीकार्थ - जैसे घट-पटादि पदार्थोमें, चक्षु और रसमें सयुक्त समवाय नामकासन्निकर्ष विद्यमान होने पर भी प्रमाण नहीं है उसके अचेतन होनेसे प्रमिति क्रियाके प्रति करणपनेका अभाव होनेसे। और असन्निकृष्टके ही चक्षुषके रूपको उत्पन्न करते हुए देखा जाता है, अप्राप्यकारि होनेसे उस चक्षु इंद्रियके। और इसको विशेष रूपसे न्यायदीपका ग्रन्थसे आगे लेखमालामें से जानना चाहिए।।5।।

विशेष - इन्द्रिय और पदार्थके संयोगको सन्निकर्ष कहते हैं। नैयायिक सन्निकर्षके छः भेद मानते हैं- संयोग, सयुक्त-समवाय, संयुक्त-संवेत समवाय, समवाय, समवेत-समवाय और विशेषण-विशेष्य भाव।

आँखसे घडेको जानना संयोग सन्निकर्ष है। घडेके रूपको जानना सयुक्त समवाय है, क्योंकि आँखके साथ घडेका सयोग सबंध है और घड़ेके साथ रूपका समवाय संबंध है। प्रकृतमें इसीसे प्रयोजन है। आचार्य भगवन् कहते है कि जैसे घड़े और रूपकासमवाय संबंध है, उसी प्रकार रस का भी समवाय संबंध है। इसलिए जैसे - आँखसे घड़ेको रूपका ज्ञान होता है उसी प्रकार उसमें समवाय संबंध से रहने वाले रसका भी आँखसे ज्ञान होना चाहिए, परन्तु होता नहीं है।

(इसे विस्तृत रूपसे प्रमेयरत्नमाला मे देखें)

अब प्रत्याक्षाभासको कहते है :-

"अवैशद्ये प्रत्यक्षं तदाभासं, बौद्धस्याकस्माद् धूमदर्शनाद् बह्नि विज्ञानवत्"।।6।।

सूत्रान्वय :- अवैशद्ये-अविशदमें = अवैशद्ये, **प्रत्यक्षं** = प्रत्यक्षको, **तदाभासं** = प्रत्यक्षाभास, **बौद्धस्य** = बौद्धके, **अकस्मात्** = अचानक, **धूमदर्शनात्** = धूम देखनसे, **वह्नि विज्ञानवत्** = अग्निज्ञानके समान।

सूत्रार्थ - बौद्धका अविशदरूप निर्विकल्प ज्ञानको प्रत्यक्ष मानना प्रत्यक्षाभास है। जैसे - अचानक धूऑं देखनेसे उत्पन्न हुआ अग्नि ज्ञान अनुमानाभास है।

संस्कृतार्थ - अवैशद्य प्रत्यक्ष प्रत्यक्षाभासमाहु:। यथा बौद्धस्याकस्मात् धूम-दर्शनात् वह्नि विज्ञानं प्रत्यक्षाभासो विज्ञेय:।

संस्कृत टीकार्थ - अविशद ज्ञानको प्रत्यक्ष मानना प्रत्यक्षाभास है। जैसे कि बौद्ध लोग अकस्मात् धूम देखनेसे पैदा हुए अग्निके ज्ञानको प्रत्यक्ष मानते हैं। उनका यह ज्ञान प्रत्यक्षाभास है।

अब परोक्षाभासको कहते है :-

"वैशद्येऽपि परोक्षं तदाभासं मीमांसकस्य करणज्ञानवत्"।।7।।

सूत्रान्वय :- वैशद्ये = विशद होनेपर, **अपि** = भी, **परोक्षं** = परोक्षको, **तदाभासं** = परोक्षाभास, **मीमांसकस्य** = मीमासकके, **करणज्ञानवत्** = करणज्ञानके समान।

सूत्रार्थ - विशदज्ञानको भी परोक्ष मानना परोक्षाभास है जैसे - मीमासक करणज्ञान को परोक्ष मानते है, उनका ऐसा मानना परोक्षाभास है।

संस्कृतार्थ - वैशद्येऽपि परोक्षज्ञान परोक्षास्ते व्यावर्ण्यते। यथा मीमांसकस्य करणज्ञानं परोक्षाभासो विज्ञेय:।

संस्कृत टीकार्थ - विशद ज्ञानको भी परोक्ष मानना परोक्षाभास कहा जाता है जैसे - मीमांसक के करणज्ञानको परोक्षाभास जानना चाहिए।

अब स्मरणाभासको कहते है :-

"अतस्मिंस्तदिति ज्ञानं स्मरणाभासं, जिनदत्ते स देवदत्तो यथा"।।8।।

सूत्रान्वय :- अतस्मिन् = पहले अनुभव नहीं किए गए पदार्थमें, **तत्** = वह, **इति** = इसप्रकार के, **ज्ञानं** = ज्ञानको, **स्मरणाभासं** = स्मरणाभास, **जिनदत्ते**= जिनदत्त में, **सः** = वह, **देवदत्तः** = देवदत्त, **यथा** = जैसे।

सूत्रार्थ - पूर्वमें अनुभव नही किए गए पदार्थमें "वह है" अर्थात् वैसी है इस प्रकार का ज्ञान स्मरणाभास है। जैसे - जिनदत्त में वह देवदत्त है।

संस्कृतार्थ - अतस्मिन् तदितिज्ञान स्मरणाभासः। यथा जिनदत्ते स्मृते सः देवदत्तः इति ज्ञान स्मरणाभासः।

संस्कृतार्थ टीकार्थ - जिस पदार्थका कभी धारणा रूप अनुभव नहीं हुआ था, उसके अनुभवको स्मरणाभास कहते है। जैसे - जिनदत्तका स्मरण करके वह देवदत्त इस प्रकारका ज्ञान स्मरणाभास है।

प्रश्न 283-स्मरणाभास किसे कहते है?

उत्तर - जिस पदार्थका कभी धारणारूप अनुभव नहीं हुआ था उसके अनुभवको स्मरणाभास कहते है।

अब प्रत्यभिज्ञानाभास का स्वरूप कहते है :-

"सदृशे तदेवेदं तस्मिन्नेव तेन सदृशम्, यमलकवदित्यादि प्रत्यभिज्ञानाभासम्"।।9।।

सूत्रान्वय :- सदृशे = सदृश वस्तुमें, **तत् एवं इदं** = यह वहीहै, **तस्मिन्** = उसमें, **एव** = ही, **तेन** = उसके, **सदृशम्**= सदृश है, **यमलकवत्** = युगपत् जन्मे दो बालकोंके समान, **इत्यादि** = इस प्रकार, **प्रत्यभिज्ञानाभासं** = प्रत्यभिज्ञानाभास।

सूत्रार्थ - सदृशपदार्थमें 'यह वही है' ऐसा कहना उसी पदार्थमें यह उसके सदृश है, ऐसा कहना। जैसे - युगल उत्पन्न हुए मनुष्योंमें विपरीत ज्ञान हो जाता है। ऐसा ज्ञान प्रत्यभिज्ञानाभास है।

संस्कृतार्थ - सदृशे वस्तुनि तदेवेति तथा तस्मिन्नेव वस्तुनि तत् सदृशमिति ज्ञानम् अथवा सादृश्ये एकत्वस्य, एकत्वे वा सादृश्य ज्ञानं प्रत्यभिज्ञानाभासः कथ्यते। एवमेव वैलक्षण्यादिष्वपि प्रत्येतव्यम्।

संस्कृत टीकार्थ - सदृश वस्तुमें यह वही है तथा उस ही

पदार्थमें 'यह उसके समान है' ऐसा ज्ञान अथवा सदृश्यमें एकत्वका और एकत्वमें सादृश्यका ज्ञान प्रत्यभिज्ञानाभास कहते है ऐसा ही वैलक्षण्य आदि में जानना है।

सूत्रमें दो प्रकारके प्रत्यभिज्ञानको बतलाया गया है।

1. एकत्व निमित्तिक 2. सादृश्य निमित्तिक - एकत्वमें सादृश्यका और सादृश्यमें एकत्वका ज्ञानाभास प्रत्यभिज्ञानाभास है।

अब तर्काभासको कहते है :-

"असम्बद्धेतज्ज्ञानं तर्काभासम्"।।10।।

सूत्रान्वय :- असम्बद्धे = अविनाभाव रहितमें, **तत्** = उस अविनाभावके, **ज्ञानं** = ज्ञानको, **तर्काभासम्** = तर्काभास।

सूत्रार्थ - अविनाभाव सबधसे रहित पदार्थमें अविनाभाव संबंधका ज्ञान कराना तर्काभास है।

संस्कृतार्थ - अविनाभाव रहितेऽविनाभावज्ञानं, मिथोव्यापित विहीने व्याप्ति ज्ञानम् वा तर्काभासो निगद्यते। यथा कस्यचिदेकम्पुत्रं कृष्णमालोक्य यावन्तोऽस्य पुत्राः सन्ति भविष्यन्ति वा ते सर्वे कृष्णाः सन्ति भविष्यन्ति वेति ज्ञानं तर्काभासः।

संस्कृत टीकार्थ - अविनाभाव रहितमें अविनाभाव ज्ञानका, अन्वय-व्यतिरेक व्याप्तिसे रहित होनेपर भी व्याप्तिज्ञानको तर्काभास कहते है। जैसे - किसी के एक पुत्रको काला देखकर ' इसके जितने पुत्र है तथा होवेंगे वे सभी श्याम हैं या होंगे,' ऐसी व्याप्ति बनाना तर्काभास है।

अब अनुमानाभास स्वरूपम् अनुमानाभासका स्वरूप कहते है :-

"इदमनुमानाभासम्"।।11।।

सूत्रान्वय :- इदम् = यह, **अनुमानाभासम्** = अनुमानाभास है।

सूत्रार्थ - यह अनुमानाभास है (जो आगे कहा जा रहा है)

संस्कृतार्थ - पक्षाभासः हेत्वाभासो, दृष्टान्ताभासश्चेत्यादयः अनुमानाभासा विज्ञेयाः।

संस्कृत टीकार्थ - पक्षाभास, हेत्वाभास और दृष्टान्ताभास आदि इस प्रकार अनुमानाभास जानना चाहिए।

विशेष - उस अनुमानाभासके अवयवाभासोंको बतलानेसे ही समुदाय रूप अनुमानाभासका ज्ञान हो जाता है।

अब पक्षाभासका स्वरूप कहते है :-

"तत्रानिष्टादि: पक्षाभास:"।।12।।

सूत्रान्वय :- तत्र = उसमें, **अनिष्टादि** = अनिष्ट,बाधित:, **पक्षाभास:** = पक्षाभास।

सूत्रार्थ - उनमें अनिष्ट आदि (बाधित सिद्ध)को पक्षाभास कहते हैं।

संस्कृतार्थ - अनिष्टो, बाधित: सिद्धश्च पक्ष: पक्षाभास: प्रोच्यते।

संस्कृत टीकार्थ - अनिष्ट, बाधित और सिद्धको पक्षाभास कहते है।

अब अनिष्टपक्षाभास का उदाहरण कहते है :-

"अनिष्टो मीमांसकस्यानित्य: शब्द:"।।13।।

सूत्रान्वय :- अनिष्ट: = अनिष्ट, **मीमांसकस्य** = मीमासकके, **अनित्य:** = अनित्य, **शब्द:** = शब्द।

सूत्रार्थ - मीमासक का कहना है कि शब्द अनित्य है, अनिष्ट पक्षाभास है।

संस्कृतार्थ - मीमांसकेन शब्दो नित्यो मत:। अतस्तस्य 'शब्दोऽनित्य:' इति कथनम् अनिष्ट: पक्षाभासो जायते।

संस्कृत टीकार्थ - मीमांसकके द्वारा शब्द को नित्य माना गया है। इसलिए उसके प्रति शब्द अनित्य ऐसा कहना अनिष्ट पक्षाभास होता है।
विशेष - मीमासक लोग नित्यको मानते है अत: उन्हें नित्य इष्ट है परन्तु उसके लिए अनित्य कहना ये अनिष्ट पक्षाभास हो जायेगा।

अब सिद्धपक्षाभासके उदाहरणको कहते है :-

"सिद्ध: श्रावण: शब्द:"।।14।।

सूत्रान्वय :- सिद्ध: = सिद्ध, **श्रावण:** = सुना जाने वाला, **शब्द:** = शब्द।

सूत्रार्थ - शब्द श्रवणेन्द्रियका विषय है, यह सिद्ध पक्षाभास है।

संस्कृतार्थ - शब्द: श्रावण: इतिपक्ष: सिद्धपक्षाभासो विज्ञेय:। यत:

शब्द: श्रुत: अत: श्रवण: सिद्ध एव विद्यते, पुन: पक्षमत्वा सिद्ध करणं निरर्थकमेव।

संस्कृत टीकार्थ - शब्द कर्ण इन्द्रिय का विषय है इस प्रकार सिद्ध पक्षाभास जानना चाहिए। जिससे शब्द सुना जाता है, इसलिए श्रावण सिद्ध है ही पुन: शब्दको पक्ष मानकर सिद्ध करना निरर्थक है।

अब बाधितपक्षाभासके भेदोंको कहते है :-

"बाधित: प्रत्यक्षानुमानागमलोकस्ववचनै:"।।15।।

सूत्रान्वय :- बाधित: = बाधितके, **प्रत्यक्ष, अनुमान, आगम, लोक, स्वचनै:** = स्ववचनोंके द्वारा।

सूत्रार्थ - बाधित पक्षाभास प्रत्यक्ष, अनुमान, आगम, लोक और स्ववचनसे बाधित होता है।

विशेष - प्रत्यक्षबाधित, अनुमानबाधित, आगमबाधित, लोकबाधित और स्ववचन बाधित ये बाधित पक्षाभासके पाँच भेद है।

अब प्रत्यक्षबाधित का उदाहरण कहते है :-

"तत्र प्रत्यक्षबाधितो यथा, अनुष्णोऽग्नि द्रव्र्यत्वाज्जलवत्"।।16।।

सूत्रान्वय :- तत्र = उनमें, **प्रत्यक्षबाधित, यथा** = जैसे, **अनुष्ण:** = उष्ण नही है, **अग्नि:** = आग, **द्रव्यत्वात्** = द्रव्यहोनेसे, **जलवत्** = पानीके समान।

सूत्रार्थ - उनमेंसे प्रत्यक्षबाधित पक्षाभासका उदा जैसे - अग्नि उष्णता रहित है, क्योंकि वह द्रव्य है, जैसे-जल।

संस्कृतार्थ - अनुष्णोऽग्नि: द्रव्यत्वात् जलवत्। अत्र अग्निरनुष्ण: प्रतीयते। अतोऽयं पक्ष: स्पार्शनेन प्रत्यक्षेण बाधितो विद्यते।

संस्कृत टीकार्थ - अग्नि ठण्डी होती है, क्योंकि वह द्रव्य है जैसे-जल। इसमें अग्नि उष्ण नहीं है ऐसा कहना, इसलिए यह पक्ष स्पर्शन प्रत्यक्षसे बाधित है।

विशेष - किन्तु स्पार्शन प्रत्यक्षसे अग्नि उष्ण स्पर्शवाली ही अनुभव की जाती है इसलिए प्रत्यक्षबाधित पक्षाभासका उदाहरण है।

अनुमान बाधित पक्षाभासका उदाहरणकहते है :-

"अपरिणामी शब्दः कृतकत्वाद्"।।17।।

सूत्रान्वय :- अपरिणामी = अपरिणामी, **शब्दः** = शब्द, **कृतकत्वात्** = (कृतक किया जाने वाला) होनेसे।

सूत्रार्थ - यह अनुमानाभास है (जो आगे कहा जा रहा है)

संस्कृतार्थ - अपरिणामी शब्दः कृतकत्वात्। यो यः कृतको विद्यते सः सः अपरिणामी, यथा घटः। अनुमानबाधित पक्षाभासोदाहरणमिदम्। यतोऽत्र पक्षे'शब्दः परिणामी, कृत कत्वात्, यो यः कृतकः स सः परिणामी, यथा घटः इत्यनुमानेन बाधा आयाति।'

संस्कृत टीकार्थ - अपरिणामी शब्द है किया जाने वाला होनेसे (जो जो किया जाने वाला है, वह वह अपरिणामी होता है जैसे - घडा। यह अनुमान बाधित पक्षाभास का उदाहरण है। इससे इस पक्षमें 'शब्द परिणामी है, कृतक होनेसे - जो जो कृतक होता है, वह वह परिणामी होता है जैसे - घड़ा इस प्रकार अनुमानसे बाधा आती है।

सूत्रमें पक्ष (शब्द अपरिणामी) यह पक्षकृतक इस हेतुसे बाधित है क्योंकि कृतक हेतु से तो परिणामीपनेकी ही सिद्धि होती है।

अब आगमबाधित पक्षाभासका उदाहरण कहते है .-

"प्रेत्यासुखदो धर्मः पुरुषाश्रितत्वादधर्मवत्"।।18।।

सूत्रान्वय :- प्रेत्य = परलोकमें, **असुखदः** = सुख नहीं है (दुःख देने वाला है।), **धर्मः** = पुण्य, **पुरुषाश्रितत्वात्** = पुरुषाश्रित होनेसे **अधर्मवत्** = अधर्म के समान।

सूत्रार्थ - धर्मपरलोकमें दुःख देने वाला होता है, क्योंकि वह पुरुषके आश्रित्य है। जैसे - अधर्म।

संस्कृतार्थ - प्रेत्यासुखदो धर्मः पुरुषाश्रितत्वात् अधर्मवत्। यो यः पुरुषाश्रितः स सः दुःखदायी, यथा अधर्म.। अत्रायं पक्षः आगमबाधितो वर्तते। यतः आगमे धर्मः सुखदायी प्रोक्तः अधर्मश्च दुःखदायी प्रोक्तः। यद्यपि द्वावपीमौ पुरुषाश्रितौ, तथापि भिन्नस्वभावौ विद्येते।

संस्कृत टीकार्थ - धर्म परलोकमें दुःख देने वाला है। पुरुषाश्रित होनेसे अधर्मके समान। जो-जो पुरुषाश्रित है वह-वह दुःखदायी होता है जैसे - अध र्म। इसमें यह पक्ष आगम बाधित है, क्योंकि आगममें धर्मको सुखदायी

कहा गया है और अधर्म को दु:खदायी कहा गया है, यद्यपि दोनों पुरुषके आश्रित है तथापि वे भिन्न स्वभाव वाले है।

विशेष - पुरुषका आश्रितपना समान होने पर भी आगममे धर्मको परलोकमें सुखका कारण है।

अब लोकबाधितपक्षाभासका उदाहरण कहते है :-

"शुचिनर शिर: कपालं प्राण्यङ्गत्त्वाच्शंखशुक्तिवत्"।।19।।

सूत्रान्वय :- शुचि: = पवित्र, **नरशिर:** = मनुष्यके सिरका, **कपालं** = कपाल, **प्राणी** = जीवका, **अङ्गत्वात्** = अङ्ग होनेसे, **शंखशुक्तिवत्** = शंखसीप के समान।

सूत्रार्थ - मनुष्यके सिरका कपाल पवित्र है, प्राणीका अङ्ग होनेसे जैसे शंख और सीप।

संस्कृतार्थ - शुचि नर शिर: कपाल प्राण्यङ्गत्वात्, शंखशुक्तिवत्। यञ्चप्राण्यङ्ग तत् पवित्रं, यथा शख: शुक्तिश्चेति। अत्रायं पक्षोलोकबाधितो विद्यते। यतो लोके प्राण्यङ्गत्वेऽपि किञ्चिद् वस्तु पवित्रं किञ्चिच्चापवित्रं मतम्।

संस्कृत टीकार्थ - मनुष्यका सिर पवित्र होता है प्राणीका अङ्गहोनेसे शख शुक्ति के समान और जो प्राणीका अङ्ग है वह पवित्र होता है जैसे -
शंख और सीप। इसमें यह पक्ष लोक बाधित है। जिससे लोकमें प्राणीका अङ्ग होनेपर कोई वस्तु पवित्र होती है और कोई अपवित्र होती है ऐसा माना गया है।

विशेष - लोकमें प्राणी का अंग समान होने पर भी किसी वस्तुको पवित्र माना गया है और किसीको अपवित्र। किन्तु नर-कपाल आदिको जो अपवित्र ही माना गया है, अत: यह लोकबाधित पक्षाभासका उदाहरण है।

अब स्ववचन बाधितपक्षाभास का उदाहरण कहते है :-

"माता मे बन्ध्या, पुरुष संयोगेऽप्यगर्भत्वात्प्रसिद्धबन्ध्यावत्"।।20।।

सूत्रान्वय :- माता = माँ/मे/मेरी, **बंध्या** = बाँझ, **पुरुषसंयोगे** = पुरुषका संयोगहोने पर, **अपि** = भी, **अगर्भत्वात्** = गर्भ नही होनेसे, **प्रसिद्ध बन्ध्यावत्** = प्रसिद्ध बंध्याके समान।

सूत्रार्थ - मेरी माता बन्ध्या है, क्योंकि पुरुषका संयोग होने पर भी उसके गर्भ नहीं रहता। जैसे - प्रसिद्ध बन्ध्या स्त्री।

संस्कृतार्थ - मातामे बन्ध्या, पुरुषसंयोगेऽप्यगर्भत्वात्प्रसिद्ध बन्ध्यावत्। स्वस्मिन् पुत्रत्व जनन्यां मातृत्वं वा स्वीकुर्वन्नपि कथयति, यन्माता मे बन्ध्या। अतोऽत्राय पक्षः स्ववचनबाधितो विद्यते।

संस्कृत टीकार्थ -मेरी माता बन्ध्या है पुरुषका संयोग होनेपर भी गर्भ नहीं रहता, प्रसिद्ध बन्ध्याके समान। अपनेमें पुत्रपनाका, जननी में मातापने को स्वीकार करता हुआ भी कहता है कि जो मेरी माता है वह बन्ध्या है। इसलिए इसमें यह पक्ष स्ववचन बाधित है।

अब हेत्वाभासोंके भेदोंको कहते हैं :-

"हेत्वाभास असिद्ध विरुद्धानैकान्तिकाकिञ्चित्करा:"।।21।।

सूत्रान्वय :- हेत्वाभास = हेत्वाभासके, **असिद्ध, विरुद्ध, अनैकान्तिक, अकिञ्चिकर।**

सूत्रार्थ - असिद्व, विरुद्ध, अनैकान्तिक और अकिञ्चितकर ये चार हेत्वाभास के भेद हैं।

अब क्रम प्राप्त असिद्ध हेत्वाभासका स्वरूप कहते है :-

"असत्सत्तानिश्चयोऽसिद्धः"।।22।।

सूत्रान्वय :- असत्सत्ता = जिस हेतुकी सत्ताका, **अनिश्चयः** = निश्चय न हो, **असिद्ध** = असिद्ध है।

सूत्रार्थ - जिस हेतुकी सत्ताका अभाव हो अथवा निश्चय न हो उसे असिद्ध हेत्वाभास कहते हैं।

नोट - सत्ता च निश्चयश्च सत्तानिश्चयौ - इस प्रकार द्वन्द्वसमास है जिसकी सत्ताके निश्चय का अभाव हो वह असत्सत्ता निश्चय है।

संस्कृतार्थ - स्वरूपासिद्धः सन्दिग्धासिद्धश्चेति द्वौ असिद्धहेत्वाभासभेदौ स्तः। तत्राविद्यमानसत्ता को हेतु, स्वरूपासिद्धः अविद्यमाना निश्चयो वा हेतुः सन्दिग्धासिद्धौ हेत्वाभासो विज्ञेयः।

संस्कृत टीकार्थ - स्वरूपासिद्ध और सदिग्धासिद्ध ये दो भेद असिद्ध हेत्वाभासके है। उसमें अविद्यमान सत्ताका (जिस हेतुकी सत्ताका अभाव

है) उस हेतुको स्वरूपासिद्ध हेत्वाभास कहते है और पक्षमें जिस हेतुका निश्चय न हो उसे सन्दिग्धासिद्धहेत्वाभास कहते हैं।

अब असिद्ध हेत्वाभासके प्रथमभेद स्वरूपासिद्ध हेत्वाभासको कहते है :-

"अविद्यमानसत्ताक: परिणामी शब्द: चाक्षुषत्वात्"।।23।।

सूत्रान्वय :- अविद्यमान सत्ताक: = अविद्यमान सत्ता वालेका, **परिणामी शब्द:** = शब्द परिणामी है, **चाक्षुषत्वात्** = चाक्षुष होनेसे।

सूत्रार्थ - शब्द परिणामी है, क्योंकि चाक्षुष है, यह अविद्यमान सत्ता वाले स्वरूपासिद्धहेत्वाभास का उदा है।

संस्कृतार्थ - परिणामी शब्दश्चाक्षुषत्वात्। अत्राय चाक्षुषत्वं हेतु: स्वरूपासिद्धौ विद्यते। यत: शब्दो नेत्रान्नो ज्ञायते, किन्तु कर्णाज्ज्ञायते अतोऽ विद्यमानसत्ताकत्वेन स्वरूपासिद्धो जात:।

संस्कृत टीकार्थ - शब्द परिणामी है चाक्षुष होनेसे। इसमें यह चाक्षुषपना हेतु स्वरूपासे ही असिद्ध है। जिसमें शब्द नेत्रसे नहीं जाना जाता किन्तु कर्ण से जाना जाता है। इसलिए अविद्यमान सत्तावाला होनेसे स्वरूप सिद्ध है।

अब इस हेतुके असिद्धपना कैसे है इसके विषयमें कहते हैं :-

"स्वरूपेणासत्वात्"।।24।।

सूत्रान्वय :- स्वरूपेण = स्वरूपसे, **असत्वात्** = असत् होनेसे,

सूत्रार्थ - शब्द का चाक्षुष होना स्वरूपसे ही असिद्ध है।

संस्कृतार्थ - शब्द: कर्णेन ज्ञायते चक्षुषा नो। अत: शब्दस्य चाक्षुषत्वव्यावर्णनं स्वरूपेणैव नोचितम्।

संस्कृत टीकार्थ - शब्द कर्ण इन्द्रियसे जाना जाता है, चक्षु इन्द्रियसे नहीं। इसलिए शब्द के चाक्षुषपनेका कथन स्वरूपसे ही ठीक नहीं है।

अब आचार्य असिद्ध हेत्वाभासके दूसरे भेदको कहते हैं :-

"अविद्यमान निश्चयो मुग्धबुद्धिं प्रत्यग्निरत्रधूमात्"।।25।।

सूत्रान्वय :- अविद्यमाननिश्चय: = अविद्यमान निश्चयवाले, **मुग्धबुद्धिप्रति** = मुग्ध बुद्धिपुरुषके प्रति, **अग्नि:** = अग्नि, **यत्र** = यहाँ, **धूमात्** = धूम होनेसे।

सूत्रार्थ - मुग्ध बुद्धि पुरुषके प्रति कहना यहाँ अग्नि है धूम होनेसे। यह अविद्यमान निश्चय वाले संदिग्धासिद्ध हेत्वाभासका उदा है।

संस्कृतार्थ - मुग्धम्प्रति अग्निरत्र धूमात् 'इति कथनम्, संदिग्धा सिद्धो हेत्वाभासो: विज्ञेय:।

अब इस हेतुकी भी असिद्धता कैसे है, ऐसी शंका होने पर कहते है :-

"तस्य वाष्पादिभावेन भूतसंघाते सन्देहात्"।।26।।

सूत्रान्वय :- तस्य = उसके, **वाष्पादि भावेन** = वाष्प (भाप) आदि के रूपसे, **भूतसंघाते** = भूतसंघातमें, **संदेहात्** = संदेह होने से।

सूत्रार्थ - क्योंकि उसे भूतसघातमें भाप आदिके रूपसे संदेह हो सकता है।

नोट :- भूतसंघात - चूल्हे से उतारी हुई बटलोई, क्योंकि उसमें पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु चारों रहते है और भाप भी निकलती रहती है।

संस्कृतार्थ - मुग्धबुद्धिंप्रति धूमहेतुरत: स्वरूपासिद्धो, हेत्वाभासो विद्यते, यतस्तस्य भूतसघात वाष्पादिदर्शनात् संदेह उत्पद्यते। यदत्र बह्नि: वर्तते, वर्तेत वा।

संस्कृत टीकार्थ - अज्ञानी मूर्खके प्रति धूम हेतु इसलिए सन्दिग्धासिद्ध हेत्वाभास है, जिससे उसके भूतसघात में वाष्पादि देखनेसे संदेह हो जाता है कि यहाँ भी अग्नि है अथवा होगी।

अब असिद्ध हेत्वाभास का और भी भेद कहते है :-

"सांख्यम्प्रति परिणामी शब्द: कृतकत्वात"।।27।।

सूत्रान्वय :- सांख्यम्प्रति = साख्यके प्रति, **शब्द:** = शब्द, **परिणमी** = परिणामी, **कृतकत्वात्** = कृतक होनेसे।

सूत्रार्थ - साख्यके प्रति कहना है कि शब्द परिणामी है क्येंकि वह कृतक है।

संस्कृतार्थ - परिणामी शब्द: कृतकत्वादिति कथनं साख्यम्प्रत्यसिद्धोहेत्वाभासो विद्यते।

संस्कृत टीकार्थ - शब्द परिणामी है, कृतक होनेसे। इस प्रकार के कथनको सांख्यके प्रति कहना असिद्ध हेत्वाभास है।

अब आचार्य इस हेतुकी असिद्धता में कारण बतलाते है :-

"तेनाज्ञातत्वात्"।।28।।

सूत्रान्वय :- **तेन** = उसने, **अज्ञातत्वात्** = जाना ही नहीं है।

सूत्रार्थ - क्योंकि उसने कृतकपना जाना ही नहीं है।

संस्कृतार्थ - सांख्यसिद्धान्ते आविर्भावतिरोभावावेव प्रसिद्धौ नोत्पत्तिविनाशौ। अतः शब्दस्य कृतकत्वं तद्दृष्टौ असिद्धो हेत्वाभासो जायते।

संस्कृत टीकार्थ - साख्यके सिद्धान्तमें अविर्भाव और तिरोभाव ही प्रसिद्ध है उत्पत्ति और विनाश नही है। इसलिए शब्द का कृतकपना उसकी दृष्टिमें असिद्ध हेत्वाभास है।

विशेष - सांख्यमत में आविर्भाव (प्रकटपना) और तिरोभाव (अच्छादनपना) ही प्रसिद्ध है, उत्पत्तिआदि प्रसिद्ध नही है। किसी पदार्थके कृतक होनेका उसके यहाँ निश्चयन होनेसे असिद्धपना है।

अब आचार्य विरुद्ध हेत्वाभासको कहते हैं :-

"विपरीत निश्चिताविनाभावो विरुद्धोऽपरिणामी शब्दः कृतकत्वात्"।।29।।

सूत्रान्वय :- **विपरीत** = उल्टे पदार्थके साथ, **निश्चित** = निश्चित, **अविनाभावः** = अविनाभाव, **विरुद्ध** = विरुद्ध, **अपरिणामी** = अपरिणामी, **शब्दः** = शब्द, **कृतकत्वात्** = कृतक होनेसे।

सूत्रार्थ - साध्यसे विपरीत पदार्थके साथ जिसका अविनाभाव निश्चित हो, उसे विरुद्धहेत्वाभास कहते है। जैसे शब्द अपरिणामी है क्योंकि वह कृतक है।

संस्कृतार्थ - साध्यविरुद्धेन (विपक्षेण) सह निश्चिताविनाभावो हेतुः विरुद्धो हेत्वाभासो निरुप्यते। यथा अपरिणामी शब्दः कृत्कत्वात्। अत्रास्य हेतोरपरिणामित्व विरुद्धेन परिणामित्वेन सह व्याप्तिः विद्यते, अतोऽयं हेतुः विरुद्धहेत्वाभासः सुसिद्धः।

संस्कृत टीकार्थ - साध्यसे विपरीतके साथ जिस हेतुका अविनाभाव निश्चित है वह विरुद्ध हेत्वाभास है। जैसे - अपरिणामी शब्द कृतक होनेसे। यहाँ पर इस हेतुका अपरिणामी के विरुद्ध परिणामी शब्द कृतक होनेसे। यहाँ पर इस हेतुका अपरिणामीके विरुद्ध परिणामीके साथ व्याप्ति है। इसलिए यह हेतु विरुद्ध हेत्वाभास अच्छी तरह से सिद्ध है।

विशेष - इस अनुमानमें कृतकत्व हेतु अपरिणामी के विरोधी परिणामके साथ व्याप्त है, इसलिए यह विरुद्ध हेत्वाभास है।

अब आचार्य अनैकान्तिक हेत्वाभास का स्वरूप कहते है :-

"विपक्षेऽप्यविरुद्धवृत्तिरनैकान्तिकः"॥30॥

सूत्रान्वय :- विपक्षे = विपक्षमें, **अपि** = भी, **अविरुद्धवृत्ति** = अविरुद्ध रूपसे होना, **अनेकान्तिक** = अनैकान्तिक है।

सूत्रार्थ - जिसका विपक्षमें भी रहना अविरुद्ध है, अर्थात् जो हेतु पक्ष-संपदा के समान विपक्षमें भी बिना किसी विरोधके रहता है, उसे अनैकान्तिक हेत्वाभास कहते है।

नोट :- सूत्र पठित अपि शब्द से न केवल पक्ष-सपक्षमें रहने वाला हेतु लेना किंतु विपक्षमें भी रहने वाले हेतुका ग्रहण करना चाहिए।

संस्कृतार्थ - पक्षे, सपक्षे वा विद्यमानोऽपि विपक्षवृत्तिः हेतुरनैकान्तिको हेत्वाभासः।

संस्कृत टीकार्थ - पक्षमें अथवा सपक्षमें विद्यमान होकर भी विपक्ष वृत्ति

वाला हेतु अनेकान्तिक हेत्वाभास है।

विशेष - इस हेतु के 2 भेद है 1. निश्चित विपक्ष वृत्ति, 2 शकितविपक्ष वृत्ति।

प्रश्न 284-पक्ष किसे कहते हैं?

उत्तर - सदिग्ध साध्यवाले धर्मीको पक्ष कहते है।

प्रश्न 285-सपक्ष किसे कहते हैं?

उत्तर - साध्यके समान धर्मीको सपक्ष कहते है।

प्रश्न 286-विपक्ष किसे कहते है?

प्रश्न 287-हेतुका गुण व दोष क्या है?

उत्तर - हेतुका पक्ष और सपक्षमें रहना तो गुण है, परन्तु विपक्षमें रहना दोष है।

अब आचार्य निश्चित विपक्षवृत्ति का उदा कहते है :-

"निश्चितवृत्तिरनित्यः शब्दः प्रमेयत्वात् घटवत्"॥31॥

सूत्रान्वय :- निश्चित वृत्तिः = निश्चितवृत्ति, **अनित्य** = अनित्य, **शब्दः** = शब्द, **प्रमेयत्वात्** = प्रमेय होनेसे, **घटवत्** = घटके समान।

सूत्रार्थ - शब्द अनित्य है प्रमेय होनेसे जैसे घट यह निश्चित

विपक्षवृत्ति अनैकान्तिक हेत्वाभास का उदा. है।

संस्कृतार्थ - अनित्यः शब्दः प्रमेयत्वाद् घटवत्। अयं प्रमेयो हेतुः पक्षे शब्दे सपक्षे घटे वा विद्यमानोऽपि विपक्षे आकारोऽपि तिष्ठति, अतोऽनैकान्तिकः प्रोच्यते। विपक्षे च तस्य वृत्तिः निश्चित अतो निश्चितविपक्षवृत्तिरुच्यते।

संस्कृत टीकार्थ - शब्द अनित्य है, प्रमेय होनेसे घटके समान यह प्रमेय हेतु पक्षमें (शब्द में) सपक्षमें (घटमें) अथवा विद्यमान होनेपर भी विपक्षमें उसकी वृत्ति निश्चित हुई। इसलिए निश्चित विपक्षवृत्ति हेतु कहते है।

अब आचार्य प्रमेयत्व हेतु की भी विपक्षमें वृत्ति कैसे निश्चित है इसी का उत्तर देते है :-

"आकाशे नित्येऽप्यस्य निश्चयात्"।।32।।

सूत्रान्वय :- आकाशे = आकाशमें, **नित्ये** = नित्यमें, **अपि** = भी, **अस्य** = इसका, **निश्चयात्** = निश्चय होनेसे।

सूत्रार्थ - क्योंकि नित्य आकाशमे भी इस प्रमेयत्व हेतुके रहने का निश्चय है।

संस्कृतार्थ - विपक्षे नित्ये आकाशेऽप्यस्य प्रमेयत्वहेतोः निश्चयादयं निश्चित विपक्षवृत्ति रुच्यते।

संस्कृत टीकार्थ - नित्य आकाश विपक्षमें भी इस प्रमेयत्वहेतु के रहनेका निश्चय है। इसलिए प्रमेयत्व हेतु निश्चित विपक्षवृत्ति है।

विशेष - प्रमेयत्व हेतु पक्ष शब्दमें और सपक्ष घटमें रहता हुआ अनित्यके

विपक्षी नित्य आकाशमें भी रहता है, क्योंकि आकाश भी निश्चत रूपसे प्रमाणका विषय है।

अब आचार्य शंकित विपक्षवृत्ति अनैकान्तिक हेत्वाभासको कहते है :-

"शंकित वृत्तिस्तु नास्ति सर्वज्ञो वक्तृत्वात्'।।33।।

सूत्रान्वय :- शंकितवृत्ति = शंकित विपक्षवृत्ति, **नास्ति** = नहीं है, **सर्वज्ञः** = सर्वज्ञ, **वक्तृत्वात्** = वक्ता होनेसे।

सूत्रार्थ - सर्वज्ञ नहीं है, क्योंकि वह वक्ता है अर्थात् बोलने वाला होनेसे यहाँ शंकितविपक्षवृत्ति अनैकान्तिक हेत्वाभासका उदा. है।

संस्कृतार्थ - नास्ति सर्वज्ञो वक्तृत्वात्। सत्यपि वक्तृत्वे सर्वज्ञत्वस्याविरोधः। अर्थादस्य हेतोः विपक्षे वृत्तिः सम्भाव्यते, अतएवायं हेतुः शंकित विपक्षवृत्ति र्विद्यते।

संस्कृत टीकार्थ - सर्वज्ञ नही है वक्ता होनेसे। वक्तापना रहने पर भी सर्वज्ञपने का अविरोधपना है। अर्थात् इस हेतुका विपक्षमें वृत्ति संभव होनेसे इसलिए यह हेतु शंकित विपक्षवृत्ति है।

अब इस वक्त्वहेतुका भी विपक्षमें रहना कैसे शंकित है ऐसी आशंका होनेपर उत्तरसूत्र कहते हैं :-

"सर्वज्ञत्वेन वक्तृत्वाविरोधात्"।।34।।

सूत्रान्वय :- सर्वज्ञत्वेन = सर्वज्ञके साथ, **वक्तृत्व** = वक्तापनेका, **अविरोध ात्** = विरोध नही है।

सूत्रार्थ - क्योंकि सर्वज्ञपनेके साथ वक्तापनेका कोई विरोध नहीं है।

संस्कृतार्थ - सर्वज्ञत्वेन वक्तृत्वाविरोधादयं हेतुः सर्वज्ञसद्भावरूपे विपक्षेऽपि सम्भवेत्। अतएवाय शंकित विपक्ष वृत्तिसंज्ञा साधिकैव।

संस्कृत टीकार्थ - सर्वज्ञपनेके साथ वक्तापनेका कोई विरोध नहीं है इसलिए सर्वज्ञके सद्भावरूप विपक्षमें भी यह हेतु रह सकता है। इसलिए यह हेतु शंकित विपक्षको साधता ही है।

विशेष - सर्वज्ञताके साथ वक्तापनेका अविरोध इसलिए है कि ज्ञानके उत्कर्षमें वचनोंका अपकर्ष नहीं देखा जाता है। प्रत्युत प्रकर्षता ही देखी जाती है।

अब अकिञ्चितकर हेत्वाभासके स्वरूपको कहते हैं :-

"सिद्धे प्रत्यक्षादिबाधिते च साध्ये हेतुरकिञ्चित्कर:"।।35।।

सूत्रान्वय :- सिद्धे = सिद्धहोने पर, **प्रत्यक्षादिबाधिते** = प्रत्यक्षादि प्रमाणोंसे बाधित होने पर, **च** = और, **साध्य** = साध्यमें, **हेतुः** = हेतु, **अकिञ्चतकरः** = अकिञ्चतकर।

सूत्रार्थ - साध्यके सिद्ध होनेपर तथा प्रत्यक्षादि प्रमाणों से बाधित होने पर प्रयुक्त हेतु अकिञ्चितकर हेत्वाभास कहलाता है।

संस्कृतार्थ - साध्ये सिद्धे प्रत्यक्षाबाधिते वा सति हेतुः किञ्चिदपि कर्तुं नो शक्नुयात् अतएव सोऽकिञ्चित्करः हेत्वाभासः प्रोच्यते।

संस्कृत टीकार्थ - साध्यके सिद्ध होने पर तथा प्रत्यक्षादि प्रमाणोंसे बाधित होने पर हेतु कुछ भी नहीं कर सकता, इसलिए वह अकिञ्चितकर हेत्वाभास कहा जाता है।

विशेष - जब साध्यसिद्ध हो या प्रत्यक्षादि किसी प्रमाणसे बाधित हो तब उसकी सिद्धिके लिए जो भी हेतु दिया जाए वहसाध्य की कुछ भी सिद्धि नहीं करता है, इसलिए उसे अकिञ्चितकर कहते है।

अब सिद्धसाध्य अकिञ्चित्कर हेत्वाभास का उदाहरण देते है :-

"सिद्धः श्रावणः शब्दः शब्दत्वात्"।।36।।

सूत्रान्वय :- सिद्धः = सिद्ध, **श्रावणः** = कर्णइन्द्रियका, **शब्दः** = शब्द, **शब्दत्वात्** = शब्द होनेसे।

सूत्रार्थ - शब्द कर्णेन्द्रियका विषय होता है, इसलिए सिद्ध है, शब्द होनेसे।

संस्कृतार्थ - श्रावणः शब्दः शब्दत्वहेतु। अत्रायं हेतुः सिद्धसाध्योऽकिञ्चित्कर हेत्वाभास।

संस्कृत टीकार्थ - शब्द श्रावण है शब्द होनेसे। यहाँ पर हेतु सिद्ध साध्य अकिञ्चितकर हेत्वाभास है।

अब इस शब्दत्व हेतुके अकिञ्चित्करता कैसे है उसे कहते है :-

"किञ्चिदकरणात्"।।37।।

सूत्रान्वय :- किञ्चित् = कुछ भी, **अकरणात्** = नहींकर सकता है।

सूत्रार्थ - कुछ भी नही करने से शब्दत्व हेतु अकिञ्चित्कर हेत्वाभास है।

संस्कृतार्थ - अत्र अनेनशब्दत्वेन हेतुना किञ्चिदपि नो साध्यते। यतः शब्दस्य श्रावण ज्ञानेन ज्ञानं सिद्धमेव विद्यते।

संस्कृतटीकार्थ - यहाँ पर यह शब्दत्वहेतु कुछ भी नहीं कर सकता है। क्योंकि शब्द का कर्णइन्द्रिय से जाना जाना सिद्ध ही है।

विशेष - शब्दका कान से सुना जाना तो पहले से सिद्ध ही है फिरभी उसे सिद्ध करनेके लिए जो शब्दत्व हेतु दिया गया है, वह व्यर्थ है क्योंकि उससे साध्यकी कुछ भी सिद्धि नहीं होती है। (अतः अकिञ्चित्करहेत्वाभास है।)

अब शब्दत्व हेतुके अकिञ्चित्करत्वकी पुष्टि करते हैं :-

"यथाऽनुष्णोऽग्नि र्द्रव्यत्वादित्यादौ किञ्चित्कर्तुमशक्यत्वात्"।।38।।

सूत्रान्वय :- यथा = जैसे, **अनुष्णः** = गर्म नहीं है, **अग्निः** = आग, **द्रव्यत्वात्** = द्रव्य होनेसे, **इत्यादौ** = इत्यादिकमें, **किञ्चित्** = कुछभी, **कर्त्तुम्** = करनेके लिए, **अशक्यत्वात्** = शक्य न होनेसे।

सूत्रार्थ - जिस प्रकार अग्नि ठण्डी होती है क्योंकि वह द्रव्य है इत्यादि अनुमानों में कुछ नहीं कर सकनेसे द्रव्यात्वादि हेतु अकिञ्चित्कर कहे जाते है।

संस्कृतार्थ - यथाऽनुष्णोऽग्नि र्द्रव्यत्वात् इत्यादिष्वनुमानेषु किञ्चित् कर्तु मशक्यत्वात् द्रव्यत्वादयो हेत्वोऽकिञ्चित्करा: प्रोच्यन्ते तथैवोपर्युक्त दृष्टान्ते शब्दहेतुरप्यकिञ्चित्करो विज्ञेय:

संस्कृत टीकार्थ - जैसे अग्नि ठण्डी होती है द्रव्य होनेसे इत्यादिक अनुमानों में कुछ भी नहीं कर सकने से द्रव्यत्वादि हेतु अकिञ्चित्कर कहे जाते है, उसी प्रकार ऊपर के दृष्टान्त में भी जानना चाहिए।

विशेष - अग्नि उष्ण नही है, यह बात प्रत्यक्ष प्रमाणसे बाधित है फिर भी उसे सिद्धकरने के लिए जो द्रव्यत्व हेतु दिया गया, वह अग्निको उष्णता रहित सिद्ध नहीं कर सकता है।

अब अकिञ्चित्कर हेत्वाभासके प्रयोगकी उपयोगिता कहते है:-

"लक्षणे एवासौ दोषो व्युत्पन्न प्रयोगस्य पक्षदोषेणैव दुष्टत्वात्"।।39।।

सूत्रान्वय :- लक्षणे = लक्षणमें, **एव** = ही, **असौ** = वह, **दोषः** = दोष, **व्युत्पन्नप्रयोगस्य** = व्युत्पन्नका प्रयोगके, **पक्षदोषेण** = पक्षके दोषसे, **एव** = ही, **दुष्टत्वात्** = दूषित होनेसे।

सूत्रार्थ - लक्षणकी अपेक्षासे ही यह दोष है क्योंकि व्युत्पन्न पुरुषोंका प्रयोग पक्षके दोषोंसे ही पुष्ट हो जाता है।

संस्कृतार्थ - अकिञ्चित्कर हेत्वाभास विचार: शास्त्रे एव जायते न तु वादे। यतो व्युत्पन्न प्रयोग: पक्षदोषेणैव दूष्यते, तत्र हेतु दोषस्य प्राधान्यं नो विद्यते।

संस्कृत टीकार्थ - अकिञ्चित्कर हेत्वाभास का विचार शास्त्रकाल में

ही होता है, वाद कालमें नहीं। क्योंकि व्युत्पन्न पुरुषोंका प्रयोग पक्षके दोषोंसे ही दूषित हो जाता है।

विशेष - शिष्योंको शास्त्रके पठन-पाठनकालमें ही अकिञ्चित्कर हेत्वाभास को दोष रूप कहा गया है, शास्त्रार्थ करनेके समय नहीं क्योंकि शास्त्रार्थके समय विद्वान लोगोंका ही अधिकार होता है।

अब अन्वय दृष्टान्ताभासोंके भेद कहते है -

"दृष्टान्ताभासा अन्वयेऽसिद्धसाधनोभया:"।।40।।

सूत्रान्वय :- **दृष्टान्ताभासा** = दृष्टान्ताभासके, **अन्वये** = अन्वयमें, **असिद्ध** = असिद्ध, **साधन** = साधन, **उभया:** = दोनों।

सूत्रार्थ - अन्वय दृष्टान्ताभासके तीन भेद है - साध्य विकल, साधन विकल और उभयविकल।

संस्कृतार्थ -साध्यविकल: साधनविकल: उभयविकलश्चेति त्रयोऽन्वय दृष्टान्ताभास भेदा: विद्यन्ते।

साध्य विकल, साधन विकल और उभयविकल इस प्रकार तीन अन्वय दृष्टान्ताभास के भेद हैं।

अब अन्वयदृष्टान्ताभासोंके उदाहरण कहते है :-

"अपौरुषेय: शब्दोऽमूर्तत्वादिन्द्रिय सुख परमाणु घटवत्"।।41।।

सूत्रान्वय :- **अपौरुषेय:** = अपौरुषेय, **शब्द:** = शब्द, **अमूर्तत्वात्** = अमूर्तहोनेसे, **इन्द्रियसुख** = इन्द्रियसुख, **परमाणु** = परमाणु, **घटवत्** = घडेके समान।

सूत्रार्थ - शब्द अपौरुषेय है, अमूर्त होनेसे, इन्द्रियसुख, परमाणु और घटके समान।

संस्कृतार्थ - असिद्ध साध्यस्यान्वयदृष्टान्ताभासस्योदाहरणम् शब्दोऽपौरुषेय: अमूर्तत्वात् इन्द्रियसुखवत्। अत्रेन्द्रिय सुखस्य पौरुषेयत्वात् असिद्धसाध्यत्वम्।

अथ च पूर्वोक्तानुमाने परमाणु: असिद्ध साधनान्वयदृष्टान्ताभासो भवति। परिमाणों अमूर्तत्वाभावादसिद्धसाधनत्वम्।

किञ्च पूर्वोक्तानुमाने घटोऽसिद्धोभयान्वय दृष्टान्ताभासा जायते

घटस्य अपौरुषेयत्वाभावात् अमूर्तिकत्वाभावाच्चासिद्धोभयत्वम्।

संस्कृतटीकार्थ - असिद्ध साध्यका अन्वय दृष्टान्ताभास का उदाहरण - शब्द अपौरुषेय है अमूर्त होनेसे जैसे - इन्द्रियजन्य सुखके समान। यहाँ पर इन्द्रियसुखके पौरुषेय होनेसे असिद्धसाध्यपना है।

और अब पूर्वमें कहे गए अनुमानमें परमाणु असिद्ध साधनान्वय दृष्टान्ताभास होता है, क्योंकि परमाणुके अमूर्तपनेका अभाव सिद्ध होनेसे असिद्धसाधनपना है। और क्या पूर्वमें कहे गए अनुमानमें घड़ा असिद्ध उभयान्वय दृष्टान्ताभास होता है क्योंकि घड़ेका अपौरुषेयपनेका अभाव होनेसे और अमूर्तिकपनेका अभाव होनेसे असिद्धोभय है (असिद्ध साध्य- साधन) अन्वय दृष्टान्ताभास है।

इन्द्रियसुखमें साधनत्व है, साध्यत्व नहीं। यह साध्यविकल दृष्टान्त है। परमाणुमें साध्यत्व है, साधनत्व नहीं है, अतः यह दृष्टान्तसाधन विकल है। घड़ेमें अपौरुषेय रूप साध्य और अमूर्तरूप साधन ये दोनोंही नहीं है। अतः यह दृष्टान्त उभयविकल है।

अब अन्वय दृष्टान्ताभास का उदाहरणान्तर कहते है :-

"विपरीतान्वयश्च यदपौरुषेयं तदमूर्तम्।।42।।

सूत्रान्वय :- विपरीतान्वयः = विपरीत अन्वय, **च** = और, **यत्** = जो, **अपौरुषेयं** = अपौरुषेय, **तत्** = वह, **अमूर्तम्** = अमूर्त।

सूत्रार्थ - जो अपौरुषेय होता है, वह अमूर्त होता है, वह विपरीतान्वय नामका दृष्टान्ताभास है।

संस्कृतार्थ - यत्र साध्यसाधनयोः वैपरीत्येन अन्वय व्याप्तिः प्रदर्श्यते सोऽन्वय दृष्टान्ताभासो निगद्यते:।तद्यथा यदपौरुषेयं तदमूर्तम् यथा गगनम्। अत्र गगनस्यान्वयदृष्टान्ताभासत्वम् विद्युदादेः अपौरुषेयत्वेऽपि अमूर्तत्वाभावात्।

संस्कृत टीकार्थ - जहाँ साध्य और साधनमें विपरीतता के साथ अन्वय व्याप्ति दिखलाई जाती है, वह अन्वय दृष्टान्ताभास कहलाता है। जैसे -जो अपौरुषेय होता है वह अमूर्त होता है जैसे आकाश। इसमें आकाशके अन्वय दृष्टान्ताभासपना है, विद्युत आदि के अपौरुषेयपना होने पर भी अमूर्तपनेका अभाव होनेसे।

विशेष - साधनके सद्भावमें साध्यका सद्भाव अन्वय व्याप्ति है,

किन्तु यहाँ पर अपौरुषेयरूप साध्यके सद्भावमें अमूर्तरूप हेतुका सद्भाव बतलाया गया है। अतः इसे विपरीतान्वय नामका दृष्टान्ताभास कहा गया है।

अब अन्वय दृष्टान्ताभास की पुष्टि करते है :-

"विद्युदादिना ऽति प्रसङ्गेत्।।43।।

सूत्रान्वय :- विद्युदादिना = बिजली आदिसे, **अतिप्रसंङ्गेत्** = अति प्रसंगहोनेसे।

सूत्रार्थ - क्योंकि इसमें बिजली आदि से अति प्रसंग दोष आता है।

संस्कृतार्थ - विपरीतान्वय व्याप्ति प्रदर्शनेन विद्युदादिनातिप्रसङ्गो भवेत्। अर्थात् विद्युत् अपौरुषेया विद्यतेऽतोऽमूर्ता भवितव्या। परन्तु सा आपौरुषेया सत्यपि मूर्तिका वर्तते, अतोऽत्र विपरीतान्वय व्याप्ति प्रदर्शनम् अन्वय दृष्टान्ताभासो विज्ञेयः।

संस्कृत टीकार्थ - उल्टी अन्वय व्याप्ति दिखलानेसे बिजली आदिकके अतिप्रसङ्ग होता है, अर्थात् बिजली आदि अपौरुषेय है, इसलिए अमूर्त होना चाहिए। परन्तु वह अपौरुषेय होती हुई मूर्तिक है, इसलिए यहाँ पर विपरीत अन्वय व्याप्ति दिखलानेसे अन्वय दृष्टान्ताभास जानना चाहिए।

अब व्यतिरेक उदाहरणाभास को कहते हैं -

"व्यतिरेकेऽसिद्धतद्व्यतिरेकाः परमाण्विन्द्रिय सुखाकाशवत्"।।44।।

सूत्रान्वय :- व्यतिरेक = व्यतिरेकमें, **असिद्धव्यतिरेक**= सिद्धसाध्य, असिद्ध साधन, असिद्धोभय, **परमाणु** = परमाणु/इन्द्रिय सुख, **आकाशवत्** = आकाशके समान।

सूत्रार्थ - व्यतिरेकदृष्टान्ताभास साध्यविकल, साधनविकल, उभयविकल, इनके उदा. परमााणु इन्द्रिय सुख और आकाश।

संस्कृतार्थ- व्यतिरेक दृष्टान्ताभासोऽपि त्रिविधः। असिद्धसाध्याभावः, असिद्ध साधनाभावः, असिद्धोभयाभावश्चेति। तद्यथा शब्द अपौरुषेयः, अमूर्तत्वात्, अत्र अनुमाने परमाणुः साध्याभावविकल दृष्टान्तः तस्या मूर्तत्वेऽपि पौरुषेयत्वाभावात्। अथ चात्रैवानुमाने इन्द्रियसुख साधनाभाव विकल दृष्टान्तः तस्य पौरुषेयत्वेऽपि मूर्तत्वाभावात। किञ्चित्रैवानुमाने

आकाशम् उभयाभाव विकल द्रष्टान्त: आकाशस्य पौरुषेयत्वा भावान्मूर्तत्वाभावाच्च।

संस्कृतार्थ - व्यतिरेक दृष्टान्ताभासके तीन भेद है - असिद्धसाध्य, असिद्धसाधन, असिद्धउभय। जैसे - शब्द अपौरुषेय है, अमूर्त होनेसे। इस अनुमानमें परमाणु साध्य विकल दृष्टान्त है। उसके अमूर्त होने पर भी पौरुषयेपनेका अभाव होनेसे। और इस अनुमानमें ही इन्द्रियसुख साधनाभाव विकल द्रष्टान्त है। क्योंकि उसके पौरुषेयपना होने पर भी मूर्त का अभाव होनेसे। और क्या इस ही अनुमानमें आकाशको उभयाभाव विकलद्रष्टान्ताभास है, क्योंकि आकाशके पौरुषेयपने का अभाव है और मूर्तपना का भी अभाव है।

विशेष - शब्द अपौरुषेय है, अमूर्त होनेसे, इस अनुमानमें असिद्ध है साध्य साधन और उभयव्यतिरेक जिस दृष्टान्तमें ऐसा विग्रह है। उनमें साध्य व्यतिरेक द्रष्टान्ताभासका उदाहरण है। असिद्धोभय व्यतिरेक दृष्टान्ताभासका उदाहरण आकाश है।

अब व्यतिरेक दृष्टान्ताभास का उदाहरणान्तर कहते हैं :-

"विपरीत व्यतिरेकश्च यन्नामूर्तं तन्नापौरुषेयम्"।।45।।

सूत्रान्वय :- विपरीतव्यतिरेक: = विपरीत व्यतिरेक, **च** = और, **यत्** = जो, **अमूर्त** = अमूर्त, **न** = नहीं, **तत्** = वह, **अपौरुषेयम्** = अपौरुषेय।

सूत्रार्थ - जो अमूर्त नहीं है, वह अपौरुषेय नहीं है, यह विपरीत व्यतिरेक दृष्टान्ताभासका उदाहरण है।

संस्कृतार्थ - यत्र साधनाभाव मुखेन साध्याभाव: प्रदर्श्यते सोऽपि। व्यतिरेकद्रष्टान्ताभासो भवति। तद्यथा यन्नामूर्तं तन्नापौरुषेयं यथा घट: इत्यत्रघट: व्यतिरेक दृष्टान्ताभास: विद्युदादे: मूर्तत्वेऽपि पौरुषेयत्त्वाभावात्।

संस्कृत टीकार्थ - जहाँ पर साधनके अभाव सुखसे, साध्यका अभाव दिखाया जाता है वह भी व्यतिरेक दृष्टान्ताभास होता है। जैसे - जो अमूर्त है वह पौरुषेय नहीं है जैसे - घट, इस प्रकार इसमें घट व्यतिरेक दृष्टान्ताभास है क्योंकि विद्युतआदि के मूर्तपना होने पर भी पौरुषेयपनेका अभाव होनेसे।

विशेष - व्यतिरेक व्याप्तिमें सर्वत्र साध्यके अभावमें साधनका अभाव

दिखाया जाता है, यहाँ पर वह विपरीत दिखाई गई है, अर्थात् साध नके अभावमें साध्यका अभाव बतलाया गया है, अतः इसे व्यतिरेक दृष्टान्ताभास कहा गया है, क्योंकि इस प्रकारकी व्याप्तिमें भी विद्युत आदिसे अति प्रसंग दोष आता है।

अब बाल व्युत्पत्तिके लिए उदाहरण, उपनय, निगमन पहले स्वीकार किए गए है, यह बात पहले ही कही जा चुकी है। अब बालजनोंके प्रति कुछ अवयवोंके कम प्रयोग करने पर वे प्रयोगाभास है यह कहते है :-

"बालप्रयोगयाभासः पञ्चावयववेषु कियद्धीनता।।46।।

सूत्रान्वय :- बालप्रयोगाभासः = बाल प्रयोग भास, **पञ्च** = पाँच, **अवयवेषु** = अवयवोंमें, **कियद्धीनता** = कितने ही कम।

सूत्रार्थ - पाँच अवयवोंमें से कितने ही कम अवयवोंका प्रयोग बाल प्रयोगाभास है। (प्रतिज्ञा, हेतु, उदाहरण, उपनय, निगमन)

संस्कृतार्थ - पञ्चभ्यो हीनैरनुमानावयवैः बालकाना यथार्थज्ञानं नो जायते अतएव तान्प्रति पञ्चैवावयवाः प्रयोक्तव्या भवेयुः। अतो हीनावयव प्रयोगो बालप्रयोगाभासो भवेत्।

संस्कृत टीकार्थ - पच अनुमान अगोंमें से कितने ही कम अवयवोंके द्वारा बालकों को वास्तविक ज्ञान नही हो सकता। इसलिए ही उनके प्रति पाँच ही अवयव कहना चाहिए। इसलिए कम अवयव प्रयोग बालप्रयोगाभास है।

विशेषार्थ - अल्पज्ञानी पुरुषोंको उक्त पाँचों अवयवोंमें से तीन या चार अवयवोंके प्रयोग करने पर प्रकृत वस्तुका यथार्थ ज्ञान हो सकता। अतः बाल प्रयोगाभास है।

अब आचार्य बाल प्रयोगाभासका उदाहरण कहते है :-

"अग्निमानयं प्रदेशो धूमवत्वाद्यदित्थं तदित्थं यथा महानसः"।।47।।

सूत्रान्वय :- अग्निमान् = अग्निवाला, **अयं** = यह, **प्रदेशः** = प्रदेश, **धूमवत्वात्** = धूमवाला होनेसे, **यत्** = जो, **इत्थं** = इस प्रकार, **तत्** = वह, **यथा** = जैसे, **महानसः** = रसोई घर।

सूत्रार्थ - यह प्रदेश अग्निबाला है, धूमबाला होनेसे। जो धूम बाला

होता है वह अग्निबाला है, जैसे रसोईघर।

विशेषार्थ - यहाँ पर अनुमानके प्रतिज्ञा, हेतु और उदाहरण इन तीन ही अवयवोंका प्रयोग किया गया है अतः इससे यह बाल प्रयोगाभास है।

अब चार अवयवोंके प्रयोगकरने पर तदाभासता कहते है :-

"धूमवाँश्चायम्"।।48।।

सूत्रान्वय :- धूमवान् = धूमबाला, **च** = और, **अयम्** = यह।

सूत्रार्थ - और यह भी धूमबाला है।(उपनय)

संस्कृतार्थ - अग्निमानयं प्रदेशो, धूमवत्वात्, यदित्थं यथा महानसः ध्ूमवांश्चायम्। अत्रानुमान प्रयोगे प्रतिज्ञाहेतु उदाहरणोपनायानां चतुर्णामवयवानामेव प्रयोगो विहितोः निगमनं तु परित्यक्तम्। अतोऽयम्प्रयोगो बाल प्रयोगाभासो विज्ञेयः।

संस्कृत टीकार्थ - यह प्रदेश अग्निबाला है,धूमबाला होनेसे, जो ध्ूमबाला होता है वह अग्नि बाला होता है, जैसे - रसोईघर यह ध्ूमबाला है। इस अनुमानप्रयोग में प्रतिज्ञा हेतु उदाहरण उपनय, इन चार अवयवोंका ही प्रयोग कहा गया है। निगमन को छोड़ दिया गया है। इसलिए यह प्रयोगबाल प्रयोगाभास जानना चाहिए।

अब अवयवोंके विपरीत प्रयोगकरने पर भी प्रयोगाभास है यह कहते है :-

"तस्मादग्निमान् धूमवान् चायम्"।।49।।

सूत्रान्वय :- तस्मात् = इसलिए, **अग्निमान्** = अग्निबाला, **धूमवान्** = धूमबाला, **च** = और, **अयम्** = यह।

सूत्रार्थ - इसलिए यह अग्निबाला है और यह भी धूमबाला है।

संस्कृतार्थ - दृष्टान्तानन्तरम् उपनय, प्रयोक्तव्यः, यत्तथा चायं धूमवान्। ततश्च निगमनं प्रयोक्तव्यम्, यत्तस्मादग्निमान्। किन्त्वत्र सूत्रे उपनय निगमने वैपरीत्येन प्रयुक्ते, अतोऽयम्प्रयोगे बाल प्रयोगाभासो विज्ञेयाः।

संस्कृत टीकार्थ - दृष्टान्तके वाद उपनयका प्रयोग करना चाहिए कि उसी तरह यह धूमबाला है और फिर निगमनको बोलना चाहिए' इसीसे

अग्निवाला है' परन्तु इस सूत्रमें उपनय और निगमन विपरीतता से कहे गए है। इसलिए यह प्रयोग बालप्रयोगाभास जानना चाहिए।

अब अवयवोंके विपरीत प्रयोगकरने पर प्रयोगाभास कैसे कहा? ऐसी शंका होने पर समाधान देते है :-

"स्पष्टतया प्रकृतप्रतिपत्तेरयोगात्"।।50।।

सूत्रान्वय :- स्पष्टतया = स्पष्टरूपसे, **प्रकृतप्रतिपत्तेः** = प्रकृत ज्ञानके, **अयोगात्** = योग्य नहीं होनेसे।

सूत्रार्थ - कम अवयव प्रयोगकरने पर पदार्थका स्पष्टतासे ठीक-ठीक ज्ञान नहीं होता।

संस्कृतार्थ - अनुमानावयवानां क्रमहीनो प्रयोगे प्रकृतार्थस्य स्पष्टतया ज्ञानं नो जायते। अतः सः बालप्रयोगाभासः प्रोच्यते।

संस्कृत टीकार्थ - अनुमान अवयवोंका क्रमहीन प्रयोग करने पर प्रकृत अर्थका स्पष्टता से ठीक-ठीक ज्ञान नहीं होता। इसलिए वह बाल प्रयोगाभास है।

विशेषार्थ - पाँच अवयवोंमें से हीन प्रयोग या विपरीत प्रयोग करने पर शिष्यादिक को प्रकृत वस्तुका यथार्थ बोध नहीं हो पाता, इसलिए उन्हें बाल प्रयोगाभास कहते है।

अब आचार्य भगवन् आगमाभास का स्वरूप कहते हैं :-

"रागद्वेषमोहाक्रान्त पुरुषवचनाज्जातमागमाभासम्"।।51।।

सूत्रान्वय :- रागद्वेषमोहाक्रान्त = रागद्वेष मोहसे आक्रान्त, **पुरुषवचनात्** = पुरुषके वचनसे, **जातम्** = उत्पन्न हुआ, **आगमाभासम्** = आगमाभास है।

सूत्रार्थ - रागद्वेषमोहसे आक्रान्त (व्याप्त) पुरुषके वचनोंसे उत्पन्न हुए पदार्थके ज्ञानको आगमाभास कहते हैं।

संस्कृतार्थ - रागिणो, द्वेषिणोऽज्ञानिनो वा मानवस्य वचनेभ्यः समुत्पन्नः आगमः आगमाभासो विज्ञेयः।

संस्कृत टीकार्थ - रागिओंके, द्वेषियोंके और अज्ञानियोंके वचनोंके द्वारा उत्पन्न आगमको आगमाभास जानना चाहिए।

अब आगमाभासका उदाहरण कहते हैं :-

"यथा नद्यास्तीरे मोदकराशय: सन्ति, धावध्वं माणवका:"।।52।।

सूत्रान्वय :- **यथा** = जैसे, **नद्या:** = नदीके, **तीरे** = किनारपर, **मोदकराशय:** = लड्डूओंके ढेर, **सन्ति** = है, **धावध्वं** = दोडो, **माणवक:** = बालको।

सूत्रार्थ - जैसेकि - हे बालको दौडो,नदीके किनारे लड्डूओंके ढेर लगे है।

संस्कृतार्थ - नद्यास्तीरे मोदकराशय: सन्ति, धावध्वं माणवका: इति वचनमागमाभासो विद्यते रागेणोक्तत्वात्।

संस्कृत टीकार्थ - नदीके किनारे लड्डूओंके ढेर लगे हैं, बालको दौड़ो। इस प्रकारका वचन आगमाभास है क्योंकि यह वचन रागोक्त है। (रागसे कहा गया है)

विशेषार्थ - कोई व्यक्ति बालकोंसे परेशान (व्याकुलाचित्त) था उसने उन बालकोंका संग छुड़ानेकी इच्छासे छल पूर्वक वाक्य कहकर उन्हें नदीके तट प्रदेश पर भेजा। वस्तुत: नदीके किनारे पर मोदक नहीं थे इसलिए यह वचन आगमाभास है।

अब केवल एक इस प्रथम उदाहरणसे सतुष्ट नहीं होते आचार्य आगमाभासका दूसरा उदाहरण देते है :-

"अंगुल्यग्रे हस्तियूथशतमास्ते इति च"।।53।।

सूत्रान्वय :- **अंगुल्यग्रे** = अगुलीके अग्र पर, **हस्तियूथ** = हाथियोंका समूह, **शतम्** = सौ, **आस्ते** = रहते है, **इति** = इस प्रकार, **च** = और।

सूत्रार्थ - अंगुलीके अग्रभाग पर हाथियों के सौ समुदाय रहते हैं।

संस्कृतार्थ - अगुल्यग्रे हस्तियूथशतमास्ते इति वचनमागमाभासो विद्यते प्रत्यक्षेण बाधितत्वाद् असम्भवत्वाद्वा।

संस्कृत टीकार्थ - अगुलीके अग्रभाग पर हाथियोंके सैकडो समूह रहते है इस प्रकारका वचन आगमाभास होता है, क्योंकि प्रत्यक्षसे बाधित होनेसे और और असंभव होने से।

विशेषार्थ - इस उदाहरणमें सांख्य अपने मिथ्यागम जनित वासनासे आक्रान्त चित्तहोकर प्रत्यक्ष और अनुमानसे विरुद्ध सभी वस्तुएँ सर्वथा विद्यमान है, ऐसा प्रमाण मानते हुए उक्त प्रकारसे उपदेश देते है किन्तु

उनका वह भी कथन अनाप्त पुरुष के वचन रूप होनेसे *आगमाभास* ही है।

अब इन ऊपर कहे गए दोनों वाक्योंके आगमाभासपना कैसे है, ऐसी आशङ्का होने पर आचार्य उत्तर देते है :-

"विसंवादात्"।।54।।

सूत्रान्वय :- विसंवादात् = विसवाद होनेसे।

सूत्रार्थ - विसंवाद होनेसे।

संस्कृतार्थ - आगमः प्रमाणाङ्गं विद्यते। प्रमाणेन चाविसम्वादिनाभाव्यम् अतो विसम्वादग्रस्तत्वात्पूर्वोक्त वचनामागमाभासो विद्यते।

संस्कृत टीकार्थ - आगम प्रमाणका अग है। और प्रमाणको अविसंवादि होना चाहिए इसलिए विवादग्रस्त होनेसे पूर्वोक्त वचन आगमाभासहै।

प्रश्न 288-आगमरूप से प्रमाण किसे नहीं माना जा सकता है।

उत्तर - जिन पुरुषोंके वचनोंमें विसवाद, विवाद, पूर्वापरविरोध या विपरीत अर्थ-प्रतिपादकपना पाया जाता है वे आगम स्वरूप नहीं है।

अब प्रमाणके सख्याभास का स्वरूप कहते है :-

"प्रत्यक्षमेवैकं प्रमाणमित्यादि संख्याभासम्"।।55।।

सूत्रान्वय :- प्रत्यक्षम् = प्रत्यक्ष को, **एव** = ही, **एक** = एकको, **प्रमाणम्** = प्रमाण, **इत्यादि** = इस रूपसे, **संख्याभासम्** = सख्याभास है।

सूत्रार्थ - प्रत्यक्ष ही एक प्रमाण है, इत्यादिरूप से सर्व संख्याभास है।

विशेषार्थ - प्रत्यक्ष और परोक्षके भेदसे प्रमाणदो प्रकार का है, यह पहले कहा गया है, उससे विपरीत प्रत्यक्ष ही एक प्रमाण है अथवा प्रत्यक्ष और अनुमान ये ही दो प्रमाण है, अन्य नहीं है, ऐसी अवधारणा करना भी सख्याभास है।

नोट - सूत्रका संस्कृतार्थ सूत्रार्थ ही है।

अब प्रत्यक्षही एक प्रमाण है, यह कहना कैसे संख्याभास है, कहते है :-

"लौकायतिकस्य प्रत्यक्षतः परलोकादि निषेधस्य पर बुद्धया देश्चासिद्धेरतद्विषयत्वात्"।।56।।

सूत्रान्वय :- **लौकायतिकस्य** = चार्वाकके, **प्रत्यक्षतः** = प्रत्यक्षसे, **परलोकादि** = परलोक आदिका, **निषेधस्य** = निषेध के, **परबुद्धयादे** = परबुद्धि आदिकी, **असिद्धेः** = सिद्ध न होनेसे, **च** = और, **अतद्विषयत्वात्** = उसके विषय न होनेसे।

सूत्रार्थ - चार्वाक का प्रत्यक्षको ही प्रमाण मानना इसलिए संख्याभास है कि प्रत्यक्षसे परलोक आदिका निषेध और पर की बुद्धि आदि की सिद्धि नहीं होती है, क्योंकि वे उसके विषय नहीं है।

संस्कृतार्थ - चार्वाकस्य प्रत्यक्षमात्र प्रमाणस्य स्वीकरणमतः संख्याभासो विद्यते, तदनुमानादि प्रमाण विना प्रत्यक्षमात्रेण परलोकादि निषेधस्य पर बुद्धयादेश्च सिद्धिर्नोभवेत्, यतस्तौ प्रत्यक्षविषयौ न स्तः। अथ चायं नियमो यत् यद्यत् न विषयीकरोति तत्तस्य विधि, निषेधम्वा कर्तुं नो शक्नुयात्।

संस्कृत टीकार्थ - चार्वाकका प्रत्यक्षमात्र प्रमाणको स्वीकार करना सख्याभास है जो अनुमानादि प्रमाण विना प्रत्यक्षमात्रसे परलोकादि का निषेध और परकी बुद्धि आदिकी सिद्धि नहीं हो सकती क्योंकि वे दोनों प्रत्यक्षके विषय नहीं है और ऐसा नियम है कि जो जिसको विषय नहीं करता, वह उसका निषेध और विधान भी नहीं कर सकता। समर्थ ही नहीं है।

अब चार्वाकके दृष्टान्त द्वारा बौद्धादिके मतमें भी संख्याभासपना है यह दिखलाते है :-

"सौगत सांख्ययौग प्राभाकर जैमिनीयानां प्रत्यक्षानुमानागमोप मानार्थापत्त्याभावैरेकैकाधिकैः व्याप्तिवत्।।57।।

सूत्रान्वय :- **सौगत** = बुद्ध, **सांख्य** = सांख्य, **यौग** = यौग/प्रभाकर **जैमिनीयानाम्** = जैमिनीके/प्रत्यक्ष/अनुमान/आगम/उपमान/अर्थापत्ति, **अभावैः** = अभावके द्वारा, **एक** = एक, **अधिकैः** = अधिकके द्वारा/ **व्याप्तिवत्** = व्याप्तिके समान।

सूत्रार्थ - जिस प्रकार बौद्ध, सांख्य, यौग, प्रभाकर और जैमिनीयोंके प्रत्यक्ष, अनुमान, आगम, उपमान, अर्थापत्ति और अभाव इन एक - एक अधिक प्रमाणोंके द्वारा व्याप्ति विषय नहीं की जाती है।

संस्कृतार्थ - यथा सौगत सांख्य यौग प्रभाकर जैमिनीयाङ्गीकृतैरेकैकाधिकैः प्रत्यक्षानुमानागमोपमानार्थापत्त्याभावैः व्याप्तेरनिर्णयोऽतस्तानि संख्याभासस्तथा चार्वाकोऽपि प्रत्यक्षमात्रेण परलोकादि निषेधस्य परबुद्धयादेश्च सिद्धिं कर्तुं नो शक्नुयात्। अतस्तत्स्वीकृतम् प्रत्यक्षमेवैकम्प्रमाणं संख्याभासः।

संस्कृत टीकार्थ - जैसे - बौद्ध, संख्या, यौग, प्रभाकर, जैमिनीय इनके द्वारा स्वीकृत एक-एक अधिक प्रत्यक्ष, अनुमान, आगम, उपमान, अर्थापत्ति और अभावके द्वारा व्याप्तिका निर्णय नही होता। इसलिए उनकी संख्या संख्याभास है उसी प्रकार चार्वाकभी प्रत्यक्षमात्रसे ही परलोकादि का निषेध तथा परकी बुद्धि आदिक की सिद्धि नहीं कर सकता। इसलिए चार्वाक के द्वारा स्वीकृत प्रत्यक्ष ही एक प्रमाण है - ऐसा मानना संख्याभास है।

विशेषार्थ -

	मत	प्रमाण संख्या
1	चार्वाक	प्रत्यक्ष (एक)
2.	सौगत	प्रत्यक्ष, अनुमान (दो)
3	सांख्य	प्रत्यक्ष, अनुमान, आगम,(तीन)
4.	यौग	प्रत्यक्ष, अनुमान, आगम, उपमान(चार)
5.	प्रभाकर	प्रत्यक्ष, अनुमान, आगम, उपमान, अर्थापत्ति(पाँच)
6.	जैमिनीय	प्रत्यक्ष, अनुमान, आगम, उपमान, अर्थापत्ति, अभाव(छः)

प्रत्यक्ष इन सबके द्वारा माने गए प्रमाणों से व्याप्ति अर्थात् अविनाभाव का ग्रहण नहीं होता है।

अब यहाँ पर चार्वाकका कहना है कि पराई बुद्धि आदिक का ज्ञान यदि प्रत्यक्षसे नहीं होता न होवे, अन्य अनुमानादिक से हो जायेगा, ऐसी शंका का समाधान देते हैं :-

"अनुमानादेरतद्विषयत्वे प्रमाणान्तरत्वम्"।।58।।

सूत्रान्वय :- अनुमानादेः = अनुमान आदिके, **अतत्** = उस पर बुद्धिका, **विषयत्वेः** = विषयपना, **प्रमाणान्तरत्वम्** = प्रमाणन्तरपना।

सूत्रार्थ - अनुमानादिके परबुद्धि आदिकका विषयपना मानने पर अन्य प्रमाणोंके मानने का **प्रसङ्ग** आता है।

संस्कृतार्थ - अनुमानेन परलोकादि निषेधस्य पर **बुद्ध्यादिसिद्धेर्वा** स्वीकारेऽनुमानं द्वितीय प्रमाणं माननीय भवेत्। तदा प्रत्यक्ष मात्रस्य प्रमाणस्याङ्गीकरणं संख्याभासः सुस्पष्टो भवेत्।

संस्कृत टीकार्थ - अनुमानके द्वारा परलोकादिका निषेध और परबुद्धि आदि के सिद्ध होनेपर आपके द्वारा स्वीकार करने पर अनुमान को द्वितीय प्रमाण मानना होगा। तब तो प्रत्यक्ष ही एक प्रमाण मानना संख्याभास बिल्कुल स्पष्ट हो जायेगा।

विशेषार्थ - 'तत शब्दसे परबुद्धि आदि कहे गए है। अनुमानादिको पर बुद्धि आदिका विषय करने वाला मानने पर एक प्रत्यक्षही प्रमाण है यह वचन घटित नहीं होगा, यह सूत्र का समुच्चयार्थ है।

अब आचार्य भगवन् इसी विषय में उदाहरण देते है :-

"तर्कस्येव व्याप्तिगोचरत्वे प्रमाणान्तरत्वमप्रमाणस्या व्यवस्थापकत्वात्"।।59।।

सूत्रान्वय :- तर्कस्य = तर्कको, **एव** = ही, **व्याप्तिगोचरत्वे** = व्याप्तिको विषय करने वाला, **प्रमाणान्तरत्वम्** = एक भिन्नप्रमाणापना, **अप्रमाणस्य** = अप्रमाणज्ञानकी, **अव्यवस्थापकत्वात्** = व्यवस्था नहीं करनेसे।

सूत्रार्थ - तर्कको व्याप्तिका विषय करने वाला मानने पर बौद्धादिक को उसे एक भिन्न प्रमाण मानना पड़ता है; क्योंकि अप्रमाणज्ञान पदार्थकी व्यवस्था नहीं कर सकता है।

संस्कृतार्थ - किञ्चानुमानादेः परबुद्ध्यादि निश्चायकत्वाभ्युपगमेऽपि चार्वाकाणाम् प्रत्यक्षैक प्रमाणवादो हीयते। यथा सौगतादिनां तर्क प्रमाणेन व्याप्ति निश्चयाभ्युपगमे स्वाभिमत द्वित्रि चतुरादि संख्याव्याघातो भवति। किञ्च तर्कस्याप्रमाणत्वाभ्युपगमे व्याप्ति प्रतिपत्तिः खपुष्पवत् भवेत्। अप्रमाणस्य समारोपाव्यवच्छेदेन स्वविषय निश्चायकत्वाभावात्।

संस्कृत टीकार्थ - कोई और कहता है कि अनुमानादिके पर बुद्ध्यादिका निश्चायकपना स्वीकार करने पर भी चार्वाकों को प्रत्यक्षएक प्रमाणवाद को त्याग करने का प्रसंग आता है, जैसे - सौगतादिको तर्कप्रमाणके द्वारा व्याप्तिका निश्चय स्वीकार करने पर

उनके द्वारा स्वीकृत दो, तीन, चार आदि संख्याका व्याघात होता है। यदि कोई कहे कि तर्कको मानकर भी हम उसे व्याप्त नहीं मानेंगे, अप्रमाणमान लेवेंगे व्याप्तिका ज्ञान आकाश पुष्पके समान हो जावेगा। अप्रमाणके समारोप आदिका निराकरण न करनेसे अपने विषयके निश्चायकपनेका अभाव होनेसे।

अब पूर्वोक्त कथनकी पुष्टि करते हुए आचार्य कहते हैं :-

"प्रतिभासस्य च भेदकत्वात्"।।60।।

सूत्रान्वय :- प्रतिभासस्य = प्रतिभास का, **च** = और, **भेदकत्वात्** = भेदक होनेसे।

सूत्रार्थ - प्रतिभास का भेद ही प्रमाणोंका भेदक होता है।

संस्कृतार्थ - किञ्चवस्तु स्वरूपप्रतिभास भेदः एव प्रमाणभेदान् व्यवस्थापयति। यथा स्पष्टप्रतिभासः प्रत्यक्षम् अस्पष्टप्रतिभासश्च परोक्ष कथ्यते, तथा व्याप्तिरूपः प्रतिभासः तर्को निगद्यते। एवञ्च तर्क प्रमाणेऽङ्गीकृते चार्वाकादीनामङ्गीकृत प्रमाण सख्या व्याघातोऽनिवार्यो भवेत्। अतस्तत्स्वीकृतप्रमाण सख्यायाः प्रमाणसंख्या भासत्वमनिवार्य जायेत।

संस्कृत टीकार्थ - कोई और कहता है वस्तु स्वरूपके प्रतिभासका भेद ही प्रमाणके भेदोंकी व्यवस्था करता है जैसे - स्पष्ट प्रतिभासके प्रत्यक्ष कहते हैं। अस्पष्ट प्रतिभासको परोक्ष कहते हैं उसी प्रकार व्याप्ति रूप प्रतिभासको तर्क कहते हैं और इस प्रकार तर्क प्रमाणको स्वीकार करने पर चार्वाक आदि के द्वारा स्वीकृत प्रमाणसख्या का व्याघात होता है अवश्य ही। इसलिए सौगतादियोंके द्वारा स्वीकृत प्रमाण संख्यामें प्रमाण सख्याभासपना अनिवार्य ही होता है।

अब विषयाभासका स्वरूप कहते हैं :-

"विषयाभासः सामान्यं विशेषो द्वयं वा स्वतन्त्रम्"।।61।।

सूत्रान्वय :- विषयाभासः = विषयाभास, **सामान्यं** = केवल सामान्य, **विशेषः** = केवल विशेष, **वा** = अथवा, **द्वयं** = सामान्य विशेषको, **स्वतंत्रम्** = स्वतत्र मानना।

सूत्रार्थ - केवलसामान्यको, केवल विशेषको, अथवा स्वतंत्र दोनोंको प्रमाण का विषय मानना विषयाभास है।

संस्कृतार्थ - सामान्यमात्रस्य, विशेष मात्रस्य, स्वतंत्रस्य स्वतत्रस्य

द्वयस्य वा प्रमाण विषयत्वेनाङ्गीकरण प्रमाण विषयाभास, प्रोच्यते।

संस्कृत टीकार्थ - सामान्यमात्रको, विशेष मात्रको, अथवा दोनों रूप पदार्थको स्वतंत्र रूपसे एक-एक को प्रमाणका विषयरूपसे स्वीकार करने वाला प्रमाण विषयाभास कहा जाता है।

विशेषार्थ - सांख्य सामान्यमात्र (द्रव्य) का ही प्रमाण मानता है। बौद्ध विशेष रूपकेवल (पर्याय) को ही प्रमाणका विषय कहते हैं। नैयायिक और वैशेषिक सामान्य और विशेष को स्वतत्र पदार्थ मानते है परन्तु प्रमाणका विषय सामान्य विशेषात्मक है यह पहले ही सिद्ध किया जा चुका है।

अब उन साख्यादिको की मान्यताए विषयाभास कैसे है, आचार्य इस आशका के निराकरण करनेके लिए उत्तरसूत्र कहते है :-

"तथाऽप्रतिभासनात् कार्याकरणाच्च"।।62।।

सूत्रान्वय :- तथा = उसी प्रकार, **अप्रतिभासनात्** = अप्रतिभास होनेसे। **कार्य** = कार्यको, **अकरणात्** = न करने वाला होनेसे, **च** = और।

सूत्रार्थ - उसी प्रकारका प्रतिभास न होनेसे और कार्यको नहीं करनेसे।

संस्कृतार्थ - साख्याभिमत सामान्यत्व, सौगताभिमत विशेषतत्व, यौगाभिमत परस्पर निरपेक्ष सामान्य विशेष रूप तत्वञ्च विषयाभासो भवति, तथा प्रतिभासनाभावात्, अर्थक्रियाकारित्वाभावाच्च।

संस्कृत टीकार्थ - साख्योंके द्वारा स्वीकृत सामान्य तत्व को, बौद्धोंके द्वारा स्वीकृत विशेष तत्त्वको, यौगोंके द्वारा स्वीकृत परस्पर निरपेक्ष सामान्य और विशेष रूप तत्त्व विषयाभास होता है। उसी प्रकार प्रतिभासका अभाव होनेसे अर्थक्रियाकारीपने का भी अभाव होता है।

अब कोई कहे कि वे एकान्तरूप पदार्थ अपना कार्य कर सकते है तो आचार्य भगवन् उनसे पूछते है कि वह एकान्तात्मक तत्त्वस्वयं समर्थ होते हुए अपना कार्य करेगा। अथवा असमर्थ रहते हुए प्रथम पक्षमें दूषण देते है :-

"समर्थस्य करणे सर्वदोत्पत्तिरनपेक्षत्वात्"।।63।।

सूत्रान्वय :- समर्थस्य = समर्थके, **करणे** = कार्य करने पर, **सर्वदा** = हमेशा, **उत्पत्तिः** = उत्पन्न, **अनपेक्षत्वात्** = अपेक्षा न होनेसे।

सूत्रार्थ - समर्थ पदार्थके कार्य करने पर अपेक्षा न होनेसे हमेशा कार्यकी उत्पत्ति का प्रसंग आता है।

संस्कृतार्थ - किञ्च तदेकान्तात्मकं तत्त्वं स्वयं समर्थमसमर्थ वा कार्यकारी स्यात्? तत्र समर्थत्वे किं निरपेक्षं कार्य कुर्यात् सापेक्षम् वा? न तावत्प्रथम: पक्ष:। निरपेक्षस्य समर्थ तत्त्वस्य कार्य जनकत्वे सर्वदा कार्योत्पत्ति प्रसङ्गस्य दुर्निवारत्वात्।

संस्कृतटीकार्थ - यदि कोई और कहे कि वह एकान्तात्मक तत्त्व स्वयं समर्थ अथवा असमर्थ होकर कार्यकारी होता है यह प्रश्न है? उसमें समर्थ होता हुआ क्या कार्यको निरपेक्ष होकर करता है, अथवा सापेक्ष होकर? प्रथम पक्ष तो आपके यहाँ बनता नहीं है। क्योंकि निरपेक्ष समर्थतत्त्व के कार्यको उत्पन्न करने वाला मानते हो तो हमेशा कार्योत्पत्ति का प्रसग आता है, जिसका निराकरण करना कठिन है।

अब यदि कहा जाए कि वह पदार्थ सहकारी कारणोंके सान्निध्य में उस कार्यको करता है, अत: कार्यकी सदा उत्पत्ति नहीं होती है तो आचार्य भगवन् कहते हैं :-

"परापेक्षणे परिणामित्वमन्यथा तदभावात्"।।64।।

सूत्रान्वय :- **परापेक्षणे** = दूसरे सहकारी की अपेक्षासे, **परिणामित्वम्** = परिणामीपना है, **अन्यथा** = अन्यथा, **तत्** = उस (कार्यका), **अभावात्** = अभाव होनेसे।

सूत्रार्थ - दूसरे सहकारी कारणोंकी अपेक्षा रखने पर परिणामीपना प्राप्त होता है अन्यथा कार्य नहीं हो सकता है।

संस्कृतार्थ - नापि द्वितीय: पक्ष:। सापेक्ष समर्थ तत्त्वस्य कार्य जनकत्व अभ्युपगमे परिणामित्व प्रसगात्, सामान्य विशेषात्मकत्वसिद्धे:, एक तत्त्वस्य परिणामित्त्वाभावे कार्य जनकत्वायोगात्।

संस्कृत टीकार्थ - द्वितीय पक्ष भी ठीक नहीं है, सापेक्ष समर्थ पदार्थके कार्य करने वाला स्वीकार करने पर परिणामीपने का प्रसंग होता है, सामान्य विशेषात्मकपनेकी सिद्धि होती है, एक पदार्थके परिणामीपनेका अभाव होने पर कार्यको करने वालेका अयोग होनेसे।

विशेषार्थ - सहकारी कारणोंकी वियुक्त अवस्थामें कार्य नही करने

वाले और सहकारी कारणोंके सन्निधानके समय कार्य करने वाले पदार्थके पूर्व आकार का परित्याग उत्तर आकार का उपादान और स्थिति लक्षण परिणाम के संभव होनेसे परिणामीपना सिद्ध होता है। यदि ऐसा न माना जाए जो कार्य करने का अभाव रहेगा, जैसे - प्राग्भावदशामें कार्यका अभाव था।

अब आचार्य असमर्थरूप दूसरे पक्षमें दोष कहते हैं :-

"स्वयमसमर्थस्याकारकत्वात् पूर्ववत्"।।165।।

सूत्रान्वय :- स्वयम् = आपही, **असमर्थस्य** = असमर्थके, **आकारत्वात्** = कार्य करने वाला न होनेसे, **पूर्ववत्** = प्रथमपक्षके समान।

सूत्रार्थ - आपही असमर्थके पूर्वके समान (प्रथम पक्षके समान) कार्य करने वाला न होनेसे।

संस्कृतार्थ -स्वयमसमर्थेन तत्त्वेन कार्योत्पत्तिस्तु बन्ध्यासुतवत् असभवैव। तस्मात् विशेषात्मक पदार्थ एव प्रमाण गोचरो भवति, शेषश्च विषयाभास इति।

संस्कृत टीकार्थ - स्वय असमर्थ पदार्थ से कार्यकी उत्पत्ति मानी जाए तो वह बन्ध्याके पुत्रके समान असभव ही है। इसलिए सामान्य विशेषात्मक पदार्थही प्रमाणका विषय होता है। और शेष विषयाभास है। अब फलाभासका वर्णन करते है :-

"फलाभास: प्रमाणादभिन्नं भिन्नमेव वा"।।166।।

सूत्रान्वय :- फलाभास: = फलाभास, **प्रमाणात्** = प्रमाणसे, **अभिन्नं** = अभिन्न, **भिन्नं** = भिन्न, **एव** = ही, **वा** = अथवा।

सूत्रार्थ - प्रमाणसे उसके फलको सर्वथा अभिन्न तथा भिन्न मानना फलाभास है।

संस्कृतार्थ - प्रमाणात् सर्वथा अभिन्नमथवा सर्वथा भिन्न फलम् फलाभास· कथ्यते।

संस्कृत टीकार्थ - प्रमाणसे सर्वथा अभिन्न अथवा सर्वथा भिन्न प्रमाणके फलको मानना फलाभास कहा जाता है।

अब दोनों पक्षोंमें फलाभास कैसे हैं, तो प्रथम सर्वथा अभिन्न पक्षमें फलाभास बतलाते हैं :-

"अभेदे तद्व्यवहारानुपपत्ते:"।।167।।

सूत्रान्वय :- अभेदे = अभेद में, **तत्** = वह,(प्रमाण और प्रमाणाफल) **व्यवहार** = कथन, **अनुपपत्तेः** = नहीं बन सकेगा।

सूत्रार्थ - प्रमाणसे फल सर्वथा अभिन्न माना जाए तो प्रमाण और प्रमाणके फल में व्यवहारही नहीं हो सकता है।

संस्कृतार्थ - ननु प्रमाणात्सर्वथा अभिन्नस्य फलस्य कथं फलाभासता इति न शकनीय, फलस्य सर्वथा अभिन्नत्त्वाभ्युपगमे इदम् प्रमाणम् इदञ्चास्य प्रमाणस्य फलम् इति व्यवहारस्यानुपत्तेः।

संस्कृत टीकार्थ - कोई कहता है कि प्रमाणसे फल सर्वथा अभिन्न है तो फलाभास कैसे हुआ इस प्रकारकी शका नहीं करना चाहिए, फलके सर्वथा अभिन्नपना स्वीकार करने पर यह प्रमाण है और यह इसका फल है इसी प्रकारके व्यवहार की उत्पत्ति नहीं बन सकेगी। विशेषार्थ - कहनेका भाव यह है कि या तो फल ही रहेगा, अथवा प्रमाण ही रहेगा? दोनों नहीं रह सकेंगे।

अब कल्पनासे प्रमाण और फलका व्यवहार करने में आपत्ति :-

"व्यावृत्यापि न तत्कल्पना फलान्तराद्व्यावृत्याऽफलत्व प्रसंगात्"।।68।।

सूत्रान्वय :- व्यावृत्यापि = भिन्न हाने पर भी, **न** = नहीं, **तत्** = फलकी, **कल्पना** = कल्पित करना, **फलान्तरात्** = अन्य फलकी, **व्यावृत्त्या** = निराकरण होनेसे।

अफलत्वं = अफलपनेका, **प्रसंगात्** = प्रसग होनेसे।

सूत्रार्थ - अफलकी व्यावृत्तिसे भी फलकी कल्पना नहीं की जा सकती अन्यथा फलान्तरकी व्यावृत्तिसे अफलपनेकी कल्पनाका प्रसग आ जायेगा।

संस्कृतार्थ - फलाभावस्य व्यावृत्यापि फलस्य कल्पना नो संभवेत् फलाभावव्यावृत्त्या फल कल्पनेव सजातीय फल व्यावृत्त्याऽफल कल्पनायाः प्रसङ्गात।

संस्कृत टीकार्थ - फलाभाव की व्यावृत्ति होनेपर भी फलकी कल्पना सभव नहीं है दूसरे जाती वाले फलकी व्यावृत्तिसे अफल की कल्पना क्यों न हो जायेगी? इसलिए कल्पना मात्रसे फलका व्यवहार नहीं हो

सकता।

विशेषार्थ - सूत्रका अभिप्राय यह है कि जैसे फलका विजातीय जो अफल उसकी व्यावृत्तिसे आप बौद्ध लोग फलका व्यवहार करते है। उसी प्रकार फलान्तर अर्थात् जो सजातीय फल है उसकी व्यावृत्ति से अफलपनेका प्रसंङ्ग आता है।

अब आचार्य दूसरे अभेद पक्षमें दृष्टान्त देते है :-

"प्रमाणान्तरात् व्यावृत्त्ये वा प्रमाणत्वस्य"।।69।।

सूत्रान्वय :- प्रमाणान्तरात् = प्रमाणान्तरसे, **व्यावृत्त्या** = निराकरण करने से, **एव** = ही, **अप्रमाणत्वस्य** = अप्रमाणपनेका।

सूत्रार्थ - अन्य प्रमाणकी (प्रमाणान्तर)व्यावृत्ति (निराकरण) से अप्रमाणपनेका प्रसंग आता है।

संस्कृतार्थ - यथा प्रमाणान्तर व्यावृत्त्या अप्रमाणत्वस्य प्रसंग बौद्धैरङ्गी-कृतस्तथैव फलान्तर व्यावृत्त्या अफलत्वस्य प्रसग: आगच्छेत्।

संस्कृत टीकार्थ - जैसे प्रमाणान्तरकी व्यावृत्तिसे अप्रमाणपनेका प्रसग बौद्धों ने स्वीकृत किया है, उसी प्रकारही फलान्तरकी व्यावृत्तिसे अफलत्वका प्रसंग आ जावेगा।

विशेषार्थ - अन्य प्रमाणकी व्यावृत्ति से जैसे प्रमाणके अप्रमाणपनेका प्रसग आता है उसी प्रकार यहाँ भी पहले वाली ही प्रक्रिया लगानी चाहिए (विशेष प्रमेयरत्नमाला में देखें)

अब अभेदपक्षका निराकरण कर आचार्य उपसंहार करते है -

"तस्माद्वास्तवो भेद:"।।70।।

सूत्रान्वय :- तस्मात् = इसलिए, **वास्तव:** = वास्तविक, **भेद:** = भेद है।

सूत्रार्थ - इसलिए प्रमाण और फलमें परमार्थसे भेद है।

संस्कृतार्थ - अत: प्रमाणे तत्फले वा भेदो वास्तवो विद्यते, एकान्तरूपेणाभेदो नो वर्तते।

संस्कृत टीकार्थ - इसलिए प्रमाण और प्रमाणके फलमें वास्तविक भेद है एकान्त रूपसे अभेद ही नहीं है।

विशेषार्थ - कल्पनासे प्रमाण और फलका भेद नहीं मानना चाहिए, किन्तु वास्तविक भेद ही मानना चाहिए, अन्यथा प्रमाण और फलका व्यवहार नहीं बन सकता है।

अब आचार्य भगवन् नैयायिकोंके द्वारा माने गए सर्वथा भेदपक्षमें दूषण देते हुए उत्तरसूत्र कहते हैं :-

"भेदेत्वात्मान्तरवत्तदनुपपत्ते:"।।71।।

सूत्रान्वय :- भेदे = भेद में, **तु** = ता, **आत्मान्तरवत्** = अन्य आत्माके समान, **तत्** = वह,(प्रमाण और प्रमाणाफल) **अनुपपत्ते:** = हो नहीं सकता।

सूत्रार्थ - भेद मानने पर अन्य आत्माके समान यह इस प्रमाणका फल है ऐसा व्यवहार हो नहीं सकता है।

संस्कृतार्थ - प्रमाणात् फलस्य सर्वथा भिन्नत्वाङ्गीकारेऽय दोष: समायाति यद्यथा अन्यात्मप्रमाणफलं तथैव निजात्मप्रमाणफलम् उभे एव सदृशे भवेताम्। पुनश्च तत्फल मदीय प्रमाणस्य विद्यते नान्यदीय प्रमाणस्येति कथ निश्चीयेता। निष्कर्षश्चाय यद्यथान्यात्मप्रमाणफलमस्मदीयात्मप्रमाणफल नो भवेत् तथा सर्वथा भेदे मदीयात्मप्रमाणफलमपि मदीय नो व्यावर्ण्येत्।

संस्कृत टीकार्थ - प्रमाणको फलसे सर्वथा भिन्न माननेमें यह दोष आता है कि जिस तरह आत्माके प्रमाणका फल उस ही प्रकार हमारे आत्माकि प्रमाणका फल उस प्रकार ही हमारे आत्माके प्रमाण का फल दोनों सदृश हो जावेंगे। फिर वह फल हमारे प्रमाणका है और दूसरेके आत्माके प्रमाणका नही यह कैसे व्यवस्थित होगा? इसका निष्कर्ष यह है कि जैसे - दूसरे आत्माके प्रमाणका फल हमारे आत्माके प्रमाणका फल भी हमारा नहीं कहलायेगा।

अब नैयायिक लोग प्रमाण और प्रमाणके फलको समवाय संबध से मानते है इस प्रकार समवायसे मानने पर आचार्य भगवन् दोष देते हैं :-

"समवायेऽति प्रसंग:"।।72।।

सूत्रान्वय :- समवाये = समवायमें, **अतिप्रसंग** = अतिप्रसंगका दोष।

सूत्रार्थ - समवायके मानने पर अति प्रसगका दोष आता है।

संस्कृतार्थ - नैयायिकाना कथनं विद्यते यद् यत्रात्मनि प्रमाण समवाय संबंधे- नावतिष्ठेत् तत्रैव फलमपि समवाय सबंधेनावतिष्ठेत्। तदास्य प्रमाणस्येदं फलमिति व्यवस्था समवाय सम्बन्धेन भवेत्। अत्र सूत्रे तेषामस्या एवाशंकया निषेधो विहितः यद् युष्माभिः बौद्धैः समवायो नित्यो व्यापकश्च मतः। तेनाय निर्णयः कथ भवेत् यदत्रैवात्मनि एतत्फलं समवाय सम्बन्धेनावतिष्ठते नान्यत्र।

संस्कृत टीकार्थ - नैयायिकोंका ऐसा कथन है जो जिस आत्मामें प्रमाण समवाय सबंधसे स्थित है उसमें ही फलभी समवाय सबधसे स्थित है। इस प्रमाणका यह फल है इस प्रकार की व्यवस्था समवाय सम्बन्ध से होती है। इस सूत्रमें उन नैयायिकों की इस प्रकार की ही शकाका निषेध किया गया है जो तुम बौद्धोंके द्वारा समवाय नित्य और व्याप्तक पदार्थ माना गया है उससे यह निर्णय कैसे होगा इसी आत्मामें यह प्रमाण अथवा फल समवाय संबंध से रहता है, दूसरे आत्मामें नहीं।

विशेषार्थ - समवायके नित्य तथा व्यापक होनेसे वह सभी आत्माओंमें समान धर्मरूपसे रहेगा। अत. यह फल इसी प्रमाणका है, अन्य का नहीं है। इस प्रकारके प्रतिनियत नियमका अभाव होगा।

अब अपने पक्षके साधनऔर परपक्षके दूषण व्यवस्थाको दर्शाते हैं :-

"प्रमाणतदाभासौ दुष्टतयोद्भावितौ परिहृतापरिहृत दोषौ वादिनः साधनतदाभासौ प्रतिवादिनो दूषणभूषणे च"।।73।।

सूत्रान्वय :- प्रमाण = प्रमाण, **तदाभासौ** = तदाभास, **दुष्टतयोद्भावितौ** = दोषरूपमें प्रकट किये जानपर, **परिहृतदोष** = परिहार दोष वाले, **अपरिहृत दोष** = अपरिहार दोषवाले, **वादिनः** = वादिके द्वारा, **साधनतदाभासौ** = साधन और साधनाभास। **प्रतिवादिनः** = प्रतिवादिके लिए, **दूषण भूषणे च** = दूषणऔर भूषण है।

सूत्रार्थ - वादिके द्वारा प्रयोग में लाए गए प्रमाण और प्रमाणाभास प्रतिवादीके द्वारा दोषरूपमें प्रकट किये जाने पर वादीसे परिहार दोष वाले रहते हैं, तो वे वादिके लिए साधन और साधनाभास है और प्रतिवादीके लिए दूषण और भूषण है।

इस सूत्रका अभिप्राय यह है कि वादके समय वादीने पहले प्रमाणको उपस्थित किया, प्रतिवादीने दोष बतलाकर उसका उद्भावन कर दिया। पुन· वादीने उस दोषका परिहार कर दिया तो वादीके लिए

वह साधन हो जायेगा और प्रतिवादीके लिए दूषण हो जायेगा। इसी प्रकार जब वादीने प्रमाणाभास कहा प्रतिवादी ने दोष बतलाकर उसका उद्‌भावन कर दिया। तब यदि वादि ने उसका परिहार नहीं कर पाया, तो वह वादिके लिए साधनाभास हो जायेगा और प्रतिवादी के लिए भूषण हो जावेगा।

प्रश्न 288-वादी किसे कहते है?

उत्तर - शास्त्रार्थके समय जो पहले अपना पक्ष रखता है वह वादी है।

प्रश्न 289-प्रतिवादी किसे कहते है?

उत्तर - और जो उसका प्रतिवाद करता है वह प्रतिवादी कहलाता है।

प्रश्न 290-शास्त्रार्थमें जीत एवं हार किसकी होती है?

उत्तर - जो अपने पक्षपर आए हुए दूषणोंका परिहार करके अपनेपक्षको सिद्ध कर देता है, शास्त्रार्थमें उसकी जीत होती है, और जो वैसा नहीं कर पाता उसकी हार होती है।

प्रश्न 291-प्रमाण और प्रमाणाभास को जाननेका फल क्या है?

उत्तर - अपने पक्षको सिद्धकर लेना और पर पक्षमें दूषण दे देना यही प्रमाण और प्रमाणाभास का फल है।

अब उक्त प्रकारसे समस्त विप्रतिपत्तियोंके निराकरण द्वारा स्वप्रतिज्ञात प्रमाण तत्त्वकी परीक्षा कर अन्य ग्रन्थोंमें नयादि तत्त्व कहे गए है, इस बातको दिखलाते हुए अतिम सूत्र कहते है -

"संभवदन्यद्विचारणीयम्"।।74।।

सूत्रान्वयः-संभवत्=सभव,**अन्यत्** =अन्य (नय निक्षेपादि)**विचारणीयम्**=विचारणीय है।

सूत्रार्थ - संभव अन्य (नय-निक्षेपादि) भी विचारणीय है।

संस्कृतार्थ - अत्र शास्त्रे केवलं प्रमाण विवेचनं विहितम्। एतद् भिन्न नयादि तत्त्व विवेचनम् ग्रन्थान्तराद्विलोकनीयम्।

संस्कृत टीकार्थ - इस ग्रन्थमें केवल प्रमाण विवेचन को कहा गया है, इससे भिन्न नयादि तत्त्वोंका विवेचन अन्य ग्रन्थों से जानना चाहिए, या देखना चाहिए।

प्रश्न 292-न्यायका क्या अर्थ है?

उत्तर - विभिन्न प्रमाणों द्वारा वस्तुतत्त्वकी परीक्षा करना।

प्रश्न 293-न्याय दर्शन का उद्देश्य क्या है?

उत्तर - प्रमाणों के द्वारा प्रमेय (जानने योग्य) वस्तुका विचार करना और प्रमाणोंका विस्तृत विवेचन करना न्याय दर्शन का प्रधान्य उद्देश्य है।

प्रश्न 294-किन सत् पदार्थो के तत्त्वज्ञानसे मोक्षकी प्राप्ति होती है?

उत्तर - प्रमाण, प्रमेय, सशय प्रयोजन, दृष्टान्त, सिद्धान्त, अवयव, तर्क, निर्णय वाद, जल्प, वितण्डा, हेत्वाभास, छल, जाति, निग्रहस्थान इन सोलह सत् पदार्थोके तत्त्वज्ञान से मोक्षकी प्राप्ति होती है, अत: इनका परिज्ञान करना आवश्यक है।

"प्रमाण प्रमेय संशय प्रयोजन दृष्टान्त सिद्धान्तावयवतर्क निर्णयवाद जल्प वितण्डा हेत्वाभास छल जाति निग्रहस्थानानां तत्त्वज्ञानात् नि:श्रेयसाधिगम:"।।73।।

परीक्षा मुखमादर्श, हेयोपादेय तत्त्वयो:।
संविदे मादृशो बाल:, परीक्षादक्षवद् व्यधाम।।

अर्थ-**परीक्षामुखम्**=परीक्षामुख को, **आदर्शम्** = दर्पण, **हेयोपादेय** = हेय और उपादेय, **तत्त्वयो:** = दोनों तत्त्वोंके, **संविदे** = ज्ञानके लिए, **मादृश:** = मुझ सदृश, **बाल:**=बालक न (अज्ञानीने) **परीक्षादक्षवत्**=परीक्षा में कुशल के समान, **व्यधाम्** = रचा।

श्लोकार्थ - छोड़ने योग्य और ग्रहण करने योग्य तत्त्वके ज्ञानके लिए दर्पण के समान इस परीक्षामुखग्रन्थ को मुझ सदृश बालकने परीक्षामें निपुण पुरुष के समान रचा।।

।।समाप्तोऽयं ग्रन्थ:।।

सूत्र पाठावली

प्रमाणादर्थसंसिद्धि - स्तदाभासाद्विपर्ययः।

इति वक्ष्ये तयोर्लक्ष्म, सिद्धमल्पं लघीयसः।।

अथ प्रथमः समुद्देशः

स्वापूर्वार्थ व्यवसायात्मकं ज्ञान प्रमाणम्।।1।। **हिताहितप्राप्तिपरिहारसमर्थं हि प्रमाणं ततो ज्ञानमेव तत्।।2।। तन्निश्चयात्मकं समारोपविरुद्ध- त्वादनुमानवत्।।3।।अनिश्चितो ऽपूर्वार्थः।।4।।दृष्टोऽपि समारोपात्तादृक।।5।। स्वोन्मुखतया प्रतिभासनं स्वस्यव्यवसायः।।6।। अर्थस्येव तदुन्मुखा- तया।।7।।घटमहमात्मना वेद्मि।।8।।कर्मवत्कर्तृकरणक्रियाप्रतीतेः।।9।। शब्दानुच्चारणेऽपि स्वस्यानुभवनमर्थवत्।।10।।को वा तत्प्रतिभासिनमर्थमध्यक्षमिच्छँस्तदेव तथा नेच्छेत्।।11।। प्रदीपवत्।।12।। तत्प्रामाण्यं स्वतः परतश्च।।13।।**

अथ द्वितीयः समुद्देशः

तद्द्वेधा।।1।। प्रत्यक्षेतर भेदात्।।2।। विशदं प्रत्यक्षम्।।3।। प्रतीत्यन्तराव्यवधानेन विशेषवत्तया वा प्रतिभासनं वैशद्यम्।।4।। इन्द्रियानिन्द्रियनिमित्तं देशतः सांव्यवहारिकम्।।5।। नार्थालोकौ कारणं परिच्छेद्यत्वात्तमोवत्।।6।।तदन्वयव्यतिरेकानुविधानाभावाच्च केशोण्डुकज्ञानवन्नक्तंचरज्ञानवच्च।।7।। अतज्जन्यमपि तत्प्रकाशकं प्रदीपवत्।।8।। स्वावरणक्षयोपशमलक्षणयोग्यतया हि प्रतिनियतमर्थ व्यवस्था- पयति।।9।।कारणस्य च परिच्छेद्यत्वे करणादिना व्यभिचारः''।।10।। सामग्री विशेष विश्लेषिताखिलावरण- मतीन्द्रियमशेषतो मुख्यम्''।।11।। सावरणत्वे करणजन्यत्वे च प्रतिबंधसम्भवात्''।।12।।

अथ तृतीय परिच्छेदः

परोक्षमितरत्।।1।। प्रत्यक्षादिनिमित्तं स्मृतिप्रत्यभिज्ञानतर्कानुमानागम भेदम्।।2।। संस्कारोद्बोध निबन्धना तदित्याकारा स्मृतिः।।3।। दर्शनस्मरणकारणकं सङ्कलनं प्रत्यभिज्ञानं, तदेवेदं, तत्सदृशं, तद्विलक्षणं

तत्प्रतियोगीत्यादि।।5।। यथा स एवायं देवदत्तः गोसदृशोगवयः गोविलक्षणो महिषः, इदमस्माद्दूरम् वृक्षोऽयमित्यादि।।6।। उपलम्भानुपलम्भनिमित्तं
व्याप्तिज्ञानमूहः।।7।। इदमस्मिन्सत्येव भवत्यसति तु न भवत्येवेति।।8।। यथाऽग्नावेव धूमस्तदभावे न भवत्येवेति।।9।। साधनात् साध्य विज्ञानमनुमानम्।।10।। साध्याविनाभवित्वेन निश्चितो हेतुः।।11।। सहक्रमवभाव नियमोऽविनाभावः।।12।।सहचारिणो र्व्याप्यव्यापकयोश्च सहभावः।।13।। पूर्वोत्तरचारिणोः कार्यकारणयोश्च क्रमभावः।।14।। तर्कात्तन्निर्णयः।।15।।इष्टमबाधितमसिद्धंसाध्यम्।।16।। संदिग्ध-विपर्यस्ताव्युत्पन्नानां साध्यत्वं यथा स्यादित्यसिद्धपदम्।।17।।अनिष्टाध्य- क्षादिबाधितयोः साध्यत्त्वं मा भूदितीष्टाबाधितवचनम्।।18।। न चासिद्धवदिष्टं प्रतिवादिनः।।19।। प्रत्यायनाय हीच्छा वक्तुरेव।।20।। साध्यं धर्मः क्वचित् तद्विशिष्टो वा धर्मी।।21।। पक्ष इति यावत्।।22।। प्रसिद्धो धर्मी।।23।। विकल्पसिद्धे तस्मिन् सत्तेतरे साध्ये।।24।। अस्ति सर्वज्ञो, नास्ति खरविषाणम्।।25।। प्रमाणोभयसिद्धे तु साध्य- धर्म विशिष्टता।।26।।अग्निमानयं देशः परिणामी शब्दः इति यथा।।27।। व्याप्तौ तु साध्यं धर्मएव।।28।। अन्यथा तदघटनात्।।29।। साध्यधर्मा- धारसन्देहापनोदाय गम्यमानस्यापि पक्षस्य वचनम्।।30।। साध्यधर्मिणि साधन धर्मावबोधनाय पक्ष धर्मोपसंहारवत्।।31।। को वा त्रिधा हेतु मुक्त्वा समर्थयमानो न पक्षयति।।32।। एतद्द्वयमेवानुमानाङ्गं नोदाहरणम्।।33।। न हि तत्साध्यप्रतिपत्त्यङ्गं तत्र यथोक्त हेतोरैव व्यापारात।।34।। तदविनाभावनिश्चयार्थं वा विपक्षे बाधकप्रमाणबलादेव तत्सिद्धेः।।35।। व्यक्तिरूपं च निदर्शनं सामान्येन तु व्याप्तिस्तत्रापि तद्विप्रतिपत्तावनवस्थानं स्यात् दृष्टान्तान्तरापेक्षणात्।।36।। नापि व्याप्ति स्मरणार्थं तथाविध हेतुप्रयोगादेव तत्स्मृतेः।।37।। तत्परमभिधीयमानं साध्यधर्मिणि साध्यसाधने संदेहयति।38।। कुतोऽन्यथोपनयनिगमने।।39।। न च ते तदंगे, साध्यधर्मिणि हेतुसाध्ययोर्वचनादेवासंशयात्।40। समर्थनं वा वरं हेतुरूपमनुमानावयवोवास्तु साध्ये तदुपयोगात्।।41।। बालव्युत्पत्यर्थं तत्त्रयोपगमे शास्त्रे एवासौ न वादेऽनुपयोगात्।।42।।

दृष्टान्तो द्वेधा, अन्वयव्यतिरेकभेदात्।।43।।साध्यव्याप्तं साधनं यत्र प्रदर्श्यते सोऽन्वयदृष्टान्तः।।44।। साध्याभावे साधनाभावो यत्र कथ्यते स व्यतिरेकदृष्टान्तः।45।। हेतोरुपसंहार उपनयः।।46।। प्रतिज्ञायास्तु निगमनम्।।47।। तदनुमानं द्वेधा।।48।। स्वार्थपरार्थभेदात्।।49।।
स्वार्थमुक्तलक्षणम्।।50।। परार्थं तु तदर्थ परामर्शिवचनाज्जातम्।।51।। तद्वचनमपि तद्धेतुत्वात्।।52।। स हेतुर्द्वेधोपलब्ध्यनुपलब्धिभेदात्।।53। उपलब्धिर्विधि प्रतिषेध्योरनुपलब्धिश्च।।54।।अविरुद्धोपलब्धिर्विधौषोढा-व्याप्यकार्यकारण पूर्वोत्तरसहचर भेदात्।।55।। रसादेकसामग्रयनुमाने-रूपानुमानमिच्छदिभरिष्टमेव किञ्चितकारणं हेतुर्यत्रसामर्थ्याप्रतिबंध कारणान्तरावैकल्ये।।56।। न च पूर्वोत्तरचारिणोस्तादात्म्यं तदुत्पत्तिर्वा कालव्यवधाने तदनुपलब्धेः।।57।। भाव्यतीतयोर्मरणजाग्रद्बोधयोरपि नारिष्टो- द्बोधौ प्रतिहेतुत्वम्।।58।।तद्वयापाराश्रितं हि तद्भावभावित्वम्'।।59।।सहचारिणोरपि परस्परपरिहारेणावस्थानात्स-होत्पादाच्च"।।60।। परिणामी शब्दः कृतकत्वात्, य एवं, स एवं दृष्टो,यथा घटः कृतकश्चायं तस्मात्परिणामीति। यस्तु न परिणामी स न कृतको दृष्टोः यथा वन्ध्यास्त- नन्धयः, कृतकश्चायं, तस्मात्परिणामी।।61।।अस्त्यत्र देहिनि बुद्धि र्व्याहारादेः।।62।। अस्त्यत्रच्छाया छत्रात्।।63।। उदेष्यति शकटं कृत्तिकोदयात्।।64।। उद्गाद् भरणिः प्राक्तत एव।।65।। अस्त्यत्र मातुलिंगे रूपं रसात्।।66।। विरुद्धतदुपलब्धिः प्रतिषेधे तथा।।67।।
नास्त्यत्र शीतस्पर्शः औष्ण्यात्।।68।।नास्त्यत्र शीतस्पर्शः धूमात्।।69।। नास्मिन् शरीरिणि सुखमस्ति हृदयशल्यात्।।70।। नोदेष्यति मुहूर्तान्ते शकटं रेवत्युदयात्।।71।।नोदगाद्भरणि मुहूर्तात्परं पूर्व पुष्योदयात्।।72।। नास्त्यत्रभित्तौ परभागाभावोऽर्वाग्भा-गदर्शनात्।।73।।अविरुद्धानुपलब्धिः प्रतिषेधे सप्तधा स्वभाव व्यापक कार्य कारण पूर्वोत्तर सहचरानुप- लम्भभेदात्।।74।। नास्त्यत्र भूतले घटोऽनुपलब्धेः।।75।। नास्त्यत्र शिंशपा वृक्षानुपलब्धेः।।76।। नास्त्यत्राप्रतिबद्ध सामर्थ्योऽग्निर्धूमानु- पलब्धेः।।77।। नास्त्यत्र धूमोऽनग्ने।।78।। न भविष्यति मुहूर्तान्ते शकटं कृतिकोदयानुप-लब्धेः।।79।। नोदगाद् भरणिः मुहूर्तात्प्राक् तत् एव।।80।।

नास्त्यत्र समतुलायामुन्नामो नामानुपलब्धे:।।81।। विरुद्धानुपलब्धि विधौत्रेधा विरुद्धकार्यकारणस्वभावानुपलब्धि भेदात्।।82।। यथास्मिन्प्राणिनि व्याधि विशेषोऽस्ति निरामयचेष्टा- नुपलब्धे: ।।83।।अस्त्यत्र देहिनि दु:ख मिष्ट संयोगाभावात्।।84।। अनेकान्तात्मकं वस्त्वेकान्त स्वरूपानुपलब्धे: ।।85।। परम्परासंभ-वत्साध- नमत्रैवान्तर्भावनीयम्।।86।। अभूदत्र चक्रे शिवक: स्थासात्।।87।। कार्यकार्यमविरुद्धकार्योपलब्धौ।।88।। नास्त्यत्र गुहायां मृगक्रीडनं, मृगारि-संशब्दनात् कारण विरुद्धकार्य विरुद्धकार्योपलब्धौ यथा।।89।। व्युत्पन्नप्रयोगस्तु तथोपपत्त्याऽन्यथानुपपत्त्यैव वा।।90।। अग्निमानयं देशस्तथैव धूमवत्त्वोपपत्ते धूमत्त्वान्थानुपपत्तेर्वा।।91।। हेतुप्रयोगो हि यथा व्याप्ति ग्रहणं विधीयते सा च तावत्मात्रेण व्युत्पन्नैरवधार्यते।।92।। तावता च साध्यसिद्धि:।।93।। तेन पक्षस्तदाधार सूचनायोक्त:।।94।। आप्तवचनादि निबन्धनमर्थज्ञानमागम:।95।।सहजयोग्यता संकेत वशाद्धि शब्दादयो वस्तु प्रतिपत्तिहेतव:।।96।। यथा मेर्वादय: सन्ति।।97।।

अथ चतुर्थ: परिच्छेद:

सामान्यविशेषात्मा तदर्थो विषय:।।1।। अनुवृत्तव्यावृत्त प्रत्यय गोचरत्त्वात् पूर्वोत्तराकारपरिहाराव्याप्ति स्थिति लक्षण परिणामेनार्थ क्रियोपपत्तेश्च।।2।। सामान्यं द्वेधा तिर्यगूर्ध्वताभेदात्।।3।। सदृशपरिणामस्तिर्यक् खण्डमुण्डादिषु गोत्ववत्।।4।।परापरविर्वतव्यापिद्रव्यमूर्ध्वता मृदिव स्थासादिषु।।5।। विशेषश्च।।6।।पर्यायव्यतिरेकभेदात्।।7।। एकस्मिन्द्रव्ये क्रमभाविन: परिणामा: पर्याया: आत्मनि हर्षविषादादिवत्।।8।। अर्थान्तरगतो विसदृशपरिणामो व्यतिरेको गोमहिषादिवत्।।9।।

अथ पञ्चम: परिच्छेद:

अज्ञाननिवृत्तिर्हानोपादानोपेक्षाश्च फलम्।।1।। प्रमाणादभिन्नं च।।2।। य: प्रमिमीते स एव निवृत्ताज्ञानो जहात्यादत्ते उपेक्षते चेति प्रतीते:।।3।।

अथ षष्ठ: परिच्छेद:

ततोऽन्यत्तदाभासम्।।1।।अस्वसंविदित गृहीतार्थ दर्शनसंशयादय: प्रमाणाभास:।।2।। स्वविषयोपदर्शकत्वाभावात्।।3।। पुरुषान्तरपूर्वार्थ-गच्छत्तृणस्पर्शस्थाणुपुरुषादिज्ञानवत्।।4।। चक्षुरसयोर्द्रव्ये संयुक्तसमवा-

यवच्च।।5।।अवैशद्ये प्रत्यक्षं तदाभासं, बौद्धस्याकस्माद् धूमदर्शनाद् वह्नि विज्ञानवत्।।6।।वैशद्येऽपि परोक्षं तदाभासं मीमांसकस्य करण-ज्ञानवत्।।7।। अतस्मिंस्तदितिज्ञानं स्मरणाभासं, जिनदत्ते स देवदत्तो यथा।।8।। सदृशे तदेवेदं तस्मिन्नेव तेन सदृशम्, यमलकवदित्यादि प्रत्यभिज्ञानाभासम्।।9।। असम्बद्धे तज्ज्ञानं तर्काभासम्।।10।।तत्रानिष्टादिः पक्षाभासः।।12।।अनिष्टो मीमांसकस्यानित्यः शब्दः।।13।। सिद्धः श्रावणः शब्दः।।14।। बाधितः प्रत्यक्षानुमानागम- लोकस्ववचनैः।।15।। तत्र प्रत्यक्षबाधितो यथा, अनुष्णोऽग्नि र्द्रव्यत्वाज्जलवत्।।16।। अपरिणामी शब्दः कृतकत्वाद्।।17।। प्रेत्यासुखदो धर्मः पुरुषाश्रितत्वादधर्मवत्।।18।। शुचि नरशिरः कपालं प्राण्यङ्गत्वाच्छंखशुक्तिवत्।।19।। माता मे बन्ध्या, पुरुषसंयोगेऽप्यगर्भत्वात्प्रसिद्धबन्ध्यावत्।।20।। हेत्वाभास असिद्धविरुद्धानै- कान्तिकाकिञ्चित्कराः।।21।। असत्सत्तानिश्चयोऽसिद्धः ।।22।। अविद्यमान- सत्ताकः परिणामी शब्दः चाक्षुषत्वात् ।।23।।स्वरूपेणासत्वात् ।।24।। अविद्यमाननिश्चयो मुग्धबुद्धिं प्रत्यग्निरत्रधूमात्।।25।।तस्य वाष्पादिभावेन् भूतसंघाते सन्देहात्।।26।। सांख्यम्प्रति परिणामी शब्दः कृतकत्वात।।27।। तेनाज्ञातत्वात्।।28।। विपरीत निश्चिताविनाभावो विरुद्धोऽपरिणामी शब्दः कृतकत्वात्।।29।। विपक्षेऽप्यविरुद्धवृत्तिरनैकान्तिकः।।30।। निश्चितवृत्तिरनित्यः शब्दः प्रमेयत्वात् घटवत्।।31।। आकाशेनित्येऽप्यस्य निश्चयात्।।32।। शंकित वृत्तिस्तु नास्ति सर्वज्ञोवक्तृत्वात्।।33।। सर्वज्ञत्वेन वक्तृत्वा-विरोधात्।।34।।सिद्धे प्रत्यक्षादिबाधिते च साध्ये हेतुरकिञ्चित्करः।।35।। सिद्धश्रावणः शब्दः शब्दत्वात्।।36।। किञ्चिदकरणात्।।37।। यथाऽनुष्णोऽग्नि र्द्रव्यत्वादित्यादौ किञ्चित्कर्तुमशक्यत्वात्।।38।। लक्षणे एवासौ दोषो व्युत्पन्न प्रयोगस्य पक्षदोषेणैव दुष्टत्वात्।।39।।दृष्टान्ताभासा अन्वयेऽसिद्धसाधनोभयाः।।40।। अपौरुषेयः शब्दोऽमूर्तत्वादिन्द्रिय सुखपरमाणुघटवत्।।41।। विपरीतान्वयश्च यदपौरुषेयं तदमूर्तम्।।42।। विद्युदादिनाऽति प्रसङ्गात्।।43।। व्यतिरेकेऽसिद्धतद्व्यतिरेकाः परमाण्विन्द्रिय सुखाकाशवत्।।44।। विपरीत व्यतिरेकश्च यन्नामूर्त तन्नापौरुषेयम्।।45।। बालप्रयोगाभासः पञ्चावयवेषु कियद्धीनता।।46।। अग्निमानयं प्रदेशो धूम- वत्वाद्यदित्थं तदित्थं यथा महानसः।।47।। धूमवाश्चायम्।।48।।

तस्मादग्निमान् धूमवान् चायम्।।49।। स्पष्टतया प्रकृतप्रतिपत्तेरयोगात् ।।50।। रागद्वेषमोहाक्रान्त पुरुषवचनाज्जातमागमाभासम्।।51।। यथा नद्यास्तीरे मोदकराशयः सन्ति, धावध्वं माणवकाः।।52।।अंगुल्यग्रे हस्तियूथशतमास्ते इति च।।53।। विसंवादात्।।54।। प्रत्यक्षमेवैकं प्रमाणमित्यादि संख्याभासम्।।55।। लोकायतिकस्य प्रत्यक्षतः परलोकादि निषेधस्य पर बुद्धयादेश्चासिद्धेरतद्विषयत्वात्।।56।। सौगतसांख्ययौगप्रभाकर जैमिनीयानां प्रत्यक्षानुमानागमोपमानार्थापत्त्याभावैरैकैकाधिकैः व्याप्तिवत्।।57।। अनुमानादेरेतद्विषयत्वे प्रमाणान्तरत्वम्।।58।। तर्कस्येव व्याप्ति गोचरत्वे प्रमाणान्तरत्वमप्रमाणस्याव्यवस्थापकत्वात्।।59।। प्रतिभासस्य च भेदकत्वात्।।60।। विषयाभासः सामान्यं विशेषो द्वयं वा स्वतन्त्रम्।।61।। तथाऽप्रतिभासनात् कार्याकरणाच्च।।62।। समर्थस्य करणे सर्वदोत्पत्तिरनपेक्षत्वात्।।63।। परापेक्षणे परिणामित्वमन्यथा तदभावात्।।64।। स्वयमसमर्थस्याकारकत्वात् पूर्ववत्।।65।। फलाभासः प्रमाणादभिन्नं भिन्नमेव वा।।66।। अभेदे तद्व्यवहारानुपपत्तेः।।67।।व्यावृत्त्यापि न तत्कल्पना फलान्तराद्व्यावृत्त्याऽफलत्वप्रसंगात्।।68।। प्रमाणान्तरात् व्यावृत्त्ये वा प्रमाणत्वस्य।।69।। तस्माद्वास्तवो भेदः।।70।। भेदेत्वात्मान्तर-वत्तदनुपपत्तेः।।71।।समवायेऽति प्रसंगः।।72।।प्रमाणतदाभासौ दुष्टतयोद्भावितौ परिहृतापरिहृतदोषौ वादिनः साधनतदाभासौ प्रतिवादिनो दूषणभूषणे च।।73।। संभवदन्यद्विचारणीयम्।।74।।

परीक्षा मुखमादर्श, हेयोपादेय तत्त्वयोः।
संविदे मादृशो बालः, परीक्षादक्षवद्व्यधाम।।

卐 卐 卐

परीक्षामुखमें आगत पारिभाषिक शब्द

1. **प्रमाण** - अपने और अपूर्व अर्थके निश्चय करने वाले ज्ञानको प्रमाण कहते है।
2. **प्रमाणाभास** - जो ज्ञान प्रमाणके लक्षणसे रहित है वह प्रमाणाभास कहलाता है। जैसे अस्वसंवेदी, गृहीतग्राही, अनिश्चयात्मक, संशय, विपर्यय और अनध्यवसाय ये सब ज्ञान प्रमाणाभास हैं।
3. **प्रमाणसंख्या** - प्रत्यक्ष और परोक्षके भेदसे प्रमाणकी संख्या दो है।
4. **संख्याभास** - प्रत्यक्षही एक प्रमाण है। अथवा प्रत्यक्ष और अनुमान - ये दो प्रमाण है, इत्यादि प्रकारसे कथन करना संख्याभास है।
5. **प्रमाणविषय** - सामान्यविशेषात्मक अर्थ प्रमाण का विषय होता है।
6. **विषयाभास** - केवल सामान्यको या केवल विशेषको अथवा स्वतन्त्र रूपसे दोनोंको प्रमाणका विषय मानना विषयाभास है।
7. **प्रमाणफल** - अज्ञाननिवृत्ति, हान, उपादान, और उपेक्षा-ये प्रमाणके फल है।
8. **फलाभास** - प्रमाणके फलको प्रमाणसे सर्वथा अभिन्न मानना अथवा सर्वथा भिन्न मानना फलाभास है। क्योंकि प्रमाणका फल प्रमाणसे कथंचित् अभिन्न और कथंचित् भिन्न होता है।
9. **समारोप** - सशय, विपर्यय और अनध्यवसायको समारोप कहते है।
10. **अपूर्वार्थ** - जिस पदार्थका पहले किसी ज्ञानसे निश्चय नहीं हुआ है उसे अपूर्वार्थ कहते है। किसी ज्ञानसे ज्ञात पदार्थभी उसमें समारोप हो जानेके कारण अपूर्वार्थ हो जाता है।
11. **प्रत्यक्ष** - विशद अर्थात् निर्मल और स्पष्ट ज्ञानको प्रत्यक्ष कहते है।
12. **सांव्यवहारिक प्रत्यक्ष** - इन्द्रिय और मनके निमित्तसे होने वाले एकदेश विशद ज्ञानको सांव्यवहारिक प्रत्यक्ष कहते है।
13. **मुख्य प्रत्यक्ष** - सम्यग्दर्शनादि अन्तरंग और देशकालिक बहिरंग सामग्रीकी विशेषता (समग्रता) से दूर हो गये है। समस्त आवरण जिसके ऐसे अतीन्द्रिय और पूर्णरूपसे विशद ज्ञानको मुख्य प्रत्यक्ष कहते है।

14. **प्रत्यक्षाभास** - अविशद ज्ञानको प्रत्यक्षमानना प्रत्यक्षाभास है। जैसे **बौद्धाभिमत निर्विकल्पक** प्रत्यक्ष प्रत्यक्षाभास है।

15. **वैशद्य** - अन्य ज्ञानके व्यवधान से रहित प्रतिभासको अथवा वर्ण, संस्थान (आकार) आदिकी विशेषताको लिए हुए प्रतिभासको वैशद्य कहते है।

16. **योग्यता** - अपने आवरण (ज्ञानावरण)के क्षयोपशमको योग्यता कहते है। इसी योग्यताके द्वारा ज्ञान प्रतिनियत अर्थकी व्यवस्था करता है। अर्थात् घटादि पदार्थोंको जानता है।

17. **केशोण्डुक** - केशोण्डुकरूप अर्थके अभावमें होने वाले केशोण्डुकरूप अर्थके ज्ञानको केशोण्डुकज्ञान कहते हैं।

18. **परोक्ष** - अविशद ज्ञानको परोक्ष कहते है। यह ज्ञान प्रत्यक्षसे भिन्न अर्थात् अविशद होता है।

19. **परोक्षाभास** - विशद ज्ञानको परोक्ष मानना परोक्षाभास है। मीमांसक करणज्ञान (प्रमितिका साधकतम ज्ञान) को परोक्ष मानते हैं। उनका वैसा मानना परोक्षाभास है। क्योंकि करणज्ञान विशद होता है।

20. **स्मृति** - धारणारूप संस्कारके उद्‌बोध (प्रकट होना) से होने वाले तथा तत् (वह) इस प्रकारके आकार वाले ज्ञानको स्मृति कहते है। जैसे वह देवदत्त है।

21. **स्मरणाभास** - जिसका कभी अनुभव (प्रत्यक्ष) नहीं हुआ है उसमें 'वह' इस प्रकारके ज्ञानके होनेको स्मरणाभास कहते हैं। जैसे जिनदत्तमें वह देवदत्त ऐसा स्मरण करना स्मरणाभास है।

22. **प्रत्यभिज्ञान** - वर्तमान पर्यायका प्रत्यक्ष और पूर्व पर्यायका स्मरण होने से दोनों पर्यायों (अवस्थाओं) का संकलन रूप (एकत्व, सादृश्य आदिके ग्रहणरूप) जो ज्ञान होता है उसे प्रत्यभिज्ञान
कहते है। जैसे - यह वही देवदत्त है जिसे एक वर्ष पहले देखा है।

23. **प्रत्यभिज्ञानाभास** - सदृश पदार्थमें वह 'यह वही है' ऐसा कहना तथा उसी पदार्थमें यह उसके सदृश है' ऐसा कहना प्रत्यभि-ज्ञानाभास है।

24. **ऊह** - (अन्वय) और अनुपलम्भ (व्यतिरेक)के निमित्तसे जो व्याप्तिका ज्ञान होता है उसे ऊह (तर्क) कहते है। जैसे - अग्निके होनेपर धूम होता है और अग्निके अभावमें धूम नहीं होता है, इस प्रकारके ज्ञानका नाम ऊह है।

25. **तर्क** - ऊपर नं. 24 में ऊहकी जो परिभाषा बतलायी गई है

वही तर्क की परिभाषा है। तर्क और ऊह दोनों पर्यायवाची शब्द है। धूम और अग्निमें अविनाभाव सम्बन्ध है और तर्कके द्वारा इसी अविनाभाव सम्बन्धका ज्ञान किया जाता है।

26. **तर्काभास** - अविनाभाव सम्बन्धसे रहित पदार्थोंमें अविनाभाव सम्बन्धका ज्ञान करना तर्काभास है।

27. **अनुमान** - साधनसे होने वाले साध्यके ज्ञानको अनुमान कहते है।जैसे धूमसे जो अग्निका ज्ञान होता है वह अनुमान कहलाता है।

28. **स्वार्थानुमान** - दूसरेके उपदेशके बिना स्वत: ही साधनसे साध्यका जो ज्ञान होता है उसे स्वार्थानुमान कहते है। स्वार्थानुमान अपने लिए होता है।

29. **परार्थानुमान** - स्वार्थानुमानके विषयभूत अर्थका परामर्श करने वाले वचनोंसे जो ज्ञान उत्पन्न होता है उसे परार्थानुमान कहते है।परार्थानुमान परके लिए होता है।

30. **अनुमानाभास** - व्याप्तिके ग्रहण, स्मरण आदिके बिना अकस्मात् धूमके दर्शनसे होनेवाला अग्निका ज्ञान अनुमानाभास है।

31. **आगम** - आप्तके वचनोंसे होने वाले अर्थज्ञानको आगम कहते है।

32. **आगमाभास** - राग, द्वेष और मोहसे आक्रान्त (परिव्याप्त) पुरुषोंके वचनोंसे होने वाले अर्थज्ञानको आगमाभास कहते हैं।

33. **हेतु** - साध्यके साथ जिसका अविनाभाव निश्चित होता है उसे हेतु कहते है।

34. **हेत्वाभास** - जो हेतुके लक्षणसे रहित है किन्तु हेतु जैसा मालूम पड़ता है उसे हेत्वाभास कहते हैं।

35. **असिद्ध हेत्वाभास** - जिस हेतुकी सत्ता न हो अथवा जिसका निश्चय न हो उसे असिद्ध हेत्वाभास कहते है।

36. **विरुद्धहेत्वाभास** - जिस हेतुका साध्यके विरुद्धके साथ अविनाभाव निश्चित होता है उसे विरुद्ध हेत्वाभास कहते हैं। जैसे यह कहना कि शब्द नित्य है, कृतक होनेसे। यहाँ कृतकत्व हेतु विरुद्ध हेत्वाभास है।

37. **अनैकान्तिक हेत्वाभास** - जो हेतु पक्ष, सपक्ष और विपक्ष इन तीनोंमें रहता है उसे अनैकान्तिक हेत्वाभास कहते हैं। जैसे यह कहना कि शब्द अनित्य है, प्रमेय होनेसे। यहाँ प्रमेयत्व हेतु अनैकान्तिक हेत्वाभास है।

38. अकिञ्चितकर हेत्वाभास - साध्यके सिद्ध होने पर और प्रत्यक्षादि प्रमाणोंसे बाधित होने पर भी उस साध्यकी सिद्धि के लिए प्रयुक्त हेतु अकिञ्चितकर हेत्वाभास कहलाता है।

39. प्रतिज्ञा - किसी वस्तुका अनुमान करते समय पहले प्रतिज्ञाकी जाती है। जैसे यह पर्वत अग्निमान है, ऐसा कहना प्रतिज्ञा है।

40. धर्मी - जो किसी प्रमाणसे प्रसिद्ध होता है उसे धर्मी कहते हैं। धर्मीका दूसरा नाम पक्षभी है। पर्वतमें अग्निको सिद्ध करते समय पर्वत धर्मी होता है। वह साध्यधर्मविशिष्ट होने के कारण धर्मी कहलाता है।

41. पक्ष - जहाँ साध्यकी सिद्धिकी जाती है उसे पक्ष कहते हैं। पर्वतमें अग्निको सिद्ध करते समय पक्ष होता है। दूसरो शब्दोंमें धर्म और धर्मीके समुदायका नाम पक्ष है।

42. सपक्ष - जो पक्षके समान होता है अर्थात् जहाँ साध्य (अग्नि) और साधन (धूम) दोनों पाये जाते है उसे सपक्ष कहते है। जैसे महानस सपक्ष है।

43. विपक्ष - जहाँ साध्यऔर साधन दोनोंका अभाव पाया जाता है उसे विपक्ष कहते हैं। जैसे नदी विपक्ष है।

44. पक्षाभास - अनिष्ट, प्रत्यक्षादिप्रमाणोंसे बाधित और सिद्धको पक्ष अर्थात् साध्य बतलाना पक्षाभास कहलाता है।

45. उदाहरण -- जहाँ-जहाँ धूम होता है वहाँ-वहाँ अग्नि होती है। जैसे महानस। इस प्रकारके कथनको उदाहरण कहते है। यहाँ महानस दृष्टान्त है और उसका वचन उदाहरण कहलाता है।

46. उपनय - पक्षमें हेतुके उपसंहार करनेको उपनय कहते हैं। जैसे -यह पर्वत धूमवान् है, ऐसा कहना उपनय कहलाता है।

47. निगमन - प्रतिज्ञाके उपसंहारको निगमन कहते है। जैसे धूमवान् होनेसे पर्वत अग्निमान है, ऐसा कहना निगमन कहलाता है।

48. अन्वयदृष्टान्त - जहाँ साध्यके साथ साधनकी व्याप्ति बतलायी जाती है उसे अन्वय दृष्टान्त कहते हैं। जैसे अग्निके साथ धूमकी व्याप्ति बतलानेमें महानस अन्वयदृष्टान्त कहलाता है।

49. अन्वयदृष्यन्ताभास - अन्वयदृष्यन्ताभासके तीन भेद है - असिद्धसाध्य, असिद्धसाधन और असिद्धोभय। इनको साध्यविकल, साधन- विकल और उभयविकल भी कहते हैं। शब्द पौरुषेय है, क्योंकि वह अमूर्त

है। जैसे इन्द्रियसुख, परमाणु और घट। ये दोनों दृष्टान्त क्रमशः साध्यविकल, साधनविकल और उभयविकल अन्वयदृष्टान्ताभास हैं।

50. **व्यतिरेक दृष्टान्त** -जहाँ साध्यके अभावमें साधनका अभाव बतलाया जाता है उसे व्यतिरेक दृष्टान्त कहते है। जैसे जहाँ अग्नि नहीं होती है वहाँ धूमभी नहीं होता है। जैसे -जलाशय। यहाँ जलाशय व्यतिरेक दृष्टान्त है।

51. **व्यतिरेकदृष्टान्ताभास** - व्यतिरेकदृष्टान्ताभासके भी तीन भेद है - असिद्धसाध्यव्यतिरेक, असिद्धसाधनव्यतिरेक और असिद्धोभय- व्यतिरेक। शब्द अपौरुषेय है, अमूर्त होनेसे। जैसे - परमाणु, इन्द्रियसुख और आकाश। ये तीनों दृष्टान्त क्रमशः असिद्धसाध्य- व्यतिरेक, असिद्धसाधनव्यतिरेक और असिद्धोभयव्यतिरेक दृष्टान्ताभास है।

52. **साध्य** - इष्ट, अबाधित और असिद्ध पदार्थको साध्य कहते हैं।

53. **अविनाभाव** - सहभावनियम और क्रमभावनियमको अविनाभाव कहते है। अविनाभावका ही दूसरा नाम व्याप्ति है।

54. **सहभावनियम** - सहचारी और व्याप्य-व्यापक पदार्थोमें सहभावनियम होता है। जैसे रूप और रसमें तथा शिंशपा और वृक्षमें सहभावनियम पाया जाता है।

55. **क्रमभावनियम** - पूर्वचर और उत्तरचरमें तथा कार्य और कारणमें क्रमभावनियम होता है। जैसे कृत्तिकोदय और शकटोदयमें तथा धूम और अग्निमें क्रमभावनियम है।

56. **तिर्यक्सामान्य** - सदृश (सामान्य) परिणामको तिर्यक्सामान्य कहते है। जैसे - खण्डी, मुण्डी आदि गायोंमें रहने वाला गोत्व तिर्यक् सामान्य है।

57. **ऊर्ध्वतासामान्य** - पूर्व और उत्तर पर्यायोंमें रहने वाले द्रव्यको ऊर्ध्वतासामान्य कहते हैं। जैसे स्थास, कोश, कुशूल आदि घटकी पर्यायोंमें रहने वाली मिट्टी ऊर्ध्वतासामान्य कहलाता है।

58. **पर्यायविशेष** - एक द्रव्यमें क्रमसे होने वाले परिणामोंको पर्याय-विशेष कहते हैं। जैसे आत्मामें क्रमसे होने वाले हर्ष, विषाद आदि परिणाम पर्यायविशेष कहलाते हैं।

59. **व्यतिरेकविशेष** - एक पदार्थसे विजातीय अन्य पदार्थमें रहने वाले विसदृश परिणामको व्यतिरेकविशेष कहते है। जैसे गायसे भैंसमें

व्यतिरेकविशेष पाया जाता है।

60. **बालप्रयोगाभास** - अनुमानके प्रतिज्ञा, हेतु, उदाहरण, उपनय और निगमन इन पाँच अवयवोंका प्रयोग न करके कुछ कम अवयवोंका प्रयोग करना बालप्रयोगाभास है। क्योंकि बालकोंको समझानेके लिए पाँचों अवयवोंका प्रयोग आवश्यक है।

61. **करणज्ञान** - प्रमितिकी उत्पत्तिमें जो साधकतम (विशिष्ट) कारण होता है उसे करण कहते है। घटादिकी प्रमिति ज्ञानके द्वारा होती है। अत: ज्ञान कारण कहलाता है। यह कारणान विशद (प्रत्यक्ष) होता है। किन्तु मीमांसक इसे अविशद मानते है।

62. **उपलब्धिलक्षणप्राप्त**- जिस वस्तुमें चक्षु इन्द्रियके द्वारा उपलब्ध होनेकी योग्यता होती है उसे उपलब्धिलक्षणप्राप्त(दृश्य) कहते है। जैसे घट उपलब्धिलक्षणप्राप्त है और पिशाच अनुपलब्धिलक्षणप्राप्त है।

63. **लौकायतिक** - चार्वाकका दूसरा नाम लौकायतिक है। जो चारु (सुन्दर) वचन बोलते है अथवा आत्मा, परलोक आदिका चर्वण (भक्षण) करते है उन्हें चार्वाक कहते हैं। ये साधारण लोगोंकी तरह आचरण करते है। इसलिए इनको लौकायतिक भी कहते है। इनके जीवनका लक्ष्य है, खाओ, पिओ और मस्त रहो। वर्तमानमें भौतिकवादियोंको चार्वाक कहा जा सकता है।

64. **जैमिनीय** - महर्षि जैमिनी मीमांसादर्शनके सूत्रकार तथा प्रवर्तक है। इसलिए जैमिनीके अनुयायियोंको जैमिनीय (मीमासंक) कहते है।।

65. **यौग** - नैयायिक और वैशेषिकोंका सम्मिलित नाम यौग है। अनेक बातोंमें न्याय और वैशेषिक दर्शनोंमें समानता पाई जाती है। इसलिए इन दोनोंके योग (जोड़ी) को यौग नाम दे दिया गया है।

66. **सौगत** - महात्मा बुद्धका एक नाम सुगत भी है। अत: सुगतके अनुयायियोंको सौगात कहते हैं। बौद्ध और सौगत दोनों पर्यायवाची शब्द है।

(साभार - प्रमेयकमलमार्तण्ड परिशीलन से)

परिशिष्ट-3

1. असाधारण धर्मवचन के लक्षणत्त्वका निर्णय

'असाधारणधर्मके कथन करनेको लक्षण कहते है ऐसा किन्हीं नैयायिक और हेमचन्द्राचार्यका कहना है; पर वह ठीक नहीं है। क्योंकि लक्ष्यरूप धर्मीवचनका लक्षणरूप धर्मवचनके साथ सामानाधिकरण्य (शब्दसामानाधिकरण्य)के अभाव का प्रसंग आता है। इसका स्पष्टीकरण इस प्रकार है -

यदि असाधारण धर्मको लक्षणका स्वरूप माना जाय तो लक्ष्यवचन और लक्षणवचनमें सामानाधिकरण्य नहीं बन सकता। यह नियम है कि लक्ष्य-लक्षणभावस्थलमें लक्ष्यवचनमें एकार्थ प्रतिपादकत्वरूप सामानाधिकरण्य अवश्य होता है।

जैसे 'ज्ञानी जीव:' अथवा 'सम्यग्ज्ञानं प्रमाणम्' इनमें शब्द सामानाधिकरण्य है। यहाँ 'जीव:' लक्ष्यवचन है; क्योंकि जीवका लक्षण किया जा रहा है। और 'ज्ञानी' लक्षणवचन है, क्योंकि वह जीवको अन्य अजीवादि पदार्थोंसे व्यावृत्त करता है। 'ज्ञानवान् जीव है' इसमें किसी को विवाद नहीं है।

अब यहाँ देखेंगे कि 'जीव' शब्दका जो अर्थ है वही 'ज्ञानी' शब्दका अर्थ है। और जो ज्ञानी शब्दका अर्थ है वही 'जीव' शब्दका है। अत: दोनोंका वाच्यार्थ एक है। जिन दो शब्दों-पदोंका वाच्यार्थ एक होता है उसमें शब्दसामानाधिकरण्य होता है। जैसे 'नीलं' कमलम् यहाँ स्पष्ट है। इस तरह 'ज्ञानी' लक्षणवचन में और जीव लक्ष्यवचनमें एकार्थप्रतिपादकत्वरूप शाब्दसामानाधिकरण्य सिद्ध है। इसी प्रकार 'सम्यग्ज्ञानं प्रमाणम्' यहाँ भी जानना चाहिये।

इस प्रकार जहाँ कहीं भी निर्दोष लक्ष्यलक्षणभाव किया जावेगा वहाँ सब जगह शाब्दसामानाधिकरण्य पाया जायेगा। इस नियमके अनुसार 'असाधारणधर्मवचनं लक्षणम्' यहाँ असाधारणधर्म जब लक्षण होगा तो लक्ष्य धर्मी होगा और लक्षणवचन धर्मीवचन तथा लक्ष्यवचन धर्मीवचन माना जायेगा। किन्तु लक्ष्यरूप धर्मीवचन का प्रतिपाद्य अर्थ

एक नहीं है। धर्मीवचनका प्रतिपाद्य अर्थ तो धर्म है और धर्मीवचनका प्रतिपाद्य अर्थ धर्मी है। ऐसी हालतमें दोनोंका प्रतिपाद्य अर्थ भिन्न-भिन्न होनेसे धर्मीरूप लक्ष्यवचन और धर्मरूपलक्षणवचनमें एकार्थप्रतिपादकत्वरूप सामानाधिकरण्य सम्भव नहीं है और इसलिए उक्तप्रकारका लक्षणकरनेमें शाब्दसामानाधि-करण्याभावप्रयुक्त असम्भव दोष आता है।

अव्याप्ति दोष भी इस लक्षणमें आता है। दण्डादि असाधारणध र्म नहीं है फिर भी वे पुरुषके लक्षण होते हैं। अग्निकी उष्णता, जीवका ज्ञान आदि जैसे अपने लक्ष्यमें मिले हुए होते हैं इसलिए वे उनके असाधारणधर्म कहे जाते हैं। वैसे दण्डादि पुरुषमें मिले हुए नहीं हैं - उससे पृथक है और इसलिये पुरुषके असाधारण धर्म नहीं है। इस प्रकार लक्षणरूप लक्ष्यके एकदेश अनात्मभूत दण्डादि लक्षणमें असाधारणधर्म के न रहनेसे लक्षण (असाधारणधर्म) अव्याप्त है।

इतना ही नहीं, इस लक्षणमें अतिव्याप्ति दोष भी आता है। शावलेयत्वादिरूप असाधारण धर्म अव्याप्त नामका लक्षणाभास भी है। इसका खुलासा निम्नप्रकार है -

मिथ्या अर्थात् सदोष लक्षणको लक्षणाभास कहते है। उसके तीन भेद है- 1 अव्याप्त, 2 अतिव्याप्त और 3. असम्भवि। लक्ष्यके एकदेशमें लक्षणके रहनेको अव्याप्त लक्षणाभास कहते है। जैसे गाय का शावलेयत्व। शावलेयत्व सब गायोंमें नहीं पाया जाता, वह कुछ ही गायोंका धर्म है, इसलिए अव्याप्त है। लक्ष्य और अलक्ष्यमें लक्षणके रहनेको अतिव्याप्त लक्षणाभास कहते है। जैसे गायका ही पशुत्व (पशुपना) लक्षण करना। यह 'पशुत्व' गायोंके सिवाय अश्वादि पशुओंमें भी पाया जाता है इसलिए 'पशुत्व' अतिव्याप्त है।

जिसकी लक्ष्यमें वृत्ति बाधित हो अर्थात् जो लक्ष्यमें बिल्कुलही नही रहता है वह असम्भवि लक्षणाभास है। जैसे मनुष्यका लक्षणसींग। सींग किसी भी मनुष्य में नहीं पाया जाता, अतः वह असम्भवि लक्षणाभास है।

यहाँ लक्ष्यके एकदेशमें रहनेके कारण 'शावलेयत्व' अव्याप्त है, फिर भी उसमें असाधारण धर्मत्व रहता है 'शावलेयत्व' गायके अतिरिक्त अन्यत्र नहीं रहता - गायमें ही पाया जाता है। परन्तु वह

लक्ष्यभूत समस्त गायोंका व्यावर्त्तक अश्वादि से जुदा करने वाला नहीं है, कुछ ही गायोंको व्यावृत्त कराता है। इसलिए अलक्ष्यभूत अव्याप्त लक्षणाभासमें असाधारणधर्मके रहनेके कारण अतिव्याप्त भी है।इस तरह असाधारण धर्मको लक्षण कहनेमें असम्भव, अव्याप्ति और अतिव्याप्तिये तीनोंही दोष आते है। अत: मिली हुई अनेक वस्तुओंमें से किसी एक वस्तु के अलग कराने वाले हेतुको लक्षण कहते है। यही लक्षण ठीक है।

2. प्रमाणके प्रामाण्यका निर्णय

प्रामाण्यका निश्चय - अभ्यस्त विषयमें तो स्वत: होता है और अनभ्यस्त विषयमें परसे होता है। तात्पर्य यह है कि प्रामाण्यकी उत्पत्तितो सर्वत्र पर से ही होती है, किन्तु प्रामाण्यका निश्चय परिचित विषयमें स्वत: और अपरिचित विषयमें परत: होता है। परिचित कई बार जाने हुए अपने गाँवके तालाबका जल वगैरह अभ्यस्त विषय है और अपरिचित-नहीं जाने हुए दूसरे गाँवके तालाबका जल वगैरह अनभ्यस्त विषय है। ज्ञानका निश्चय कराने वाले कारणोंके द्वाराही प्रामाण्यका निश्चय होना स्वत: है और उससे भिन्न कारणोंसे होना 'परत:' है।

उनमेंसे अभ्यस्त विषयमें 'जल है' इस प्रकार ज्ञान होनेपर ज्ञानस्वरूपके निश्चयके समयमें ही ज्ञानगत प्रमाणताका भी निश्चय अवश्य हो जाता है। नहीं तो दूसरे ही क्षणमें जलमें सन्देहरहित प्रवृत्ति नहीं होती, किन्तु जलज्ञाने बाद ही सन्देहरहित प्रवृत्ति अवश्य होती है। अत: अभ्यासदशा में तो प्रामाण्यका निश्चय स्वत: ही होता है। पर अनभ्यास दशामें जलज्ञान होने पर 'जलज्ञान मुझे हुआ' इस प्रकारसे ज्ञानके स्वरूपका निश्चय हो जाने पर भी उसके प्रामाण्यका निश्चय अन्य (अर्थक्रियाज्ञान अथवा संवादज्ञान) से ही होता है। यदि प्रामाण्यका निश्चय अन्य से न हो, स्वत: हो तो जलज्ञानके बाद सन्देह नहीं होना चाहिए। पर सन्देह अवश्य होता है कि 'मुझको जो जलका ज्ञान हुआ है वह जल है या बालूका ढेर'? इस सन्देहके बाद ही कमलोंकी गन्ध, ठण्डी हवाके आने आदिसे जिज्ञासु पुरुष निश्चय करता है कि 'मुझे जो पहले जलका ज्ञान हुआ है वह प्रमाण है, सच्चा

है, क्योंकि जलके बिना कमलकी गन्ध आदि नहीं आ सकती है।' अतः निश्चय हुआकि अपरिचित दशामें प्रामाण्यका निर्णय पर से ही होता है।

3 .यौगाभिमत सन्निकर्षके प्रत्यक्षता का निराकरण

नैयायिक और वैशेषिक सन्निकर्ष (इन्द्रिय और पदार्थका संबध)को प्रत्यक्ष मानते हैं। पर वह ठीक नहीं है, क्योंकि सन्निकर्ष अचेतन है, वह प्रमितिके प्रति करण कैसे हो सकता है? प्रमितिके प्रति जब करण नहीं, तब प्रमाण कैसे? और जब प्रमाणही नहीं, तो प्रत्यक्ष कैसे?

दूसरी बात यह है कि चक्षु इन्द्रिय 'रूपका' ज्ञान सन्निकर्षके बिना ही कराता है, क्योंकि वह अप्राप्यकारी है। इसलिए सन्निकर्षके अभावमें भी प्रत्यक्षज्ञान होनेसे प्रत्यक्षमें सन्निकर्षरूपता ही नहीं है। चक्षु इन्द्रियको जो यहाँ अप्राप्यकारी कहा गया है वह असिद्ध नहीं है। कारण, प्रत्यक्षसे चक्षु इन्द्रियमें अप्राप्यकारिताही प्रतीत होती है।

शंका - यद्यपि चक्षु इन्द्रियकी प्राप्यकारिता (पदार्थको प्राप्त करके प्रकाशित करना) प्रत्यक्षसे मालूम नहीं होती तथापि उसे परमाणुकी तरह अनुमानसे सिद्ध करेंगे। जिस प्रकार परमाणु प्रत्यक्षसे सिद्ध न होने पर भी 'परमाणु' है क्योंकि स्कन्धादि कार्य अन्यथा नहीं हो सकते' इस अनुमानसे उसकी सिद्धि होती है उसी प्रकार 'चक्षु इन्द्रिय पदार्थको प्राप्त करके प्रकाश करने वाली है, क्योंकि वह बहिरिन्द्रिय है। (बाहरसे देखी जाने वाली इन्द्रिय है) जो बहिरिन्द्रय है वह पदार्थको प्राप्त करके ही प्रकाश करती है, जैसे स्पर्शन इन्द्रिय' इस अनुमान से चक्षुमें प्राप्यकारिताकी सिद्धि होती है और प्राप्यकारिता ही सन्निकर्ष है। अतः चक्षु इन्द्रियमें सन्निकर्षकी अव्याप्ति नहीं है। अर्थात् चक्षु इन्द्रिय भी सन्निकर्षके होने पर ही रूपज्ञान कराती है। इसलिए सन्निकर्ष को प्रत्यक्ष माननेमें कोई दोष नहीं है।

समाधान - नहीं; यह अनुमान सम्यक् अनुमान नहीं है - अनुमानाभास है। वह इस प्रकार से है -इस अनुमानमें 'चक्षु' पदसे कौनसी चक्षुको पक्ष बनाया है? लौकिक (गोलकरूप) चक्षुको अथवा

अलौकिक (किरणरूप) चक्षुको? पहले विकल्पमें, हेतु कालात्यापदिष्ट (बाधितविषय नामका हेत्वाभास) है; क्योंकि गोलकरूप चक्षु विषयके पास जाती हुई किसी को भी प्रतीत नहीं होनेसे उसकी विषयप्राप्ति प्रत्यक्षसे बाधित है।

दूसरे विकल्पमें, हेतु आश्रयासिद्ध है, क्योंकि किरणरूप अलौकिक चक्षु अभी तक सिद्ध नहीं है। दूसरी बात यह है कि वृक्षकी शाखा और चन्द्रमाका एक ही कालमें ग्रहण होनेसे चक्षु अप्राप्यकारी ही प्रसिद्ध होती है। अत: उपर्युक्त अनुमानगत हेतु कालात्यापदिष्ट और आश्रयासिद्ध होनेके साथ ही प्रकरणसम (सत्प्रतिपक्ष) भी है। इस प्रकार सन्निकर्षके बिना भी चक्षुके द्वारा रूपज्ञान होता है इसलिए सन्निकर्ष अव्याप्त होनेसे प्रत्यक्षका स्वरूप नहीं है, यह बात सिद्ध हो गई।

4 . शंका समाधानपूर्वक सर्वज्ञकी सिद्धि

शंका - सर्वज्ञताही जब अप्रसिद्ध है तब आप यह कैसे कहते है कि अरिहन्त भगवान् सर्वज्ञ हैं'? क्योंकि जो सामान्यतया कहीं भी प्रसिद्ध नहीं है उसका किसी खास जगहमें व्यवस्थापन नहीं हो सकता है?

समाधान - नहीं, सर्वज्ञता अनुमानसे सिद्ध है। वह अनुमान इस प्रकार है, सूक्ष्म, अन्तरित और दूरवर्ती पदार्थ किसीके प्रत्यक्ष हैं, क्योंकि वे अनुमान से जाने जाते है। जैसे अग्नि आदि पदार्थ। स्वामी समन्तभद्रने भी महाभाष्यके प्रारम्भमें आप्तमीमांसाप्रकरणमें कहा है - 'सूक्ष्म, अन्तरित और दूरवर्ती पदार्थ किसी के प्रत्यक्ष है, क्योंकि वे अनुमान से जाने जाते हैं? जैसे अग्नि आदि। इस अनुमानसे सर्वज्ञ भले प्रकार सिद्ध होता है।''

सूक्ष्म पदार्थ वे है जो स्वभावसे विप्रकृष्ट है, दूर है, जैसे परमाणु आदि। अन्तरित वे है जो कालसे विप्रकृष्ट है, जैसे राम आदि। दूर वे है जो देशसे विप्रकृष्ट है, जैसे मेरु आदि।

ये स्वभाव, काल और देशसे विप्रकृष्ट पदार्थ यहाँ धर्मी (पक्ष) है। 'किसी के प्रत्यक्ष है' यह साध्य है। यहाँ प्रत्यक्ष' शब्द का अर्थ 'प्रत्यक्षज्ञानके विषय' यह विवक्षित है, क्योंकि विषयी (ज्ञान)के धर्म (जानना) का विषय में भी उपचार होता है। अनुमानसे जाने जाते है,

यह हेतु है। अग्नि आदि दृष्टान्त है। अग्नि आदि दृष्टान्तमें अनुमानसे जाने जाते है। यह हेतु किसी के प्रत्यक्ष है इस साध्यके साथ पाया जाता है। अत: वह परमाणु वगैरह सूक्ष्मादि पदार्थोंमें भी किसी की प्रत्यक्षताको अवश्य सिद्ध करता है।

तात्पर्य यह है कि जिस प्रकार अग्नि आदि अनुमानसे जाने जाते हैं। अतएव वे किसीके प्रत्यक्षभी होते हैं। उसी प्रकार सूक्ष्मादि अतीन्द्रिय पदार्थ चूंकि हम लोगोंके द्वारा अनुमानसे जाने जाते हैं। अतएव वे किसीके प्रत्यक्ष भी हैं और जिसके प्रत्यक्ष हैं वही सर्वज्ञ है। परमाणु आदिमें 'अनुमान से जाने जाते हैं।' यह हेतु असिद्ध भी नहीं है क्योंकि उनको अनुमानसे जाननेमें किसी को विवाद नहीं है। अर्थात् सभी मत वाले इन पदार्थोको अनुमेय मानते हैं।

शंका - सूक्ष्मादि पदार्थोको प्रत्यक्ष सिद्ध करनेके द्वारा किसीके सम्पूर्ण पदार्थोका प्रत्यक्ष ज्ञान हो, यह हम मान सकते है। परन्तु वह अतीन्द्रिय है। इन्द्रियोंकी अपेक्षा नहीं रखता है, यह कैसे?

समाधान - इस प्रकार यदि ज्ञान इन्द्रिजन्य हो तो सम्पूर्ण पदार्थोको जानने वाला नहीं हो सकता है, क्योंकि इन्द्रियाँ अपने योग्य विषय (सन्निहित और वर्तमान अर्थ) में ही ज्ञानको उत्पन्न कर सकती है। और सूक्ष्मादि पदार्थ इन्द्रियोंके योग्य विषय नहीं हैं। अत: वह सम्पूर्ण पदार्थ विषयक ज्ञान अतीन्द्रिय ही है। इन्द्रियों की अपेक्षा से रहित अतीन्द्रिय है, यह बात सिद्ध हो जाती है। इस प्रकारसे सर्वज्ञको माननेमें किसी भी किसीभी सर्वज्ञवादीको विवाद नहीं है। जैसाकि दूसरे भी कहते हैं - पुण्य-पापादिक किसीके प्रत्यक्ष है, क्योंकि वे प्रमेय है।'

सामान्य से सर्वज्ञको सिद्ध करके अरिहन्त के सर्वज्ञता की सिद्धि

शंका - सम्पूर्ण पदार्थको साक्षात् करने वाला अतीन्द्रिय प्रत्यक्ष ज्ञान सामान्यतया सिद्ध हो; परन्तु वह अरिहन्त के है यह कैसे? क्योंकि 'किसीके' यह सर्वनाम शब्द है और सर्वनाम शब्द सामान्यका ज्ञापक होता है?

समाधान - सत्य है। इस अनुमानसे सामान्य सर्वज्ञकी सिद्धि है।

'अरिहन्त सर्वज्ञ है' यह हम अन्य अनुमानसे सिद्ध करते हैं। वह अनुमान इस प्रकार है। अरिहन्त सर्वज्ञ होनेके योग्य है, क्योंकि वे निर्दोष है जो सर्वज्ञ नहीं है वह निर्दोष नहीं है, जैसे रथ्यापुरुष(पागल)। यह केवल- व्यतिरेकीहेतुजन्य अनुमान है।

आवरण और रागादि ये दोष है और इनसे रहितता का नाम निर्दोषता है। वह निर्दोषता सर्वज्ञताके बिना नही हो सकती है। क्योंकि जो किञ्चित् है अल्पज्ञानी है उसके आवरणादि दोषोंका अभाव नहीं है। अत: अरिहन्तमें रहने वाली यह निर्दोषता उनमें सर्वज्ञताको अवश्य सिद्ध करती है। और यह निर्दोषता अरिहन्त परमेष्ठीमें उनके युक्ति और शास्त्रसे अविरोधी वचन होनेसे सिद्ध होती है। युक्ति और शास्त्रसे अविरोधी वचन भी उनके द्वारा माने गये मुक्ति, संसार और मुक्ति तथा संसारके कारण तत्त्व और अनेक धर्मयुक्त चेतन तथा अचेतन तत्त्व प्रत्यक्षादि प्रमाणसे बाधित न होनेसे अच्छी तरह सिद्ध होते हैं। तात्पर्य यह है कि अरिहन्त के द्वारा उपदिष्ट तत्त्वोंमें प्रत्यक्षादि प्रमाणोंसे कोई बाधा नही आती है। अत: वे यथार्थ वक्ता हैं। और यथार्थवक्ता होनेसे निर्दोष हैं। तथा निर्दोष होनेसे सर्वज्ञ हैं।

शंका - इस प्रकार अरिहन्तके सर्वज्ञता सिद्ध हो जानेपर भी वह अरिहन्त के ही है, यह कैसे? क्योंकि कपिल आदिके भी वह सम्भव है।

समाधान - कपिल आदि सर्वज्ञ नहीं हैं; क्योंकि वे सदोष हैं। और सदोष इसलिए हैं कि वे युक्ति और शास्त्रसे विरोधी कथन करने वाले हैं। युक्ति और शास्त्रसे विरोधी कथन करने वाले भी इस कारण हैं कि उनके द्वारा माने गये मुक्ति आदिक तत्त्व और सर्वथा एकान्त तत्त्व प्रमाणसे बाधित हैं। अत: वे सर्वज्ञ नहीं हैं। अरिहन्त ही सर्वज्ञ हैं। स्वामी समन्तभद्र ने भी कहा है - "हे अर्हन्! वह सर्वज्ञ आप ही हैं, क्योंकि आप अविरुद्ध हैं - युक्ति और आगम से उनमें कोई विरोध नहीं आता। और वचनोंमें विरोध इस कारण नहीं है कि आपका इष्ट (मुक्ति आदि तत्त्व) प्रमाणसे बाधित नहीं है किन्तु तुम्हारे अनेकान्त कथन करने वाले और अपने को आप्त समझनेके अभिमानसे दग्ध हुए एकान्तवादियोंका इष्ट (अभिमततत्त्व) प्रत्यक्षसे बाधित है।"

इसलिए अरिहन्त ही सर्वज्ञ है। • • •

5 . आगमप्रमाणका लक्षण

आप्तके वचनोंसे होने वाले अर्थज्ञानको आगम कहते हैं। यहाँ 'आगम' यह लक्ष्य है और शेष उसका लक्षण है। अर्थज्ञानको आगम कहते हैं' इतना ही यदि आगमका लक्षण कहा जाय तो प्रत्यक्षादिकमें अतिव्याप्ति है, क्योंकि प्रत्यक्षादिक भी अर्थज्ञान हैं। इसलिए वचनोंसे होने वाले' यह पद विशेषण दिया है। वचनोंसे होने वाले अर्थज्ञानको आगम का लक्षण कहनेमें भी स्वेच्छापूर्वक (जिस किसीके) कहे हुए भ्रमजनक वचनोंसे होने वाले अथवा सोये हुए पुरुषके और पागल आदिके वाक्योंसे होने वाले नदी के किनारे फल हैं' इत्यादि ज्ञानोंमें अतिव्याप्ति है, इसलिए आप्त यह विशेषण दिया है। आप्तके वचनोंसे होने वाले ज्ञानको आगम का लक्षण कहनेमें भी आप्तके वाक्योंको सुनकर जो श्रावण प्रत्यक्ष होता है उसमें लक्षण अतिव्याप्ति है, अत: अर्थ यह पद दिया है। अर्थपद तात्पर्यमें रूढ़ है। अर्थात् प्रयोजनार्थक है क्योंकि अर्थही तात्पर्य ही वचनोंमें है। ऐसा आचार्यवचन है। मतलब यह है कि यहाँ पदका अर्थ तात्पर्य विवक्षित है, क्योंकि वचनोंमें तात्पर्य ही होता है। इस तरह आप्तके वचनोंसे होने वाले अर्थ (तात्पर्य) ज्ञानको जो आगमका लक्षण कहा गया है वह पूर्ण निर्दोष है। जैसे - ''सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्ग:'' (त.सूत्र 1-1) 'सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र इन तीनोंकी एकता (सहभाव) मोक्षका मार्ग है। इत्यादि वाक्यार्थज्ञान। सम्यग्दर्शनादिक सम्पूर्ण कर्मोंके क्षयरूप मोक्षका मार्ग अर्थात् उपाय है। न कि मार्ग है। अतएव भिन्न-भिन्न लक्षण वाले सम्यग्दर्शनादि तीनों मिलकर ही मोक्षका मार्ग है, एक एक नहीं, ऐसा अर्थ 'मार्ग:' इस एकवचनके प्रयोगके तात्पर्य से सिद्ध होता है। यही उक्त वाक्य का अर्थ है। और इसी अर्थमें प्रमाणसे सशयादिक की निवृत्तिरूप प्रमिति होती है।

6. प्रमाणवचनके सप्त भंग

सत्त्व और असत्त्व इन दो धर्मोंमें से सत्त्वमुखेन वस्तुका प्रतिपादन

करना प्रमाणवचनका पहला रूप है। असत्त्वमुखेन वस्तुका प्रतिपादन करना प्रमाणवचनका दूसरा रूप है। सत्त्व व असत्त्व उभयधर्ममुखेन क्रमशः वस्तुका प्रतिपादन करना प्रमाणवचनका तीसरा रूप है। सत्त्व और असत्त्व उभयधर्ममुखेन युगपत् (एकसाथ) वस्तुका प्रतिपादन करना असम्भव है, इसलिए अवक्तव्य नामका चौथारूप प्रमाणवचनका निष्पन्न होता है। उभयधर्ममुखेन युगपत् वस्तुके प्रतिपादनकी असम्भवताके साथ-साथ सत्त्वमुखेन वस्तुका प्रतिपादन हो सकता है इस तरहसे प्रमाणवचनका पाँचवा रूप निष्पन्न होता है। उभयधर्ममुखेन युगपत् वस्तुके प्रतिपादनकी असम्भवताके साथ-साथ सत्त्वमुखेन वस्तुका प्रतिपादन हो सकता है इस तरहसे प्रमाणवचनका पाँचवा रूप निष्पन्न होता है। इसी प्रकार उभयधर्ममुखेन युगपत् वस्तुके प्रतिपादनकी असम्भवताके साथ-साथ असत्त्वमुखेन भी वस्तुका प्रतिपादन हो सकता है।इस तरह से प्रमाणवचनका छठा रूप बन जाता है। और उभयधर्ममुखेन युगपत् वस्तुके प्रतिपादन की असम्भवताके साथ-साथ उभयधर्ममुखेन क्रमशः वस्तुका प्रतिपादन हो सकता है इस तरहसे प्रमाणवचनका सातवाँ रूप बन जाता है। जैनदर्शनमें इसको प्रमाणसप्तभंगी नाम दिया गया है।

नयवचन के सप्तभंग

वस्तुके सत्त्व और असत्त्व इन दो धर्मोमें से सत्त्वधर्मका प्रतिपादन करना नयवचनका दूसरा रूप है। उभयधर्मोका क्रमशः प्रतिपादन करना नयवचनका तीसरा रूप है। और चूँकि उभयधर्मोका युगपत् प्रतिपादन करना असम्भव है अतः इस तरहसे अवक्तव्य नामका चौथा रूप नयवचनका निष्पन्न होता है। नयवचनके पाँचवें, छटे और सांतवें रूपोंसे समान समझ लेना चाहिए। जैनदर्शनमें नयवचनके इन सातरूपोंको, नयसप्तभंगी नाम दिया गया है।

इन दोनों प्रकारकी सप्तभंगियोंमें इतना ध्यान रखनेकी जरूरत है कि जब सत्त्व-धर्ममुखेन वस्तुके सत्त्वधर्मका प्रतिपादन किया जाता है तो उस समय वस्तुकी असत्त्वधर्मविशिष्टताको अथवा वस्तुके असत्त्वध र्मको अविवक्षित मान लिया जाता है और यही बात असत्त्वधर्ममुखेन वस्तुका अथवा वस्तुके असत्त्वधर्मका प्रतिपादन करते समय वस्तुकी

सत्त्वधर्मविशिष्टता अथवा वस्तुके सत्त्वधर्मके बारे में समझना चाहिए। इस प्रकार उभयधर्मोंकी विवक्षा और अविवक्षताके स्पष्टीकरणके लिए स्याद्वाद अर्थात् स्यात्की मान्यताको भी जैनदर्शन में स्थान दिया है।

स्याद्वादका अर्थ है किसी भी धर्मके द्वारा वस्तुका अथवा वस्तुके किसी भी धर्मका प्रतिपादन करते वक्त उसके अनुकूल किसी भी निमित्त, किसी भी दृष्टिकोण या किसी भी उद्देश्यको लक्ष्यमें रखना और इस तरह से ही वस्तुकी विरुद्धधर्मविशिष्टता अथवा वस्तुमें विरुद्धध र्मका अस्तित्त्व अक्षुण्ण रक्खा जा सकता है। यदि उक्त प्रकारके स्याद्वादको नहीं अपनाया जायगा तो वस्तुकी विरुद्धधर्मविशिष्टताका अथवा वस्तुमें विरोधी धर्मका अभाव मानना अनिवार्य हो जायगा और इस तरहसे अनेकान्तवादका भी जीवन समाप्त हो जायगा।

इस प्रकार अनेकान्तवाद, प्रमाणवाद, नयवाद, सप्तभंगी और स्याद्वाद ये जैनदर्शनके अनूठे सिद्धान्त हैं। इनमेंसे एक प्रमाणवाद को छोड़कर बाकी के चार सिद्धान्तोंको तो जैनदर्शनकी अपनी ही निधि।

सर्वदर्शन-समुच्चय

सारांश तालिका

(स्याद्वादग्रन्थ से साभार)

क्र	नाम दर्शन	मुख्य प्रवर्त का नाम	आत्मा नित्य या अनित्य	पुनर्जन्म है या नही	कर्मफल देते है या नहीं	परलोक है या नहीं	ईश्वर सृष्टि का कर्ता है या नहीं
1	2	3	4	5	6	7	8
1	जैन दर्शन	महावीर स्वामी	नित्य (पर्यायत अनित्य	है देते है	है	नहीं	
2	बौद्ध दर्शन	गौतम बौद्ध	अनित्य (क्षणिक)	है	देते है	है	नहीं
3	न्याय दर्शन	गौतम	नित्य	है	देते है	है	है
4	वैशेषिक दर्शन	महर्षि कणाद	नित्य	है	देते है	है	है
5	सांख्य दर्शन	कपिल	कूटस्थ नित्य	है	देते है	है	नहीं
6	योग दर्शन	पतञ्जलि	कूटस्थ नित्य	है	देते है	है	नहीं
7	पूर्व मीमांसा (=मीमांसा)	जैमिनी	नित्य	है	देते है	है	नहीं
8	उत्तरमीमांसा =वेदान्त दर्शन	बादरायण आदि (एक मत)	नित्य	है	देते है	है	है
9	चार्वाक दर्शन लोकायत दर्शन भौतिकवादी दर्शन	बृहस्पति (वाचस्पति)	अनित्य	नही	नहीं	नहीं	नहीं

क्र	ईश्वर सर्वज्ञ त्रिकालज्ञ है या नहीं	वेद प्रमाण है या नहीं	सुख का उपाय	निर्वाणका स्वरूप	नर्वाणका उपाय
1	9	10	11	12	13
1	सर्वज्ञ है	वेद अप्रमाण है	निराकुलता	सहज स्वरूप अनन्त सुखमय आत्माकी उपलब्धि	सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र का समुदाय
2	सर्वज्ञ है	वेद अप्रमाण है।	तृष्णाका त्याग	1 अभावात्मक अथवा 2 तृष्णाका क्षय ही मोक्ष है 3 सुखात्मक	अष्टागिक मार्ग सम्यग्दृष्टि आदि
3	सर्वज्ञ त्रिकालज्ञ	वेद प्रमाण	पुण्य	आत्यन्तिक दु:ख निवृत्ति	इतर पदार्थसे भिन्न आत्मतत्वका साक्षात्कार
4	सर्वज्ञ त्रिकालज्ञ	है	वेदविहित कर्म करना	वह अवस्था जब आत्माके सभी विशेष गुणनष्ट हो जावें	6 पदार्थोका यथार्थ ज्ञान
5	है	वेदप्रमाण है (पर वैदिक यज्ञादि अमान्य)	विषयके साथ अनुकूल सयोग	आत्माका कैवल्य (केवलीभाव)	विवेक ज्ञान
6	हे	वेद प्रमाण है	विवेक ख्याति	कैवल्य	ज्ञानकी पराकाष्ठारूप वैराग्य, ऋतभराप्रज्ञा तदर्थ साधना अभ्यास
7	कोई सर्वज्ञ नहीं	है	धर्म	धर्म अधर्मका नाश होनेपर शरीरका नाश ही मोक्ष है।	मोक्षका मुख्यकारण कर्म सहकारी कारण आत्म-ज्ञान
8	है (एक दृष्टि से)	द्वैत-अद्वैत वेदान्तके अनुसार वेद भी अपराविद्या है। साक्षात् अनुभवही प्रमाण है।	आत्मज्ञान या मोक्ष	1 आप्तभावश्चमोक्ष 2 भगवानकेसान्निध्य में रहना, 3 सत्चित आनन्दावस्था	1 श्रवण-मनन निदिध्यासन 2 योगमार्गणानुसरण
9	ईश्वरही नहीं है। सर्वज्ञ कोई नहीं होता	वेद अप्रमाण है	विषय सेवन	निर्वाणही नहीं है।	

क्र.	तत्वसख्या	प्रमाण सख्या व नाम है	आत्माएँ जगतमें एक या अनेक	वर्तमानमें अनुयायियों की संख्या	किस-किस जातिमें साधु अनुयायी है	वर्तमान श्रेष्ठ साधुका नाम
1	14	15	16	17	18	19
1	सात,जीव,अजीव, आस्रव,बध,संवर निर्जरा, मोक्ष	प्रत्यक्ष, परोक्ष = दो	अनेक-अनत	2 करोड	परवार,हूमड,अग्रवाल,आदिकई दशक जातियाँ	आ.विद्यासागर आ.वर्द्धमानसागर आ.अभिनन्दनसागर
2	75.रूप11चित्त46चित्त विप्रयुक्त14 अविज्ञप्ति 1आकाश 1प्रतिसख्या-निरोध1अप्रतिसख्या-निरोध1	प्रत्यक्ष परोक्ष= दो	अनंत	साधिक एक अरब	जापानमें तेन्दई कोगेन,शिंगोन, जोदो,निचिरेन्, जेनआदि जातियाँ तिब्बतमें बौद्ध धर्मराजधर्म है	दलाई लामा एस रिनपो छे
3	16 प्रमाण,प्रमेय,सशय प्रयोजन,दृष्टान्त, सिद्धान्त,अवयव,तर्क निर्णय,वाद,जल्प, वितडा,हेत्वाभास,छल, जाति,निग्रहस्थान	चार . प्रत्यक्ष अनुमान उपमान शब्द	अनत		कोई नहीं	कोई नहीं
4	6द्रव्य,गुण,कर्म, सामान्य,विशेष समवाय	प्रत्यक्ष, तथा अनुमान दो	अनत जीवात्मा	बताना सभव नहीं।	इसका किसी जातिसेविशेष सबंध नहीं।	शंकराचार्य (शृगेरी) स्वामीयोगेन्द्रजी
5	25.पुरुष1,प्रकृति-प्रकृतिके विकार24	प्रत्यक्ष अनुमान आगम	अनत		हिन्दुओंमें कुछ लोग	
6	उपर्युक्त 25 तथा एक ईश्वर =26	प्रत्यक्ष अनुमान आगम	अनत	जानना सभव नहीं		स्वामी राम तथा अन्य भी है
7	6पदार्थ-द्रव्य,गुण,कर्म सामान्यशक्तिअभाव (भाट्ट मत)	प्रत्यक्ष,अनुमानशब्द= छह,उपमान, अर्थापत्ति औरअभाव	अनेक			
8	एकमेव अद्वितीय ब्रह्म = 1ब्रह्म	प्रत्यक्ष,अनुमान,उपमान शब्द=छह, अर्थापत्ति अनुपलब्धि	अद्वैतवेदान्त में एक। अन्यके अनुसार अनेक	करोडों (अद्वैतवेदाती अधिक है)	सभी हिन्दु जातियोंमें	अनेक है
9	चार ही तत्त्व है-पृथ्वी, जल,अग्नि तथा वायु	असख्य(परन्तु शरीरही आत्मा है)		सब जातियों में संभव है	कोई नहीं	

क्र	अनुयायीपुरुषों की बहुलता का क्षेत्र	मुख्य क्रान्तिकारी सिद्धान्त	विशेष
1	20	21	22
1.	भारत वर्ष	अहिंसा, अपरिग्रह तथा स्याद्वाद	अकेले महाराष्ट्रमें अभी 40लाख तथा गुजरातमें 50लाख जैन है। (प्रा का.15 12 97VI) कनाडामें बीसहजार तथा अमेरिकामें 40000जैन है। (अकबर बादशाह1556ईस्वीके कालमें चार करोड जैन थे भारतमें)
2	चीन, जापान तिब्बत,लंका, बर्मा,स्याम,भूटान, सिक्किमआदि	क्षणिकवाद व अनीश्वरवाद	
3.	कोई नहीं दूसरा मत बगाल में अनुयायी है।	आत्मनुशासन,पुण्यपापानुसार पुरुषार्थ लाभ आत्यन्तिक दु.ख निवृत्तिनि· नि श्रेयसतथा पदार्थ तत्त्वज्ञान, नि श्रेयसोपाय	न्यानदर्शनके अनुयायी पहले शैव होते थे। शास्त्रानुमोदित उपासनाविधि प्रचलित नही है। यूरोप,अमेरिका,जापान तथा आस्ट्रेलिया मे मूल न्यायका कुछ प्रचार देखा जाता है।
4	भारतका हर प्रान्त	1.परमाणुवाद 2 विशेष नामक पदार्थ,3 द्वित्वप्रक्रिया,4 पाकज रूपोत्पत्तिप्रक्रिया,5 विभागज विभाग	वैशेषिक दर्शनकोई सम्प्रदायया उपासना पद्धतिया पथ नहीं है। यह एक दर्शन है। ये शिवके उपासक होते हैं।
5		तत्त्वोंके प्रत्यक्षज्ञानपर मुख्यता दी जाती है। अन्धविश्वास को स्थान ही।	
6	हिमालय	अभ्यास वैराग्य	
7		1 ये यज्ञादि क्रियाकाण्डमें मुख्यरूपसे प्रवृत्ति करते है। 2 ईश्वर सृष्टिकर्ता नहीं। 3 कर्म करना फल स्वय अपनी शक्ति से देते है।	
8	दक्षिण भारत	सभी अन्तत एक है। एकत्व दृष्टिमेंही शान्ति है।	वेदान्तदर्शनके प्रतिपादक ये है-भर्तृप्रपंच शकराचार्य,रामानुज,वल्लभ, विज्ञानविभु, श्रीकण्ठ,भट्ट भास्कर,निम्बार्क तथामध्व। इनके कारण से इतनी ही शाखाएँ है।
9		जीवनका चरम लक्ष्यऐहिक सुखोंकी प्राप्तिमात्र है।परलोक,ईश्वरआदि मिथ्या बकवास है।दिखता है (प्रत्यक्ष प्रमाण) वही सत्य है	

सर्वदर्शन-समुच्चय

सारांश तालिका

(स्याद्वादग्रन्थ से साभार)

क्र.	नाम दर्शन	मुख्य प्रवर्तक का नाम	आत्मा नित्य या अनित्य	पुनर्जन्म है या नहीं	कर्मफल देते है या नहीं	परलोक है या नहीं	ईश्वर सृष्टि का कर्ता है या नहीं
1	2.	3	4.	5	6	7	8
1	जैन दर्शन	महावीर स्वामी	नित्य (पर्यायत: अनित्य	है	देते है	है	नहीं
2	बौद्ध दर्शन	गौतम बौद्ध	अनित्य (क्षणिक)	है	देते है	है	नहीं
3	न्याय दर्शन	गौतम	नित्य	है	देते है	है	है
4	वैशेषिक दर्शन	महर्षि कणाद	नित्य	है	देते है	है	है
5	साख्यदर्शन	कपिल	कूटस्थ नित्य	है	देते है	है	नहीं
6	योग दर्शन	पतञ्जलि	कूटस्थ नित्य	है	देते है	है	नहीं
7	पूर्वमीमासा (=मीमांसा)	जैमिनी	नित्य	है	देते है	है	नहीं
8	उत्तरमीमासा =वेदान्त दर्शन	बादरायण आदि	नित्य	है	देते है	है	है (एक मत)
9	चार्वाकदर्शन लोकायत दर्शन भौतिकवादी दर्शन	बृहस्पति (वाचस्पति)	अनित्य	नहीं	नही	नही	नहीं

क्र	ईश्वर सर्वज्ञ त्रिकालज्ञ है या नहीं	वेद प्रमाण है या नही	सुख का उपाय	निर्वाणका स्वरूप	निर्वाणका उपाय
1	9	10 11		12 13	
1	सर्वज्ञ है	वेद अप्रमाण है	निराकुलता	सहज स्वरूप अनन्त सुखमय आत्माकी उपलब्धि	सम्यग्दर्शन,सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र का समुदाय
2	सर्वज्ञ है	वेद अप्रमाण है।	तृष्णाका त्याग	1 अभावात्मक अथवा 2 तृष्णाका क्षय ही मोक्ष है 3 सुखात्मक	अष्टागिक मार्ग सम्यग्दृष्टि आदि
3	सर्वज्ञ त्रिकालज्ञ	वेद प्रमाण	पुण्य	आत्यन्तिक दु ख इतर निवृत्ति	पदार्थसे भिन्न आत्मतत्त्वका साक्षात्कार
4	सर्वज्ञ त्रिकालज्ञ	है	वेदविहित कर्म करना	वह अवस्था जब आत्माके सभी विशेष गुणनष्ट हो जावें	6 पदार्थोका यथार्थ ज्ञान
5	है	वेदप्रमाण है (पर वैदिक यज्ञादि अमान्य)	विषयके साथ अनुकूल सयोग	आत्माका कैवल्य (केवलीभाव)	विवेक ज्ञान
6	है	वेद प्रमाण है	विवेक ख्याति	कैवल्य	ज्ञानकी पराकाष्ठारूप वैराग्य,ऋतभराप्रज्ञा,तदर्थ साधना अभ्यास
7	कोई सर्वज्ञ नहीं	है	धर्म	धर्म अधर्मका नाश होनेपर शरीरका नाश ही मोक्ष है।	माक्षका मुख्यकारण कर्म सहकारी कारण आत्म-ज्ञान
8	है (एक दृष्टि मे)	द्वैत-अद्वैत वेदान्तके अनुसार वेद भी अपराविद्या है। माक्षात् अनुभवही प्रमाण है।	आत्मज्ञान या मोक्ष	1 आप्तभावश्चमोक्ष 2 भगवानकेसान्निध्य में रहना, 3 सत्चित आनन्दा-वस्था	1 श्रवण-मनन निदिध्यासन 2 योगमार्गणानुसरण
9	ईश्वरही नहीं है। सर्वज्ञ काई नहीं होता	वेद अप्रमाण है	विषय मेवन	निर्वाणही नहीं है।	

क्र	तत्त्वसंख्या	प्रमाण सख्या व नाम	आत्माएँ जगतमें एक है या अनेक	वर्तमानमें अनुयायियों की सख्या	किस-किस जातिमें अनुयायी है	वर्तमान श्रेष्ठ साधुका नाम
1	14	15	16	17	18	19
1	सात,जीव,अजीव, आस्रव,बध,सवर निर्जरा, मोक्ष	प्रत्यक्ष, परोक्ष = दो	अनेक-अनंत	2 करोड	पोरवार,हूमड,अग्र-वाल,आदिकई दशक जातियाँ	आ विद्यासागर आ वर्द्धमानसागर आ अभिनन्दनसागर
2	75-रूप11चित्त46चित्त विप्रयुक्त14 अविज्ञप्ति 1आकाश 1प्रतिसख्या-निरोध1अप्रतिसख्या-निरोध1	प्रत्यक्ष पराक्ष= दो	अनत	साधिक एक अरब	जापानमें तेन्दई कोगेन,शिंगोन, जोदो,निचिरेन्, झेनआदि जातियाँ तिब्बतमें बौद्ध धर्म राजधर्म है	दलाई लामा एस.रिनपो छे
3	16 प्रमाण,प्रमेय,सशय प्रयोजन,दृष्टान्त, सिद्धान्त,अवयव,तर्क निर्णय,वाद,जल्प, वितडा,हेत्वाभास,छल, जाति,निग्रहस्थान	चार प्रत्यक्ष अनुमान उपमान शब्द	अनत		कोई नहीं	कोई नहीं
4	6द्रव्य,गुण,कर्म, सामान्य,विशेष तथा समवाय	प्रत्यक्ष, अनुमान दो	अनत जीवात्मा	बताना सभव नहीं।	इसका किसी जातिसे विशेष सबध नहीं।	शकराचार्य (शृंगेरी) स्वामीयोगेन्द्रजी
5	25 पुरुष1,प्रकृति-प्रकृतिक विकार24	प्रत्यक्ष अनुमान आगम	अनत		हिन्दुओंमें कुछ लोग	
6	उपर्युक्त 25 तथा एक ईश्वर =26	प्रत्यक्ष अनुमान आगम	अनत	जानना सभव नहीं		स्वामी राम तथा अन्य भी है
7	6पदार्थ द्रव्य,गुण,कर्म सामान्यशक्तिअभाव (भाट्ट मत)	प्रत्यक्ष,अनुमानशब्द= छह,उपमान, अर्थापत्ति औरअभाव	अनेक			
8	एकमेव अद्वितीय ब्रह्म = 1ब्रह्म	प्रत्यक्ष,अनुमान,उपमान शब्द—छह, अर्थापत्ति अनुपलब्धि	अद्वैतवेदान्त में एक। अन्यके अनुसार अनेक	करोडों (अद्वैतवेदाती अधिक है)	सभी हिन्दु जातियोंमें	अनेक है
9	चारही तत्त्व है-पृथ्वी, जल,अग्नि तथा वायु	असख्य(परन्तु शरीरही आत्माहै।		सब जातियों में सभव है	कोई नहीं	

क्र.	अनुयायीपुरुषों की बहुलता का क्षेत्र	मुख्य क्रान्तिकारी सिद्धान्त	विशेष
1	20	21	22
1	भारत वर्ष	अहिसा, अपरिग्रह तथा स्याद्वाद	अकेले महाराष्ट्रमें अभी 40लाख तथा गुजरातमें 50लाख जैन है। (प्रा का 15 12 97VI) कनाडामें बीसहजार तथा अमेरिकामें 40000जैन है। (अकबर बादशाह1556ईस्वीके कालमें चार करोड जैन थे भारतमें)
2	चीन, जापान तिब्बत, लका, बर्मा, स्याम, भूटान, सिक्किमआदि	क्षणिकवाद व अनीश्वरवाद	
3	कोई नही दूसरा मत बगाल में अनुयायी है।	आत्मनुशासन, पुण्यपापानुसार पुरुषार्थ लाभ आत्यन्तिक दुःख निवृत्तिनि नि श्रेयसतथा पदार्थ तत्त्वज्ञान, नि श्रेयसोपाय	न्यानदर्शनक अनुयायी पहल शैव होते थे। शास्त्रानुमोदित उपासनाविधि प्रचलित नही है। यूरोप, अमेरिका, जापान तथा आस्ट्रेलिया मे मूल न्यायका कुछ प्रचार देखा जाता है।
4	भारतका हर प्रान्त	1 परमाणुवाद 2 विशेष नामक पदार्थ, 3 द्वित्वप्रक्रिया, 4 पाकज रूपोत्पत्तिप्रक्रिया, 5 विभागज विभाग	वैशेषिक दर्शनकोई सम्प्रदायया उपासना पद्धतिया पथ नहीं है। यह एक दर्शन है। ये शिवके उपासक होते है।
5		तत्त्वोंके प्रत्यक्षज्ञान पर मुख्यता दी जाती है। अन्धविश्वास को स्थान ही।	
6	हिमालय	अभ्यास वैराग्य	
7		1 ये यज्ञादि क्रियाकाण्डमें मुख्यरूपसे प्रवृत्ति करते है। 2 ईश्वर सृष्टिकर्ता नही। 3 कर्म करना फल स्वय अपनी शक्ति से देते है।	
8	दक्षिण भारत	सभी अन्ततः एक है। एकत्व दृष्टिमेंही शान्ति है।	वेदान्तदर्शनके प्रतिपादक ये है-भर्तृप्रपच शकराचार्य, रामानुज, वल्लभ, विज्ञानविभु, श्रीकण्ठ, भट्ट भास्कर, निम्बार्क तथामध्व। इनके कारण से इतनी ही शाखाएँ है।
9		जीवनका चरम लक्ष्यऐहिक सुखोंकी प्राप्तिमात्र है। परलोक, ईश्वरआदि मिथ्या बकवास है। दिखता है (प्रत्यक्ष प्रमाण) वही सत्य है	